BPSC-131

राजनीतिक सिद्धांत का परिचय

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. दरवेश गोपाल (अध्यक्ष)
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. गुरप्रीत महाजन
नीति अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. कृष्णा मेनन
जेंडर अध्ययन केन्द्र
अम्बेडकर विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. (अ.प्रा.) वैलेरियन रौड्रिग्ज़
अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन विद्यापीठ
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. अनुराग जोशी
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. मीना देशपांडे
राजनीति विज्ञान संकाय
बंगलौर विश्वविद्यालय, बैंगलुरू

प्रो. जगपाल सिंह
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. शेफाली झा
नीति अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. विजय शेखर रेड्डी
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक और संपादक : प्रो. अनुराग जोशी

इकाई स्वरूपण, पुनरीक्षण और सामग्री अद्यतन : डॉ. राज कुमार शर्मा

अनुवादक मंडल : डॉ. योगम दत्ता, डॉ. प्रदीप टंडन, श्री मनोज कुमार मंडल, श्री रामकिशन और श्री श्याम नारायन पांडे

पांठ्यक्रम निर्माण दल

खंड	इकाई लेखक	से अनुकूलित	
खंड 1	**राजनीति सिद्धांत का परिचय**		
इकाई 1	राजनीति क्या है?	डॉ. मनोज सिन्हा, दिल्ली विश्वविद्यालय	इकाई 1, ईपीएस-11 से अनुकूलित
इकाई 2	राजनीतिक सिद्वांत क्या हैं?	डॉ. राजेन्द्र दयाल और डॉ. सतीश कुमार झा, दिल्ली विश्वविद्यालय	इकाई 3 एवं 4, ईपीएस-11 से अनुकूलित
खंड 2	**अवधारणाएँ**		
इकाई 3	स्वतंत्रता	डॉ. (श्रीमति) अनुपमा रॉय महिला विकास अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली	इकाई 19, ईपीएस-11 से अनुकूलित
इकाई 4	समानता	प्रो. कृष्णा मेनन, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	इकाई 26, ईपीएस-11 से अनुकूलित
इकाई 5	न्याय	डॉ. रचना सुचिन्मयी, मगध विश्वविद्यालय,पटना	इकाई 20, ईपीएस-11 से अनुकूलित
इकाई 6	अधिकार	डॉ. एन. डी. अरोरा, दिल्ली विश्वविद्यालय	इकाई 3, एमपीएस-001 से अनुकूलित
खंड 3	**अवधारणाएँ**		
इकाई 7	लोकतंत्र	डॉ. राज कुमार शर्मा, इग्नू	
इकाई 8	जेंडर	डॉ. रचना सुचिन्मयी, मगध विश्वविद्यालय, पटना	
इकाई 9	नागरिकता	डॉ. सुरिन्दर कौर शुक्ला, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़	
इकाई 10	राज्य और नागरिक समाज	डॉ. राजकुमार शर्मा, इग्नू और हेमलता गुनाशेखरन, शोध विद्यार्थी जेएनयू, नई दिल्ली	
खंड 4	**राजनीति सिद्धांत में बहस**		
इकाई 11	लोकतंत्र बनाम आर्थिक विकास	डॉ. अनुराग त्रिपाठी, क्राइस्ट (डीम्ड टूबी यूनिवर्सिटी), बैंगलुरू	
इकाई 12	स्वतंत्रता बनाम नियंत्रण	डॉ. शालिनी गुप्ता, दिल्ली विश्वविद्यालय	
इकाई 13	रक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धांत	सुश्री चिन्मयी दास, शोध विद्यार्थी, जेएनयू, नई दिल्ली	
इकाई 14	परिवार, कानून और राज्य	डॉ. सुरभि गुप्ता, पुलिस, सुरक्षा एवं आपराधिक न्याय हेतु सरदार पटेल विश्वविद्यालय	

सामग्री निर्माण

श्री मंजीत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन), सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

कार्यालय सहायक

श्री राकेश चन्द्र जोशी
सहायक कार्यपालक, सा.वि.वि., इग्नू, नई दिल्ली

अगस्त, 2019

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN:-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
खंड 1	**राजनीतिक सिद्धांत का परिचय**	**7**
इकाई 1	राजनीति क्या है	9
इकाई 2	राजनीतिक सिद्धांत क्या है?	23
खंड 2	**अवधारणाएँ**	**39**
इकाई 3	स्वतंत्रता	41
इकाई 4	समानता	52
इकाई 5	न्याय	62
इकाई 6	अधिकार	73
खंड 3	**अवधारणाएँ**	**85**
इकाई 7	लोकतंत्र	87
इकाई 8	जेंडर	98
इकाई 9	नागरिकता	114
इकाई 10	नागरिक समाज और राज्य	125
खंड 4	**राजनीतिक सिद्धांत में बहस**	**137**
इकाई 11	लोकतंत्र बनाम आर्थिक विकास	139
इकाई 12	स्वतंत्रता बनाम नियंत्रण	149
इकाई 13	रक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धांत	160
इकाई 14	परिवार, कानून और राज्य	169
अध्ययन सामग्री		**180**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचयः राजनीतिक सिद्धांत का परिचय

सिद्धांत वे वैचारिक लेंस हैं, जिनके माध्यम से हम बहुत से तथ्यों को सुलझा सकते हैं, जिनका हम प्रतिदिन सामना करते हैं। एक अच्छे सिद्धांत की कुछ विशेषताएं होती हैं। जिसका पहला गुण किफायती होना अर्थात संक्षिप्ता। एक सिद्धांत को अनावश्यक कल्पनाशीलता व भ्रमित करने वाले विवरणों से बचना चाहिए। एक सार्थक सिद्धांत का दूसरा लक्षण विशुद्ध रूप से सटीक होना है। दुनिया के बारे में सटीक आकलन और स्पष्टीकरण के लिए, सिद्धांतों को पर्याप्त रूप से विस्तृत होना चाहिए। एक सहज सिद्धांत सामान्यतः दुनिया के कुछ पहलुओं की व्याख्या, वर्णन या भविष्यवाणी करता है। हालाँकि, इन गुणों को ज्यादातर, वैज्ञानिक सिद्धांतों की विशेषताओं के रूप में पहचाना जाता है। प्राकृतिक विज्ञान का व्याख्यात्मक और पूर्वानुमानात्क व्यवहार, सामाजिक विज्ञान में नहीं पाया जाता है क्योंकि बहुत सी अनियंत्रित और अप्रत्याशित शक्तियां राजनीतिक व सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं तथा यही कारण है कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार की शायद ही कभी हुबहू पुनरावृत्ति होती है। इन मसलों के प्रकाश में, कुछ विशेषज्ञों ने तर्क दिया है कि सामाजिक वैज्ञानिकों को प्राकृतिक विज्ञान की नकल करने की कोशिश नही करनी चाहिए, इसके बजाय, उन्हें अपने स्वयं के मानकों और प्रक्रियाओं को विकसित करना चाहिए। सामाजिक और राजनीतिक जीवन के सिद्धांतकारों के लिए, इसलिए अध्ययन के प्रयोजन के प्रश्ननुसार महसूस करने और सोचने की क्षमता, उनके कार्य का महत्वपूर्ण घटक है।

राजनीतिक सिद्धांत खाली (शून्य) में मौजूद नही होता है तथा इसे सामाजिक वास्तविकताओं एवं मानवीय चिंताओं को प्रतिबिंबित करना चाहिए। एक सार्थक राजनीतिक सिद्धांतकार सामाजिक परिस्थितियों और राजनीतिक अवधारणाओं के मध्य विचरण करने में सक्षम होता है। राजनीतिक सिद्धांत में राजनीतिक अभ्यास के ज्ञान का समुचित समावेश होना चाहिए तथा राज्यों, संस्कृतियों व समाजों ने राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों का कैसे प्रत्युत्तर दिया, इसका वर्णन करना चाहिए। राजनीतिक सिद्धांत का एक अन्य पहलू है कि यह हमेशा उन विशिष्ट स्थितियों एवं समस्याओं से परिभाषित होता है, जिन्हें राजनीतिक विचारकों ने देखा है। राजनीतिक सिद्धांत को समझने के लिए, हमें उन विचारों के इतिहास जिन पर विचारक आकृष्ट होते हैं एवं जिन समस्याओं का उन्हें सामना करना पडता है, तथा जिसके लिए उनके कार्य को संबोधित किया जाता है, दोनों को समझने की आवश्यकता है। उस संदर्भ का अध्ययन करना जिसमें राजनीतिक सिद्धांत मूलतः उत्पन्न हुआ था, हमें समीक्षात्मक रूप से यह आकलन करने की अनुमति देता है कि यह राजनीतिक सिद्धांत किसके हितों को प्रतिबिंबित करता है।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, **'राजनीतिक सिद्धांत का परिचय'** पर यह पाठ्यक्रम चार खंडों (ब्लाक) में विभाजित है।

खंड 1, राजनीतिक सिद्धांत का परिचय है एवं इसकी दो इकाइयाँ हैं, – राजनीति क्या है? तथा राजनीतिक सिद्धांत क्या हैं? यह खंड छात्रों को राजनीतिक सिद्धांत, इसके ऐतिहासिक विकास और इसके अध्ययन के लिए मुख्य दृष्टिकोणों के विचार से अवगत कराता है। यह खंड राजनीति, राज्य, शक्ति की अवधारणाओं को समझने हेतु एक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

खंड 2, में अवधारणाओं का वर्णन है तथा इसकी चार इकाइयाँ हैं– स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं अधिकार। **खंड 3** में भी अवधारणाएं हैं, जिसमें चार इकाइयाँ इस प्रकार हैं– लोकतंत्र, जेंडर, नागरिकता तथा नागरिक समाज और राज्य। ये प्रमुख अवधारणाएं,

राजनीतिक सिद्धांत को समझने हेतु नींव प्रदान करती हैं तथा इनकी विभिन्न व्याख्याओं को इन दोनों खंडों में शामिल किया गया है।

खंड 4 में राजनीतिक सिद्धांत से संबंधित बहस को स्थान दिया गया है तथा इसकी चार इकाइयाँ ये है– लोकतंत्र बनाम आर्थिक विकास, स्वतंत्रता बनाम नियंत्रण (सेंसरशिप), सुरक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धांत तथा परिवार, राज्य व कानून। ये बहसें हमें यह विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं कि अवधारणाओं को समझने का कोई एक निश्चित तरीका नहीं है तथा नई अंतर्दृष्टि व चुनौतियाँ नई राजनीतिक बहस को समझने में मद्द करती है। प्रत्येक इकाई में आपकी प्रगति को जांचने हेतु अभ्यास संनिहित है, जो विद्यार्थीयों को विषय के बारे में उनकी समझ को परखने में मद्द करेगा। पाठ्यक्रम के अंत में, उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है जो आगे के विश्लेषण में सहायता करेगी।

खंड 1

राजनीतिक सिद्धांत का परिचय

खंड 1 परिचय

खंड 1, राजनीतिक सिद्धांत का परिचय, वर्तमान पाठ्यक्रम का परिचयात्मक खंड है एवं इसकी दो इकाइयाँ राजनीतिक सिद्धांत के विषय में हैं। राजनीतिक सिद्धांत, पूर्ण अर्थों में राजनीति विज्ञान है तथा सिद्धांत के बिना कोई विज्ञान नही हो सकता है। इसलिए, राजनीतिक सिद्धांत वैध एवं सटीक रूप से राजनीतिक विज्ञान के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस संदर्भ में, **इकाई 1**, राजनीति क्या है ? राज्य, राजनीति तथा उनके मध्य संबंध, शक्ति और वैधता की संकल्पनाओं से संबंधित है।

इकाई 2 राजनीतिक सिद्धांत क्या है? जो राजनीतिक सिद्धांत की अवधारणा पर विस्तार से प्रकाश डालती है। यह राजनीतिक सिद्धांत, विचार एवं विचारधारा, विकास व राजनीतिक सिद्धांत के पुनरूद्धार और राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन करने के दृष्टिकोण के बीच संबंधों को शामिल करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 राजनीति क्या है?*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 राजनीति एक व्यावहारिक गतिविधि के रूप में

1.2.1 राजनीति को परिभाषित करना कठिन है

1.2.2 राजनीति की प्रकृति

1.2.3 राजनीतिः मानव स्थिति की एक अपरिहार्य विशेषता

1.3 राजनीति क्या है?

1.4 राज्य क्या है?

1.4.1 राज्यः राजनीतिक संस्थानों/सामाजिक संदर्भ के कारण मतभेद

1.4.2 राज्य पर राल्फ मिलिबैंड के विचार

1.4.3 राज्य के विभिन्न स्वरूप

1.5 राजनीति एक व्यवसाय के रूप में

1.6 शक्ति का वैध उपयोग

1.6.1 वैधता पर मैक्स वेबर

1.6.2 वैधताः राजनीति विज्ञान का केंद्रीय मुद्दा

1.6.3 अवैध्यता' की प्रक्रिया

1.6.4 जोडतोड़ की स्वीकृति या सहमति

1.6.5 राज्य प्रशासन के कार्मिकः अभिजात वर्ग

1.7 सारांश

1.8 संदर्भ

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

स्नातक स्तर की डिग्री में राजनीतिक सिद्धांत में नए पाठ्यक्रम के पहले भाग की यह परिचयात्मक इकाई आपको राजनीति के मूल अर्थ के बारे में बताती है और इस प्रकार से, राजनीति विज्ञान के अनुशासन के मूल सिद्धांतों के बारे में भी बताती है। इस इकाई के माध्यम से आप यह समझाने में सक्षम होंगे किः

- राजनीति क्या है;
- राज्य का अर्थ;
- शक्ति की अवधारणा का वर्णन और व्याख्या; तथा
- वैधीकरण और प्रत्यायोजन पर चर्चा।

1.1 परिचय

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य 'राजनीतिक' की अवधारणा को समझना है। राजनीतिक का सार एक ऐसी व्यवस्था को खोज लाना है जिसे लोग अच्छा मानते हैं। राजनीति शब्द ग्रीक

*डॉ. मनोज सिन्हा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शब्द 'पॉलिस' से लिया गया है जिसका अर्थ है 'नगर' और 'राज्य'। प्राचीन यूनानियों के बीच राजनीति सोच, भावना और सबसे ऊपर एक की ही संगती से सम्बंधित होने का ये एक नया तरीका था। नागरिकों के रूप में वे सभी समान थे, हालांकि नागरिकों को उनकी धन, बुद्धि, आदि के संदर्भ में विभिन्न स्थितियों में भिन्नता थी। यह राजनीति की अवधारणा है जो नागरिकों को तर्कसंगत बनाती है। राजनीति इस नई चीज़ के लिए विशिष्ट गतिविधि है जिसे नागरिक कहा जाता है। राजनीति का एक विज्ञान संभव है, क्योंकि राजनीति स्वयं नियमित तरीके का पालन करती है, भले ही यह मानव प्रकृति की दया पर है जहां से यह उत्पन्न होता है।

ग्रीक राजनीतिक अध्ययनों ने संविधानों के साथ काम किया और मानव प्रकृति और राजनीतिक संघों के बीच संबंधों के बारे में सामान्यीकरण किया। शायद, इसका सबसे शक्तिशाली घटक आवर्तक चक्र का सिद्धांत था। तानाशाही व्यवस्था बिगड़ कर अत्याचार का रूप लेती है, अत्याचारों को अभिजात वर्ग द्वारा उखाड़ फेंका जाता है, जो कि आबादी का शोषण करने वाले कुलीन वर्गों में बदल जाता है, जो कि बाद में लोकतंत्रों द्वारा उखाड़ फेंके जाते हैं, जो कि बदले में भीड़ शासन की असहनीय अस्थिरता में बदल जाते हैं, जिसके कारण कुछ शक्तिशाली नेता खुद को राजा बना लेते हैं और यह चक्र फिर से शुरू होता है। यह अरस्तू का विचार है कि लोकतंत्र का कुछ तत्व सबसे अच्छे संतुलित संविधान के लिए आवश्यक है, जिसे वह एक 'राज्यतंत्र' कहते हैं। उन्होंने कई संविधानों का अध्ययन किया और वह विशेष रूप से राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में रुचि रखते थे। उन्होंने सोचा कि समानता की मांग के लिए क्रांतियां हमेशा उठती हैं। प्राचीन रोम राजनीति के सर्वोच्च उदाहरण के रूप में मानव द्वारा संचालित कार्यालयों द्वारा संचालित एक गतिविधि है जो स्पष्ट रूप से शक्ति के व्यवहार को सीमित करता है।

1.2 राजनीति एक व्यावहारिक गतिविधि के रूप में

एक व्यावहारिक गतिविधि के रूप में राजनीति शोध चर्चा और मानवीय संभावनाओं के व्यवस्थापन पर जूझ रही है। जैसे, यह शक्ति के बारे में है; यह कहना है, यह सामाजिक एजेंटों, एजेंसियों और संस्थानों की क्षमता के बारे में है कि वे अपने पर्यावरण, सामाजिक और भौतिक क्षमता को बनाए रखें या बदल सकें। यह उन संसाधनों के बारे में है, जो इस क्षमता को कम करते हैं, और उन बलों के बारे में जो इसके अनुशासन को आकार और प्रभावित करते हैं। तदनुसार, राजनीति एक ऐसी घटना है जो सभी समूहों, संस्थानों और समाजों में पाई जाती है, निजी और सार्वजनिक जीवन में कटौती करती है। यह उन सभी संबंधों, संस्थानों और संरचनाओं में व्यक्त किया जाता है जो समाजों के जीवन की उत्पत्ति और पुनरुत्पत्ति में निहित हैं। राजनीति हमारे जीवन के सभी पहलुओं का निर्माण करती है और ठीक करती है तथा यह सामूहिक समस्याओं, और उनके संकल्पों के विकास के मूल में है।

1.2.1 राजनीति को परिभाषित करना कठिन है

राजनीति की एक स्पष्ट परिभाषा, जो उन बातों को उपयुक्त बनाती है जिन्हें हम सहज रूप से 'राजनीतिक' कहते हैं, असंभव है। राजनीति विभिन्न उपयोगों और बारीकियों के साथ एक शब्द है। शायद, हम एक संक्षेपण बयान के लिए इस तरह से क़रीब पहुँच सकते हैं। राजनीति वह गतिविधि है जिसके द्वारा समूह अपने सदस्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास के माध्यम से सामूहिक निर्णयों तक पहुँचते हैं। इस परिभाषा में कई बड़े महत्वपूर्ण बिंदु हैं।

1.2.2 राजनीति की प्रकृति

राजनीति एक सामूहिक गतिविधि है, जिसमें वे लोग शामिल होते हैं जो आम सदस्यता स्वीकार करते हैं या कम से कम साझा नियत को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार, रॉबिन्सन क्रूसो राजनीति का नित्य प्रयोग नहीं कर सकते थे। राजनीति विचारों की एक प्रारंभिक विविधता को मानती है, यदि लक्ष्यों के बारे में न सही, तो कम से कम साधनों के बारे में इसे मानती है। क्या हम सभी हर समय सहमत हो सकते हैं, इससे राजनीति बेमानी होगी। राजनीति में चर्चा और अनुनय के माध्यम से ऐसे मतभेदों को सही कर लेना शामिल है। इसलिए, संचार राजनीति का केंद्र है। राजनीतिक निर्णय एक समूह के लिए आधिकारिक नीति बन जाते हैं, सदस्यों को उन निर्णयों के लिए बाध्य करते हैं जो यदि आवश्यक हो तो बल द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं। यदि हिंसा से निर्णय पूरी तरह से हो जाता है, तो राजनीति बहुत कम होती है, लेकिन ज़बरदस्ती करना, या इसका खतरा, सामूहिक निर्णय तक पहुंचने की प्रक्रिया को कम करता है। राजनीति की आवश्यकता मानव जीवन के सामूहिक चरित्र से उत्पन्न होती है। हम एक ऐसे समूह में रहते हैं, जिसे सामूहिक निर्णयों तक पहुंचना चाहिएः जो संसाधनों को साझा करने के बारे में होना चाहिए, और अन्य समूहों से संबंधित और भविष्य के लिए योजना के बारे में होना चाहिए। एक परिवार चर्चा करता है कि उसे छुट्टी कहाँ मनानी है, एक देश यह फैसला लेता है कि युद्ध करना है या नहीं, दुनिया प्रदूषण से होने वाले नुकसान को सीमित करने की मांग कर रही है, ये सभी ऐसे समूह हैं जो निर्णय लेने की मांग करते हैं जो उनके सभी सदस्यों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक प्राणी के रूप में, राजनीति हमारे भाग्य का हिस्सा है, हमारे पास सतत कार्यरत रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

1.2.3 राजनीतिः मानव स्थिति की एक अपरिहार्य विशेषता

इसलिए, यद्यपि 'राजनीति' शब्द का उपयोग अक्सर निंदनीय रूप से किया जाता है, सार्वजनिक हित की आड़ में निजी लाभ की खोज की आलोचना करने के लिए, राजनीति, मानव स्थिति की एक अपरिहार्य विशेषता है। दरअसल, यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने तर्क दिया कि 'मनुष्य स्वभाव से एक राजनीतिक पशु है'। इस से उनका तात्पर्य न केवल यह था कि राजनीति अपरिहार्य है, बल्कि यह आवश्यक मानव गतिविधि है; राजनीतिक जुड़ाव वह विशेषता है जो सबसे तेजी से हमें अन्य प्रजातियों से अलग करती है। अरस्तू के अनुसार, लोग केवल एक राजनीतिक समुदाय में भागीदारी के माध्यम से तर्क, गुणी प्राणियों के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को व्यक्त कर सकते हैं। एक समूह के सदस्य शायद ही कभी सहमत हों; कम से कम शुरू में, कि किस क्रियाविधि का पालन करना है। भले ही लक्ष्यों को लेकर सहमति हो, पर साधनों को लेकर अभी भी झगड़ा हो सकता है। फिर भी एक निर्णय पर पहुँचना चाहिए, एक तरह से या दूसरे, और एक बार किए जाने पर, यह समूह के सभी सदस्यों को प्रतिबद्ध करेगा। इस प्रकार, राजनीति में कई प्रकार के विचारों को व्यक्त करने और फिर एक समग्र निर्णय में संयोजित करने की प्रक्रिया शामिल है। जैसा कि शिवेली बताते हैं, ''राजनीतिक कार्रवाई की व्याख्या, एक सामान्य तरीके से तर्कसंगत रूप से, सबसे अच्छा समाधान निकालने के तरीके के रूप में की जा सकती है – या कम से कम एक उचित सामान्य समाधान निकालने का तरीका हो सकता है।'' यानी राजनीति में जनता की पसंद शामिल होती है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) एक व्यावहारिक गतिविधि के रूप में राजनीति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीति की महत्वपूर्ण प्रकृति पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 राजनीति क्या है?

राजनीति शब्द के अर्थ के बारे में हर कोई कुछ न कुछ जानता है; कुछ लोगों को यह सवाल काफी सतही भी लग सकता है। राजनीति 'वह है जो समाचार-पत्रों में पढ़ता है या टेलीविजन पर देखता है। यह राजनेताओं की गतिविधियों से संबंधित है, विशेष रूप से राजनीतिक दलों के नेताओं से। राजनीति क्या है? क्यों, शुद्ध रूप से, क्या ये गतिविधियाँ 'राजनीतिक' हैं और क्या राजनीति की प्रकृति को परिभाषित करती हैं? यदि कोई राजनेताओं की गतिविधियों के संदर्भ में परिभाषा के साथ शुरू होता है, तो कोई कह सकता है कि राजनीति सत्ता के लिए अपने संघर्ष में नेताओं की प्रतिद्वंद्विता पर ध्यान केंद्रित करती है। यह निश्चित रूप से उस तरह की परिभाषा होगी जिसके साथ अधिकांश लोग सहमत होंगे। वहाँ भी, शायद इस बात पर सहमति होगी कि राजनीति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राज्यों के बीच संबंध को संदर्भित करती है। राजनीति शक्ति के बारे में और उसे कैसे वितरित किया जाता है उस बारे में है। हालाँकि, शक्ति शून्य में तैरने वाली एक अमूर्त इकाई नहीं है। यह मानव में सन्निहित है। शक्ति एक ऐसा सम्बन्ध है, जहां कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा को दूसरे व्यक्तियों पर थोप सकता है, जिससे बाद दुसरे के ऊपर है कि वह उसका पालन करता है या नहीं। इसलिए, नेतृत्व की विशेषता वाली स्थिति पैदा होती है, वर्चस्व और अधीनता का संबंध। मैक्स वेबर ने, 1918 के अपने प्रसिद्ध व्याख्यान, 'राजनीति एक व्यवसाय के रूप में', को इस प्रस्ताव के साथ शुरू किया कि राजनीति की अवधारणा अत्यंत व्यापकता पर आधारित थी और इसमें हर प्रकार का स्वतंत्र नेतृत्व शामिल था। किसी भी संदर्भ में, इस तरह के काम में ऐसा नेतृत्व मौजूद हो, तो समझना चाहिए कि राजनीति मौजूद है। हमारी शर्तों में, राजनीति में ऐसी कोई भी स्थिति शामिल होगी जहां शक्ति संबंध विद्यमान थे, अर्थात् जहां लोग विवश थे या हावी थे या एक तरह के या किसी अन्य के अधिकार के अधीन थे। इसमें उन स्थितियों को भी शामिल किया जाएगा, जहां व्यक्तियों की व्यक्तिपरक इच्छा के बजाय संरचनाओं या संस्थानों के एक समूह द्वारा लोगों को विवश

किया गया था। इस तरह की व्यापक परिभाषा दिखाने का यह लाभ है कि राजनीति जरूरी नहीं कि सरकार का विषय हो, और न ही केवल नेताओं की गतिविधियों से संबंधित हो। राजनीति हर उस स्थिति के संदर्भ में मौजूद है जहां नेतृत्व की स्थिति हासिल करने या बनाए रखने के प्रयास में सत्ता की संरचना और संघर्ष है। इस अर्थ में, कोई भी कारोबारी यूनियनों की राजनीति के बारे में या 'विश्वविद्यालय की राजनीति' के बारे में बोल सकता है। कोई 'यौन राजनीति' पर चर्चा कर सकता है, जिसका अर्थ है महिलाओं पर पुरुषों का वर्चस्व या इस संबंध को बदलने की कोशिश। वर्तमान में, विभिन्न देशों में विभिन्न रंग या नस्ल के लोगों की, शक्ति या इसके अभाव के संदर्भ में, नस्लभेद की राजनीति के बारे में बहुत विवाद है। एक संकीर्ण अर्थ में, हालांकि सब कुछ राजनीति है, जो हमारे जीवन को प्रभावित करती है, जो कि उन लोगों को एजेंसी के माध्यम से प्रभावित करती है जो राज्य की शक्ति और उसका इस्तेमाल करते हैं और जिन उद्देश्यों के लिए वे उस नियंत्रण का उपयोग करते हैं। ऊपर दिए गए व्याख्यान में, वेबर ने शुरुआत में सामान्य नेतृत्व के संदर्भ में राजनीति की एक बहुत व्यापक परिभाषा देने के बाद, एक और अधिक सीमित परिभाषा का निर्माण कियाः 'हम राजनीति द्वारा समझना चाहते हैं', उन्होंने लिखा, "आज के समय में, राज्य पर एक राजनीतिक संघ का केवल नेतृत्व, या नेतृत्व का प्रभाव है, इस परिप्रेक्ष्य में राज्य केंद्रीय राजनीतिक संघ है।"एक राजनीतिक प्रश्न वह होता है जो राज्य से सम्बंधित होता है, इस विषय से सम्बंधित होता है कि राज्य का नियंत्रण किसके हाथ में है, किन उद्देश्यों के लिए उस शक्ति का उपयोग किया जाता है और किन परिणामों के साथ आदि।

1.4 राज्य क्या है?

एक नया मुद्दा यहां आता हैः राज्य क्या है? सवाल यह है कि उत्तर देने के लिए कोई आसान तरीका नहीं है, न ही कोई एक सामान्य समझौता है कि इसका उत्तर क्या होना चाहिए। पहले यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि राज्य के विभिन्न रूप हैं, जो महत्वपूर्ण तरीकों से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ग्रीक नगर-राज्य आधुनिक राष्ट्रवाद से स्पष्ट रूप से अलग है, जो फ्रांसीसी क्रांति के बाद से विश्व राजनीति पर हावी हैं। समकालीन उदारवादी-लोकतांत्रिक राज्य, जो ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप में मौजूद है, हिटलर या मुसोलिनी के फासीवादी प्रकार से अलग है। यह उन राज्यों से भी अलग है, जो पूर्व यूएसएसआर और पूर्वी यूरोप में मौजूद थे। राजनीति के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा यह है कि, और निश्चित रूप से इस पुस्तक का एक अभिन्न तत्व है, उन संबंधों का जिससे उसका तात्पर्य जुड़ा है उसकी व्याख्या करना। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि प्रत्येक विचार दूसरे से कैसे अलग है और इस तरह के भेद का क्या महत्व है।

1.4.1 राज्यः राजनीतिक संस्थानों/सामाजिक सन्दर्भ की व्याख्या पर अंतर

राज्य अपने राजनीतिक संस्थानों के संदर्भ में भिन्न हैं, साथ ही सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में, जिसके भीतर वे स्थित हैं और जिसे वे बनाए रखने की कोशिश करते हैं। इसलिए, एक संसद और एक स्वतंत्र न्यायपालिका के रूप में जब प्रतिनिधि संस्थाएं उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य का समर्थन करती हैं, तो नेता फासीवादी राज्य को नियंत्रित करता है। सामाजिक संदर्भ के संबंध में, महत्वपूर्ण अंतर पश्चिमी और सोवियत प्रकार की प्रणालियों के बीच है, अब तक, पूर्व को एक समाज में अंतर्निहित किया गया है जो कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के अनुसार आयोजित किया जाता है, जबकि बाद के मामले में, उत्पादक समाज के संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण राज्य द्वारा किया जाता है।

इसलिए प्रत्येक मामले में, राज्य की संरचना अलग ढंग से की गई है, यह एक बहुत ही अलग तरह के सामाजिक ढांचे में काम करता है, और यह राज्य की प्रकृति और उद्देश्यों को बड़े पैमाने पर प्रभावित और प्रेरित करता है, जो कि यह सेवा करना है। राज्य के विभिन्न रूप हैं, लेकिन जो भी रूप किसी के भी दिमाग में है, राज्य उस तरह से एक विशालकाय ढांचा नहीं है। इससे शुरुआत करेंगे कि राज्य सरकार के समान नहीं है, बल्कि यह विभिन्न तत्वों की एक जटिलता है, जिनमें से सरकार केवल एक है। पश्चिमी प्रकार के उदारवादी-लोकतांत्रिक राज्य में, सरकार बनाने वाले लोग वास्तव में राज्य सत्ता के साथ हैं। वे राज्य के नाम से आवाज़ उठाते हैं और राज्य की शक्ति की परतों को नियंत्रित करने के लिए उस अनुसार कार्यालय ले लेते हैं। फिर भी, प्रतीक को बदलने के लिए, राज्य के सदन में कई भवन होते हैं और उनमें से एक पर सरकार का कब्जा रहता है।

1.4.2 राज्य पर राल्फ मिलिबैंड के विचार

राज्य पर राल्फ मिलिबैंड के विचार उनकी पुस्तक "द स्टेट इन कैपिटलिस्ट सोसाइटी" में दिये गये हैं। राल्फ मिलिबैंड उन विभिन्न तत्वों को दर्ज करते हैं, जो राज्य के गठन में एक साथ काम करते हैं। पहला, लेकिन किसी भी तरह से राज्य तंत्र का एकमात्र तत्व, सरकार नहीं है। पहला, सरकार किसी भी तरह से राज्य तंत्र का एकमात्र तत्त्व नहीं हो सकता है। दूसरा, प्रशासनिक तत्व, सिविल सेवा या नौकरशाही है। यह प्रशासनिक कार्यपालिका, उदारवादी-लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में, तटस्थ रहने वाली, राजनेताओं के आदेशों को पूरा करने वाली है, जो सत्ता में हैं। वास्तव में, हालांकि, नौकरशाही का अपना अधिकार हो सकता है और अपनी शक्ति का निपटान कर सकता है। तीसरा, मिलिबैंड की सूची में सैन्य और पुलिस, राज्य का आदेश-अनुरक्षण या दमनकारी शस्त्र आते हैं। चौथा, न्यायपालिका, किसी भी संवैधानिक प्रणाली में, न्यायपालिका को सरकारी शक्ति के धारकों से स्वतंत्र माना जाता है; यह उन पर जाँच के रूप में कार्य कर सकता है। पांचवां, उप–केंद्र या स्थानीय सरकार की इकाइयाँ हैं। कुछ संघीय प्रणालियों में, इन इकाइयों को केंद्र सरकार से काफी स्वतंत्रता प्राप्त होती है, जो शक्ति के अपने क्षेत्र को नियंत्रित करती है, जहां सरकार संवैधानिक रूप से हस्तक्षेप करने से वंचित है। केंद्र और स्थानीय सरकार के बीच संबंध एक महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बन सकता है, जैसा कि ग्रेटर लंदन काउंसिल और महानगरीय काउंटियों के उन्मूलन, स्थानीय सरकार के वित्तपोषण के बारे में तर्क, 'दर कैपिंग' आदि पर हाल की ब्रिटिश राजनीति के विवाद में देखा जा सकता है। छठी और अंत में, कोई भी प्रतिनिधि विधानसभाओं और ब्रिटिश प्रणाली में संसद को एक सूची में जोड़ सकता है। राजनीतिक दलों का भी उल्लेख किया जा सकता है, हालांकि वे सामान्य रूप से राज्य तंत्र का हिस्सा नहीं हैं, कम से कम उदार लोकतंत्र में नहीं। वे प्रतिनिधि सभा में अपनी स्पष्ट भूमिका निभाते हैं और यह वहाँ है कि, कम से कम आंशिक रूप से, सरकार और विपक्ष के बीच प्रतिस्पर्धी लड़ाई को बढ़ाया जाता है।

1.4.3 राज्य के विभिन्न रूप

आधुनिक राज्य की पहचान राष्ट्र राज्य के रूप में की जाती है। राज्य का अस्तित्व एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के माध्यम से अपने वर्तमान स्वरूप में आया है, जो हजारों वर्षों से फैला हुआ है। यह धर्म, राजसत्ता, युद्ध, संपत्ति, राजनीतिक चेतना और तकनीकी विकास जैसे विभिन्न कारकों का परस्पर संबंध है। राज्य के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में, निम्नलिखित रूप हैं– आदिवासी राज्य, प्राच्य साम्राज्य, ग्रीक शहर राज्य, रोमन विश्व साम्राज्य, सामंती राज्य और आधुनिक राष्ट्र राज्य। पश्चिमी राष्ट्र की संधि के बाद 1648 में हस्ताक्षर किए जाने के बाद आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय हुआ। इसने एक क्षेत्रीय राज्य

को उभरने के लिए प्रेरित किया, जो बाहरी क्षेत्र से घरेलू को छोड़कर किसी विशेष क्षेत्र में राजनीतिक अधिकार को मजबूत करता है। अपनी-अपनी राष्ट्रीय भावना के साथ अलग-अलग राज्यों में क्षेत्र के अलग होने से संप्रभुता के आधुनिक सिद्धांत की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। अमेरिकी राज्यों में उभरने के लिए अमेरिकी और फ्रेंच क्रांतियों ने बढ़कर योगदान दिया।

राज्य की आधुनिक अवधारणा उदार और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हावी है। उदारवादी दृष्टिकोण गतिशील है क्योंकि यह समय के साथ बदल गया है जो हितों और व्यक्तियों और समाज की आवश्यकता पर निर्भर करता है। राज्य का प्रारंभिक उदारवादी दृष्टिकोण नकारात्मक था, क्योंकि यह व्यक्तिगत मामलों में गैर-बराबरी का पक्षधर था। 20वीं सदी का उदारवाद, कल्याणकारी राज्य से जुड़ा हुआ है, जो सामाजिक स्वतंत्रता के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समेटने की कोशिश करता है। मार्क्सवादी धारणा राज्य के उदारवादी विचार को खारिज करती है, राज्य को वर्ग के एक साधन के रूप में बुलाती है और सर्वहारा क्रांति के माध्यम से एक वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज की स्थापना करना चाहती है। हालाँकि, रूस में रूसी क्रांति के बाद ऐसा नहीं हुआ और एक वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज के बजाय, हमने सत्ता को सोवियत समय के दौरान कुछ लोगों के हाथों में केंद्रित होते देखा। राज्य पर नारीवादी दृष्टिकोण मुख्य रूप से दो कोणों से देखा जा सकता है– उदार और कट्टरपंथी। उदारवादी नारीवादियों का कहना है कि राज्य संसद में महिलाओं के लिए सीटें बढ़ाने, महिलाओं के लिए कल्याणकारी योजनाओं का विस्तार करने आदि जैसे कदम उठाकर पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने में भूमिका निभा सकते हैं। हालाँकि, कट्टरपंथी राज्य को शक्ति के एक साधन के रूप में देखते हैं, और समाज में महिलाओं की असमान स्थिति के लिए एक परिवार में श्रम के असमान वितरण को दोष देते हैं। इसलिए, वे उदारवादी दृष्टिकोण को निष्पक्ष और तटस्थ मानते हैं।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राजनीति शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राज्य पर राल्फ मिलिबैंड के विचारों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) राज्य के विभिन्न रूपों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 राजनीति एक व्यवसाय के रूप में

यह बिंदु हमें वेबर और उनके पहले से उद्धृत व्याख्यान, 'राजनीति एक वोकेशन के रूप' में वापस लाता है। यह तर्क देने के बाद कि राजनीति केंद्रीय राजनीतिक संघ, राज्य के साथ सभी से ऊपर है, वेबर ने यह कहते हुए जारी रखा कि राज्य की परिभाषा कार्यों के संदर्भ में नहीं दी जा सकती है, जो इसे पूरा करती है या समाप्त होती है। कोई नियत कार्य नहीं था जिसने विशेष रूप से राज्य का निर्धारण किया। इसलिए, एक को विशिष्ट साधनों के संदर्भ में राज्य को परिभाषित करना था, जो इसे नियोजित करता था, और ये साधन, अंततः, शारीरिक बल थे। राज्य, वेबर ने लिखा, 'एक मानव समुदाय है जो किसी दिए गए क्षेत्र के भीतर भौतिक बल के वैध उपयोग के एकाधिकार का सफलतापूर्वक दावा करता है', या भौगोलिक क्षेत्र, जिसे राज्य नियंत्रित करता है; अपने नियंत्रण को बनाए रखने के लिए भौतिक बल का उपयोग और तीसरा, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण, इस तरह के बल या छद्म के वैध उपयोग का एकाधिकार। इस वैधता को सबसे अधिक स्वीकार किया जाना चाहिए, यदि सभी नहीं, जो राज्य की सत्ता के अधीन हैं। वेबर ने निष्कर्ष निकाला कि उनके लिए राजनीति का मतलब था 'सत्ता साझा करने का प्रयास या राज्य के भीतर या समूहों के बीच सत्ता के वितरण को प्रभावित करने का प्रयास।' यह भी उल्लेख किया गया था कि प्रत्येक राज्य एक विशेष सामाजिक संदर्भ में मौजूद है। राजनीति का अध्ययन राज्य और समाज के संबंधों से जुड़ा है। राजनीति पर केंद्रित राज्य का अर्थ यह नहीं है कि इसके अध्ययन में यह उपेक्षा होनी चाहिए कि समाज के व्यापक क्षेत्र में क्या होता है और यह कैसे हो सकता है, जैसा कि वेबर कहते हैं, 'शक्ति के वितरण को प्रभावित करना'।

1.6 शक्ति का वैध उपयोग

मुद्दा यह है कि, हालांकि राज्य बल पर निर्भर करता है, यह अकेले बल पर निर्भर नहीं करता है। यहाँ, शक्ति के वैध उपयोग की धारणा आती है। यहां, शक्ति के वैध उपयोग का विचार आता है। शक्ति, सामान्य रूप से, और इसलिए राज्य की शक्ति को विभिन्न तरीकों से प्रयोग किया जा सकता है। दबाव शक्ति का एक रूप है और शायद समझने में सबसे आसान है, लेकिन यह केवल एक ही प्रकार का नहीं है। सभी शक्ति संबंधों को एक ही मूल प्रारूपों के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। यदि तर्क और ज्ञान की ताकत के माध्यम से एक व्याख्याता छात्रों को अपने विचारों को बनाने में मदद करता है, तो ऐसा व्यक्ति एक प्रकार की शक्ति का प्रयोग करता है, हालांकि छात्रों की इच्छा के विरुद्ध नहीं। इस बिंदु से अधिक, सत्ता के सभी धारक उन लोगों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जो अपने शासन के अधीन होते हैं और जिस शक्ति को वे मिटा देते हैं, उसकी सत्यता और न्याय में विश्वास करते हैं। लोगों की सहमति बनाने के लिए औचित्य का यह प्रयास वैधता की प्रक्रिया का गठन करता है। इसे सत्ता से अलग करने के लिए उचित या स्वीकृत शक्ति को सत्ता के रूप में संदर्भित किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल प्रतिबंधों के डर के कारण

था। वैध शक्ति, या अधिकार की ऐसी स्थिति में, लोग पालन करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि ऐसा करना सही है। वे मानते हैं, जो भी कारण हो, कि शक्ति-धारकों को उनकी अग्रणी भूमिका की अनुमति है। उनके पास वैध अधिकार है, आदेश देने का अधिकार है। सत्ता के हाल के एक विश्लेषक के शब्दों में, वैध प्राधिकरण एक ऐसा शक्ति संबंध है जिसमें सत्ता धारक के पास आज्ञा का अधिकार होता है, और शक्ति का विषय, एक आज्ञाकारिता का पालन करना है।'

1.6.1 वैधीकरण पर मैक्स वेबर के विचार

वेबर के अनुसार, तीन प्रकार के वैधीकरण हैं, अर्थात् तीन विधियाँ, जिनके द्वारा, शक्ति के क्षेत्रीकरण को उचित ठहराया जा सकता है। पहला प्रकार पारंपरिक वर्चस्व से संबंधित है। फलस्वरूप, शक्ति उचित है क्योंकि सत्ता के धारक परंपरा और आदत के लिए अपील कर सकते हैं; अधिकार हमेशा व्यक्तिगत रूप से या उनके परिवारों में निहित होते है। दूसरा प्रकार करिश्माई वैधता है। नेता द्वारा प्रदर्शित असाधारण व्यक्तिगत गुणों के कारण लोग शक्ति-धारक की आज्ञा का पालन करते हैं। अंत में, तीसरा प्रकार कानूनी-तर्कसंगत प्रकार का है। लोग कतिपय व्यक्तियों की आज्ञाओं का पालन करते हैं, जो कि विशिष्ट नियमों द्वारा, कड़ाई से परिभाषित सामाजिक वर्गों में कार्य करने के लिए अधिकृत हैं। कोई यह भी कह सकता है कि पहले दो प्रकार एक व्यक्तिगत प्रकृति के हैं, जबकि कानूनी-तर्कसंगत प्रकार एक प्रक्रियात्मक चरित्र को दर्शाता है। जैसे, यह राजनीतिक प्राधिकरण की आधुनिक अवधारणा से मेल खाती है। जैसा कि वेबर कहते हैं, ''राज्य के सेवक'' द्वारा और सत्ता के उन सभी पदाधिकारियों द्वारा प्रयोग किया जाता है, जो इस संबंध में उनके सदृश हैं।'' यह स्पष्ट है कि किसी भी प्रणाली में शक्ति धारक अपनी शक्ति को वैध के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं। उनके दृष्टिकोण से देखा जाए तो, शक्ति के इस्तेमाल में इस तरह की स्वीकृति काफी सारा खर्चा करवा देती है। लोग स्वतंत्र और स्वेच्छा से पालन करेंगे। जबरदस्ती के साधन, फिर, लगातार प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं होगी; वे इसके बजाय उन लोगों पर केंद्रित हो सकते हैं जो शक्ति संरचना की वैधता को स्वीकार नहीं करते हैं। किसी भी राजनीतिक प्रणाली में, नियमों का अनुपालन करने वाले केवल इसलिए होंगे क्योंकि गैर-अनुपालन को दंडित किया जाएगा। स्पष्ट रूप से, हालांकि, किसी भी राजनीतिक प्रणाली की स्थिरता उस हद तक बढ़ जाती है कि लोग स्वेच्छा से नियमों या कानूनों का पालन करते हैं क्योंकि वे स्थापित आदेश की वैधता को स्वीकार करते हैं। इसलिए, वे आदेश जारी करने के लिए नियमों द्वारा सशक्त लोगों के अधिकार को पहचानते हैं। वास्तव में, सभी राजनीतिक प्रणालियों को सहमति और जबरदस्ती के संयोजन के माध्यम से बनाए रखा जाता है।

1.6.2 वैधता: राजनीति विज्ञान का केंद्रीय सरोकार

ये वे कारण हैं जिनकी वजह से, सी राइट मिल्स कहते हैं, 'वैधता का विचार राजनीति विज्ञान की केंद्रीय अवधारणाओं में से एक है।' राजनीति का अध्ययन उन तरीकों से केन्द्रित होता है, जिनके द्वारा सत्ता के धारक अपनी शक्ति को उचित ठहराने की कोशिश करते हैं और जिस सीमा तक वे सफल होते हैं। शक्ति न्यायसंगत है, और वे किस हद तक सफल होते हैं। किसी भी राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन करने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि लोग मौजूदा शक्ति संरचना को उस कोटि के रूप में स्वीकार करने के लिए जाँच करें, और इस प्रकार, दबाव से अलग समझौते पर संरचना बाधित होती है। शक्ति के वास्तविक औचित्य का पता लगाना भी महत्वपूर्ण है, जो पेश किए जाते हैं; कहने का तात्पर्य यह है, कि वे विधियाँ जिनके द्वारा एक प्रणाली की शक्ति को वैध बनाया जाता है। यह, जैसा कि

अभिजात्य सिद्धांतकार मोस्का बताते हैं, किसी भी राजनीतिक प्रणाली का 'राजनीतिक सूत्र' है। वैधता का प्रश्न, इसके अलावा, स्थिरता और राजनीतिक प्रणालियों के परिवर्तन के विषयों से निपटने में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सहमति दी जा सकती है या वापस ली जा सकती है। हाल के दिनों में दक्षिण अफ्रीका के मामले को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है; इसी तरह, पोलैंड की, जहाँ ऐसा लगता था कि जारज़ेल्स्की शासन की पर्याप्त लोकप्रिय तत्वों की नज़र में बहुत कम वैधता थी। मुद्दा यह है कि ऐसी स्थिति में, एक शासन को मुख्य रूप से बल पर निर्भर रहना पड़ता है। यह तब खुद को अधिक अनिश्चित स्थिति में पाता है, कमजोर और भाग्यवर्धक घटनाओं के प्रभाव के लिए खुला होता है। प्रणाली काफी समय तक जीवित रह सकती है। हालाँकि, एक बार जब यह सहमति से कहीं अधिक बल पर हो जाता है, तो क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए कोई शर्त स्वयं प्रस्तुत नहीं होती है।

1.6.3 अवैधीकरण की प्रक्रिया

यह बताता है कि क्यों एक क्रांति अक्सर एक ऐसी अवधि से पहले होती है जब संगठन के नियंत्रित विचार निरंतर आलोचना के विषय होते हैं। इसे 'अवैधीकरण' की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है, जिसके तहत विचार, जो कि शक्ति की मौजूदा संरचना को सही ठहराते हैं, हमले के दायरे में आते हैं। फ्रांस में प्राचीन शासन के पतन से बहुत पहले, दैवीय अधिकार और निरंकुशता के विचारों का दार्शनिकों, पूर्ण राज्य के आलोचकों ने उपहास और खंडन किया था। अवैधीकरण के इस तरह के आंदोलन ने पुरानी व्यवस्था की नींव को कमज़ोर करने में योगदान दिया। इसने अपनी क्रान्ति को उखाड़ फेंकने का रास्ता तैयार किया। एक मामला, आधुनिक समय में, वाइमर गणराज्य का हुआ है, जब जर्मन आबादी के बड़े हिस्से ने लोकतांत्रिक शासन में विश्वास खो दिया और कम्युनिस्ट विकल्प के डर से हिटलर की नेशनल-सोशलिस्ट पार्टी को अपना समर्थन दिया। नतीजा यह था कि बिना संघर्ष के गणतंत्र का पतन हो गया। इसी तरह के कारणों का पूरे यूरोपीय महाद्वीप पर समान प्रभाव था। उदार लोकतंत्र की कई पश्चिमी प्रणालियों को उखाड़ फेंका गया और फासीवादी या अर्ध-फासीवादी सत्तावादी प्रणालियों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जैसा कि इटली, स्पेन, ऑस्ट्रिया और हंगरी में हुआ था। निष्कर्ष, एक सामान्य अर्थ में, यह होना चाहिए कि कोई भी विषय अपनी स्थिरता खो देता है, क्योंकि वह अपने विषयों की दृष्टि में वैधता का आनंद लेना बंद कर देता है। अंत में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सामान्य समय में भी, वैधता और अवैधता की प्रक्रियाएं किसी भी राजनीतिक प्रणाली की स्थायी विशेषताएं हैं। वैधता की प्रक्रिया, मौजूदा व्यवस्था की वैधता के लिए उपलब्ध कई मार्गों के माध्यम से कम या ज्यादा सूक्ष्म तरीकों से की जाती है। वैध विचारों को शिक्षा के शुरुआती चरणों से इसमें शामिल किया जाता है, विभिन्न प्रकार के सामाजिक संपर्क के माध्यम से फैलाया जाता है, और विशेष रूप से प्रेस, टेलीविजन और अन्य बड़े पैमाने पर मीडिया के प्रभाव से यह फैलता है। विचार, जो स्वीकार किए जाते हैं या व्यवस्था की सीमाओं के भीतर माने जाते हैं, पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों पर लगभग थोपे गए होते हैं। कार्यकलाप, जो उन सीमाओं से परे जाती है, गैरक़ानूनी रूप में विद्यमान होते हैं। इसे बहुत अप्रभावित बनाने के लिए, यह राजनीतिक विकल्पों की एक श्रृंखला को बंद कर देता है।

1.6.4 जोड़तोड़ की स्वीकृति या सहमति

विध्वंसक विचारों को उत्पन्न होने से रोकने के लिए अभी भी अधिक प्रभावी तरीके उपलब्ध हैं। वे स्रोतों को बीच में भी रोक सकते हैं, वे स्रोत जो राजनीतिक सिद्धांत की धारणा और उसके प्रति सचेत होते हैं, यहां तक कि अवचेतन मन के प्रति भी। सत्ता का एक महत्वपूर्ण आयाम लोगों की चेतना को प्रभावित करने और उन्हें ढालने की क्षमता है, ताकि वे

वैकल्पिक संभावनाओं से अवगत हुए बिना मौजूदा मामलों की स्थिति को स्वीकार करेंगे। पहले सहमति है, फिर, सहमति में हेरफेर हो जाता है। एक निश्चित सीमा तक, हम सभी 'राय का वातावरण' से प्रभावित हैं। ये ऊपर की तरफ बढ़ते हुए ऊंचाई पर एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाता है जहाँ दिमाग काम करना बंद कर देता है, छलयोजना को एक अखंड लोकप्रिय मानसिकता बनाने के लिए राज्य का जानबूझकर उद्देश्य बनाया जाता है। ऐसा नाज़ी जर्मनी में गोएबल्स के प्रचार यन्त्र का उद्देश्य था, और यह अभी भी, किसी भी सर्वाधिकारवादी शासन का उद्देश्य है। सी. राइट मिल्स इसे ऐसे परिभाषित करते हैं कि, "हेरफेर या चालाकी शक्तिहीन के लिए अज्ञात शक्ति है।" पीटर वॉर्स्ले बताते हैं कि जिन तंत्रों द्वारा चेतना में हेरफेर किया जाता है, उनका महत्व आधुनिक समाज में बढ़ता जा रहा है। मार्क्सवादी भाषा में, इस तरह की जोड़-तोड़ की सहमति अंततः एक 'झूठी चेतना' पैदा करेगी। उसके विरुद्ध, यह तर्क दिया जा सकता है कि जहाँ लोग स्वतंत्र होने के लिए और उदार-लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी पसंद को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र हैं, वहाँ चेतना का हेरफेर संभव नहीं है। जोड़-तोड़ केवल वहीं हो सकता है जहां मुक्त विकल्प मौजूद नहीं है, जैसा कि एकदलीय व्यवस्था में है। यह भी तर्क दिया जाता है कि जहां भी लोग चुनने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन वास्तव में मौजूदा व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं चुनते हैं।उदाहरण के लिए, कट्टरपंथी परिवर्तनों के लिए प्रतिबद्ध पार्टियों का समर्थन करके, यह मान लेना विश्वसनीय हो जाता है कि समाज की मौजूदा संरचना मोटे तौर पर 'लोग क्या चाहते हैं' पर है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक पसंद का महत्व और स्वतंत्र रूप से उस विकल्प को व्यक्त करने की क्षमता को खत्म नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, "लोग क्या चाहते हैं", कुछ हद तक विभिन्न कारकों द्वारा अनुबंधित हैं। विकल्प शून्य में नहीं होता है। संक्षेप में, चुनाव को ही वैधता की प्रक्रिया के प्रभाव से पूरी तरह से मुक्त नहीं माना जा सकता है।

1.6.5 राज्य के प्रशासन के कार्मिकः अभिजात वर्ग

लघु सर्वेक्षण से, हम अब तक राजनीतिक समस्याओं के हिस्सा हैं, कुछ महत्वपूर्ण बिंदु उभरते हैं, जो, निम्नलिखित चर्चा में पुनरावृत्ति करेगा। वे मुख्य रूप से इस तथ्य से उपजी हैं कि राज्य शक्ति संरचित है या टूट गई है, इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों में बोलना चाहिए। यह पहले ही उल्लेख किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट संबंध राजनीतिक प्रणाली द्वारा निर्धारित किए जाते हैं, जिसके भीतर वे एक साम्यवादी राज्य की आंतरिक संरचना की तरह काम करते हैं। एक और प्रश्न में इन क्षेत्रों के कर्मियों को शामिल किया गया है। राज्य, आख़िरकार, एक प्रशासन नहीं है; हालांकि 'राज्य का प्रशासन' वाक्यांश का उपयोग किया जा सकता है। राज्य उन लोगों द्वारा संचालित संस्थानों का एक समूह है, जिनके विचार और बुनियादी दृष्टिकोण बड़े पैमाने पर उनके मूल और सामाजिक वातावरण से प्रभावित हैं। राज्य अभिजात वर्ग की रचना राजनीति के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण समस्या है। जे. ए. सी. ग्रिफ़िथ ने अपनी पुस्तक "द पॉलिटिक्स ऑफ़ द ज्यूडिशियरी" में, अभिजात वर्ग के अर्थ को हाल ही के अध्ययन के सन्दर्भ में उदाहरण देकर समझाया है। यह दर्शाता है कि ब्रिटेन में 'व्यापक रूप में, पांच पूर्णकालिक पेशेवर न्यायाधीशों में से चार अभिजात वर्ग के उत्पाद हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि 'राजनीतिक मामलों के बारे में न्यायिक राय' पर चर्चा करते हुए, ग्रिफिथ को 'इन मामलों में दृष्टिकोण की एक उल्लेखनीय स्थिरता मिलती है, जो कि राजनीतिक राय की सीमा के काफी संकीर्ण हिस्से में केंद्रित है।' यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों से, इस प्रश्न के अलग-अलग उत्तर दिए जाएंगे कि राज्य अभिजात वर्ग की प्रकृति और संरचना कितनी निर्णायक है। अभिजात वर्ग के सिद्धांत इस कारक को सबसे अधिक महत्व देते हैं। उनके परिप्रेक्ष्य में, एक राजनीतिक प्रणाली की प्रकृति को उसके अभिजात वर्ग के विश्लेषण से सबसे अच्छा

समझाया गया है, वह सत्तारूढ़ अल्पसंख्यक, जो राज्य तंत्र को नियंत्रित करता है। इस परिप्रेक्ष्य में, लगभग सब कुछ नेताओं की प्रतिभा और क्षमताओं पर निर्भर करता है। नेतृत्व की कम गुणवत्ता के विनाशकारी परिणाम होंगे। इस कारण से, मैक्स वेबर जर्मनी के राजनीतिक नेतृत्व की प्रकृति से बहुत चिंतित थे। वह एक मजबूत संसद के पक्ष में थे, जिसका मानना था कि वे नेताओं को तैयार करने और जिम्मेदार कार्रवाई करने में सक्षम बनाने के लिए एक पर्याप्त प्रशिक्षण का मैदान प्रदान करेंगे। वैकल्पिक रूप से, नेतृत्व नौकरशाही के हाथों में आ जाएगा, जिसके प्रशिक्षण और जीवन शैली ने उन्हें रचनात्मक नेतृत्व के लिए अनुपयुक्त सामग्री बना दिया। मार्क्सवादी सिद्धांत इस मामले को अलग तरह से देखती थी। वे राज्य अभिजात वर्ग की प्रकृति को कम महत्व देते हैं। तर्क यह होगा कि उद्देश्य और राज्य गतिविधि का संकल्प अभिजात वर्ग द्वारा कम निर्धारित किया जाता है, लेकिन सामाजिक संदर्भ और आर्थिक ढांचे से कहीं अधिक जिसके भीतर राज्य व्यवस्था स्थित है। इस दृष्टिकोण में, राज्य प्रशासन को चलाने वाले कर्मियों की भूमिका की तुलना में इस संरचना का अधिक महत्व है।

आम तौर पर, संरचनात्मक सिद्धांत सरकार के सामाजिक ढांचे से उपजी बाधाओं पर ज़ोर देते हैं, जिसके भीतर सरकार को काम करना होता है। फिर भी, दो प्रकार की व्याख्या की ज़रूरत परस्पर अनन्य नहीं है। यह हमें एक अंतिम प्रश्न पर लाता है, जो राज्य और समाज के संबंध से संबंधित है। वाक्यांश, जिसे मार्क्स ने बोनापार्टिस्ट राज्य के लिए लागू किया था, कि इसकी शक्ति-मध्य-निलंबित नहीं थी', को सभी प्रकार की राज्य प्रणालियों में लागू करने के लिए सामान्यीकृत किया जा सकता है। फिर, कई समस्याएं खुद को प्रस्तुत करती हैं। समाज की शक्ति संरचना कैसे प्रभावित करती है। समाज की शक्ति संरचना कैसे प्रभावित करती है और राजनीतिक नेताओं को विवश करती है? राज्य सामाजिक व्यवस्था की असमानताओं को कम करने या वैकल्पिक रूप से बनाए रखने और वैध बनाने के लिए किस हद तक हस्तक्षेप करता है? वास्तव में सिविल सोसायटी 'राज्य से किस हद तक स्वतंत्र है? कुछ सिद्धांतकारों के लिए, 'अधिनायकवाद' की अवधारणा का अर्थ है कि एक ऐसा स्थान जहां समाज को राज्य शक्ति द्वारा पूरी तरह से नियंत्रित किया जाता है और इसलिए, उसके पास कोई स्वतंत्रता नहीं है। समाज की शक्ति संरचना कैसे प्रभावित करती है और राजनीतिक नेताओं को विवश करती है? राज्य सामाजिक व्यवस्था की असमानताओं को कम करने या वैकल्पिक रूप से बनाए रखने और वैध बनाने के लिए किस हद तक हस्तक्षेप करता है? वास्तव में सिविल सोसायटी 'राज्य से किस हद तक स्वतंत्र है? कुछ सिद्धांतकारों के लिए, अधिनायकवाद की अवधारणा का अर्थ एक ऐसी स्थिति का सुझाव देना है जहां समाज राज्य शक्ति द्वारा पूरी तरह से नियंत्रित होता है और इसलिए, उसके पास कोई स्वतंत्रता नहीं है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाये।

1) राजनीति को व्यवसाय के रूप में से क्या समझा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) वैधीकरण क्या है? इस पर मैक्स वेबर के क्या विचार हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) अवैधीकरण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) सहमति में जोड़तोड़ कैसे किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

यह माना जा सकता है कि राजनीतिक समझ का मतलब मानव जीवन की ज़रूरतों, उद्देश्यों और लक्ष्यों को समझना है। यह मानव की राजनीतिक गतिविधियों से संबंधित है। राजनीति सत्ता का खेल है। विभिन्न खिलाड़ी एक ही समय में इस खेल को खेलते हैं और एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। राज्य इस पूरी गतिविधि का केंद्र बिंदु बनता है, क्योंकि राष्ट्रीय मामलों में यह राज्य के भीतर और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में राज्यों के बीच होता है। राज्य सत्ता के वैध उपयोग के लिए अधिकृत है। प्राधिकरण को शासन करने का अधिकार है। प्राधिकरण सत्ता की तुलना में व्यापक धारणा है। स्थिति के निर्धारण का मतलब राजनीति की समझ है। यह एक स्थितिजन्य घटना की उपज है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के उदय ने अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली को स्थिरता दी है, लेकिन कई चुनौतियां हैं जो आज के राष्ट्रों के सामने हैं। कुछ समुदाय कई हिस्सों में बिखरे हुए हैं, लेकिन सामान्य संस्कृति, भाषा या धर्म के आधार पर एकजुट होते हैं। उदाहरण के लिए, कुर्द इराक, सिरिया और टर्की में फैले हुए हैं, लेकिन एक अलग राज्य की मांग करते हैं। इसके विपरीत उदाहरण भी हैं, जहां विभिन्न जातीय समूहों ने एक राज्य का गठन किया, लेकिन एक राष्ट्र के रूप में आत्मसात नहीं कर पाए, उदाहरण के लिए, पूर्व सोवियत संघ। फिर ऐसे लोगों के मुद्दे हैं जो दूसरे देशों में चले गए हैं और प्राकृतिक नागरिक बन गए हैं, लेकिन उनके मूल के देशों के साथ संबंध जारी हैं। आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन, नशीले पदार्थों की तस्करी, खाद्य सुरक्षा आदि जैसे गैर-पारंपरिक खतरे हैं, जो अकेले एक देश से नहीं निपट सकते हैं, लेकिन सहकारी सुरक्षा की आवश्यकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि राज्य अपने कुछ अधिकारों और

संप्रभुता को मानवता के बड़े हित में समझें। इसलिए, आधुनिक राष्ट्र राज्य को बदलते समय में प्रासंगिक बने रहने के लिए इन मुद्दों को हल करने की आवश्यकता है।

1.8 संदर्भ

बॉल, एलन आर. (1988), *आधुनिक राजनीति और सरकार,* लंदनः मैकमिलन

भार्गव, आर और अशोक आचार्य (संस्करण), (2015), *राजनीतिक सिद्धांतः एक परिचय,* नई दिल्लीः पीयरसन

फ्रेडरिक, कार्ल जे (1967), *पॉलिटिकल थ्योरी का एक परिचय,* न्यूयॉर्कः हार्पर और रो

हेल्ड, डेविड (एड), (1991), *पॉलिटिकल थ्योरी टुडे,* कैम्ब्रिजः पॉलिटी प्रेस

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में इस बात पर प्रकाश डाला जाना चाहिए कि राजनीति समाज के हर वर्ग के लिए एक व्यापक गतिविधि है।

2) आपके जवाब में यह उजागर होना चाहिए कि यह एक सामूहिक गतिविधि है, विचारों /लक्ष्यों की विविधता को मानती है और इसका मतलब है, चर्चा/अनुनय, सामूहिक और आधिकारिक निर्णय लेने और मानव स्थिति की एक अपरिहार्य विशेषता के माध्यम से मतभेदों का सामंजस्य।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में लोकप्रिय धारणा, राजनेताओं की शक्ति के संघर्ष में, एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राज्यों के बीच संबंध और विशेषकर मैक्स वेबर के विचारों के संदर्भ में शक्ति के अर्थ पर प्रकाश डाला जाना चाहिए।

3) आपके उत्तर में राज्य के विभिन्न रूपों के उद्भव, वेस्टफेलिया की संधि और राज्य के उदारवादी और मार्क्सवादी विचारधारा का उल्लेख होना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) आपके उत्तर में मैक्स वेबर के विचारों पर प्रकाश डाला जाना चाहिए, जैसा कि उनके व्याख्यान "रोज़गार के तौर पर राजनीति" में दिया गया है, 'लुईस बोनापार्ट के 'अठारहवें ब्रूमैर' में राज्य पर मार्क्स के विचार।

2) आपके उत्तर को वैधता को परिभाषित करना चाहिए और वेबर के तीन प्रकार के वैधीकरण पर चर्चा करनी चाहिए।

3) आपके उत्तर को इसे परिभाषित करना चाहिए और इतिहास से उदाहरण देना चाहिए।

4) आपके उत्तर में सहमति के हेर फेर को उजागर किया जाना चाहिए।

इकाई 2 राजनीतिक सिद्धांत क्या है*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 राजनीतिक सिद्धांत और अन्य पारस्परिक संबंध

2.3 राजनीतिक सिद्धांत का विकास

2.4 राजनीतिक सिद्धांत की परिभाषा की ओर

2.5 मूल सैद्धांतिक अवधारणाओं के महत्व

- 2.5.1 क्या राजनीतिक सिद्धांत मृत हो चुका है?
- 2.5.2 राजनीतिक सिद्धांत की पुनरुत्थान

2.6 राजनीतिक सिद्धांत के दृष्टिकोण

- 2.6.1 ऐतिहासिक दृष्टिकोण
- 2.6.2 मानक अथवा निर्देशात्मक दृष्टिकोण
- 2.6.3 अनुभवजन्य दृष्टिकोण
- 2.6.4 समकालीन दृष्टिकोण

2.7 सारांश

2.8 संदर्भ

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

यह इकाई राजनीतिक सिद्धांत की आवश्यकता से संबंधित है।

इस इकाई के माध्यम से, आप यह जानने में सक्षम होंगे कि:

- अन्य समान शर्तों से राजनीतिक सिद्धांत अलग है;
- क्या राजनीतिक सिद्धांत मृत हो चुका है, इसका परीक्षण; तथा
- राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों से परिचय।

2.1 परिचय

राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक विज्ञान के मूल क्षेत्रों में से एक है। शैक्षणिक अनुशासन के रूप में राजनीतिक सिद्धांत बिलकुल हाल ही में उभर कर आया है। इससे पहले इस उद्यम में जो लोग शामिल थे, वे खुद को दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक मानते थे। बौद्धिक परम्परा, जो कि तत्काल व्यावहारिक चिंता के क्षेत्र को बढ़ा देते हैं, के लिए राजनीतिक सिद्धांत एक उपयुक्त शब्द है और यह लोगों के सामाजिक रूप से सह-अस्तित्व को महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखता है। राजनीतिक सिद्धांत पूरी तरह से राजनीतिक विज्ञान था और सिद्धांत के बिना विज्ञान नहीं हो सकता। अतः राजनीतिक सिद्धांत वैध रूप से और सटीक रूप से राजनीतिक विज्ञान के पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

*डॉ. राजेन्द्र दयाल और डॉ. सतीश कुमार झा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

2.2 राजनीतिक सिद्धांत और अन्य पारस्परिक सम्बन्ध

राजनीतिक सिद्धांत और उसके समानार्थी शब्दों जैसे राजनीतिक विज्ञान, राजनीतिक दर्शन और राजनीतिक विचारधारा के बीच अंतर किया जा सकता है, यद्यपि बहुत से लोग विनिमेयता के अनुसार व्यवहार करते हैं। राजनीतिक सिद्धांत और राजनीतिक विज्ञान के बीच भेदभाव आधुनिक विज्ञान द्वारा बौद्धिक धारणाओं में सामान्य बदलाव के कारण उत्पन्न होता है। राजनीतिक विज्ञान ने राजनीति और राजनीतिक व्यवहार के बारे में व्यावहारिक सामान्यीकरण और कानून प्रदान करने की कोशिश की है।

राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक घटनाओं और संस्थानों और वास्तविक राजनीतिक व्यवहार पर दार्शनिक या नैतिक मानदंड को दर्शाता है।

एक अच्छी राजनीतिक व्यवस्था में प्रश्न उठना महत्वपूर्ण है जो कि एक बड़ा और अधिक मौलिक प्रश्न का हिस्सा है; मुख्य रूप से जीवन के आदर्श रूप को मनुष्य को बड़े समुदाय के अंदर विस्तार करना चाहिए।

तत्काल और स्थानीय प्रश्नों के उत्तर देने की प्रक्रिया में, यह स्थायी मुद्दों को संबोधित करता है, यही कारण है कि शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन अभ्यास का एक महत्वपूर्ण घटक बनता है। राजनीतिक सिद्धांत के महान ग्रंथों में शानदार कार्यों की बात करें तो इसमें ज़रूरी महान साहित्यिक कार्य मिल जायेंगे, जो कि स्थानीय मामलों के बावजूद, जीवन और समाज की स्थाई समस्याओं से निपटता है। इसमें शाश्वत ज्ञान की उत्कृष्टता शामिल है और यह किसी भी संस्कृति, स्थान, लोगों या काल की विरासत नहीं है, बल्कि पूरीमानव जाति से सम्बंधित है।

विशिष्ट राजनीतिक सिद्धांतों को किसी घटना की सही या अंतिम समझ के रूप में नहीं माना जा सकता है। एक घटना का अर्थ नए दृष्टिकोण से हमेशा भविष्य की व्याख्याओं के लिए खुला रहता है। प्रत्येक की व्याख्या और विश्लेषण एक विशेष दृष्टिकोण या राजनीतिक जीवन से सम्बंधित होती हैं।

इसके अलावा, राजनीतिक सिद्धांत इसकी समीक्षा करने के प्रयासों में लगा रहता है, ताकि एक ऐसा राजनीतिक स्पष्टीकरण स्थापित किया जा सके जो सामान्य लोगों से ऊपर हो सके। राजनीतिक सिद्धांत और राजनीतिक विज्ञान के बीच कोई तनाव नहीं है, क्यूंकि वे अपनी सीमाओं और अधिकार क्षेत्र की शर्तों को अलग अलग निर्वाह करते हैं और टकराव उनके उद्देश्य में नहीं है। राजनीतिक सिद्धांत विश्लेषण, विवरण, स्पष्टीकरण और आलोचना के उद्देश्य के लिए विचारों, अवधारणाओं और सिद्धांतों की आपूर्ति करता है, जो कि वापस रानजीतिक विज्ञान में समाविष्ट हो जाते हैं।

राजनीतिक दर्शन प्रश्नों के सामान्य उत्तर प्रदान करता है जैसे कि न्याय क्या है और विभिन्न अन्य अवधारणाओं से भी संबंधित है, क्या है और क्या होना चाहिए में भी यह भेद करने के साथ साथ राजनीति के बड़े मुद्दे से जुड़े प्रश्नों के सामान्य उत्तर प्रदान करता है। राजनीतिक दर्शन आदर्श राजनीतिक सिद्धांत का एक हिस्सा है, क्योंकि यह अवधारणाओं के बीच अंतर-संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है। शायद यह कहना सही होगा कि हर राजनीतिक दार्शनिक एक सिद्धांतवादी है, हालांकि हर राजनीतिक सिद्धांतवादी राजनीतिक दार्शनिक नहीं है। राजनीतिक दर्शन एक जटिल गतिविधि है, जो कि बिलकुल सही तरह से इस बात से समझी जा सकती है कि अनेक बड़े बड़े विशेषज्ञ विभिन्न विश्लेषण के लिए इसका अभ्यास करते हैं।

कोई भी दार्शनिक और किसी भी ऐतिहासिक युग से भी निष्कर्षात्मक रूप से ये परिभाषित नहीं कर सकता, हम इसका तात्पर्य कला के सन्दर्भ में ले सकते हैं कि कला के किसी भी कलाकार या कला के स्कूल से कहीं ज्यादा बढ़कर अभ्यास किया गया है।

राजनीतिक विचार पूरे समुदाय का विचार है जिसमें पेशेवर राजनेता, राजनीतिक टिप्पणीकार, समाज सुधारक और समुदाय के साधारण व्यक्ति जैसे स्पष्ट वर्गों के भाषणों के लेखन शामिल हैं।

विचार राजनीतिक ग्रंथों, विद्वानों के लेख, भाषण, सरकारी नीतियों और निर्णयों और कविताओं और गद्य के रूप में भी हो सकता है जो लोगों की व्यथा को प्रकट करते हैं। विचार समयबद्ध होते हैं, उदाहरण के लिए, बीसवीं शताब्दी का इतिहास। संक्षेप में, राजनीतिक विचारों में ऐसे सिद्धांत शामिल हैं जो राजनीतिक व्यवहार और मूल्यों का मूल्यांकन करने और इसे नियंत्रित करने के तरीकों को समझाने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक सिद्धांत, विचार के विपरीत, एक व्यक्ति द्वारा अटकलों को संदर्भित करता है, जिसे हम स्पष्टीकरण के मॉडल के रूप में ग्रंथों में व्यक्त करते हैं। इसमें राज्यों, कानून, प्रतिनिधित्व और चुनाव सहित संस्थानों के सिद्धांत शामिल हैं। सर्वेक्षण का तरीका तुलनात्मक और व्याख्यात्मक है। राजनीतिक सिद्धांत सामान्य राजनीतिक जीवन से उत्पन्न दृष्टिकोण और कार्यों को समझाने और किसी विशेष संदर्भ में उनके बारे में सामान्यीकृत करने का प्रयास करता है, यह राजनीतिक सिद्धांत अवधारणाओं और परिस्थितियों के बीच या उनके साथ संबंधों से सम्बंधित में है। राजनीतिक दर्शन राजनीतिक सिद्धांतों और अवधारणाओं के बीच संघर्ष को हल करने या समझने का प्रयास करता है, जो कि निर्धारित की गई परिस्थितियों में समान रूप से स्वीकार्य दिखाई दे सकता है।

राजनीतिक विचारधारा एक व्यवस्थित और सभी को समाविष्ट करने वाला सिद्धांत है, जो कि मानव प्रकृति और समाज के पूर्ण और सार्वभौमिक रूप से लागू सिद्धांत को प्राप्त करने के एक विस्तृत कार्यक्रम के साथ-साथ उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। जॉन लॉक को अक्सर आधुनिक विचारधाराओं के जनक के रूप में वर्णित किया जाता है।

मार्क्सवाद भी इस तरह की विचारधारा का एक शानदार उदहारण है जिसका तात्पर्य इस कथन में अभिव्यक्त होता है कि दर्शन का उद्देश्य विश्व को बदलना है न कि केवल व्याख्या करना। सभी राजनीतिक विचारधारा राजनीतिक दर्शन है, लेकिन ये कहना कि सभी राजनीतिक दर्शन राजनीतिक विचारधारा है, सत्य नहीं होगा। बीसवीं शताब्दी में फासीवाद, नाज़ीवाद, साम्यवाद और उदारवाद जैसी कई विचारधाराएं देखी गई हैं। राजनीतिक विचारधारा का एक विशिष्ट गुण यह है कि, जो कि राजनीतिक दर्शन के विपरीत, यह एक आदर्श समाज का एहसास करने के अपने उद्देश्य के कारण महत्वपूर्ण मूल्यांकन को रोकता है और हतोत्साहित करता है।

गेमिने और सेबाइन के अनुसार, राजनीतिक विचारधारा राजनीतिक सिद्धांत की अस्वीकृति है क्योंकि विचारधारा हाल ही की उत्पत्ति है, और सकारात्मकता के प्रभाव के तहत व्यक्तिपरक, अविश्वसनीय मूल्य वरीयताओं पर आधारित है।

गेमिने, इसके अलावा, राजनीतिक सिद्धांतवादी से एक प्रचारण में भेद का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार, हालांकि उन्हें स्वयं मुद्दों की अच्छी समझा है, पूर्णतः तत्काल उठने वाले प्रश्नों का ज्ञान है।

इसके अलावा, जर्मिनो, प्लेटो की तरह मत और ज्ञान के बीच अंतर करते हैं, और बाद में निश्चित रूप से एक राजनीतिक सिद्धांतवादी का प्रारंभिक बिंदु हो जाता है। प्रत्येक

राजनीतिक सिद्धांतकार की दोहरी भूमिका होती है; एक वैज्ञानिक और एक दार्शनिक और जिस तरह से वह अपनी भूमिकाओं को विभाजित करता है, वह अपने स्वभाव और हितों पर निर्भर करेगा। केवल दो भूमिकाओं को जोड़कर वह ज्ञान के लिए एक सार्थक तरीके से योगदान कर सकता है। एक सिद्धांत का वैज्ञानिक घटक सुसंगत और महत्वपूर्ण दिखाई दे सकता है, अगर लेखक के पास राजनीतिक जीवन के उद्देश्य की पूर्वकल्पना है। दार्शनिक आधार इस तरीके से प्रकट होता है जिस तरीके से वास्तविकता को चित्रित किया गया है। राजनीतिक सिद्धांत निराशाजनक और अनिच्छुक है। एक विज्ञान के रूप में, यह अव्यक्त रूप से या स्पष्ट रूप से चित्रित किए जा रहे निर्णयों को पारित करने की कोशिश किए बिना राजनीतिक वास्तविकता का वर्णन करता है। एक दर्शन के रूप में, यह आचरण के नियमों को निर्धारित करता है जो समाज में सभी के लिए एक अच्छा जीवन सुरक्षित बनाएगा, न कि केवल कुछ व्यक्तियों या वर्गों के लिए।

सिद्धांतवादी, किसी भी देश या वर्ग या पार्टी की राजनीतिक व्यवस्था में व्यक्तिगत रुचि नहीं लेते। इस तरह की रुचि से रहित, वास्तविकता की उनकी दृष्टि और अच्छे जीवन की उनकी छवि को प्रभावित नहीं किया जाएगा, और न ही उनका सिद्धांत विशेष होगा। विचारधारा का लक्ष्य या उद्देश्य समाज में सत्ता की एक विशेष प्रणाली को न्यायसंगत बनाना है। विचारधारा एक इच्छुक मामला है, उनकी दिलचस्पी इस उम्मीद से होती है कि एक नयी सत्ता का बँटवारा उभर कर आएगा, इसलिए चीजों को उसी रूप में या यथास्थिति की आलोचना भी इसी कारण से की जाती है। अरुचिपूर्ण चीज़ों को करने के बजाय, हम तर्कसंगतता से प्यार करते हैं। निष्पक्ष रूप से व्यवहार के बजाय, हमारे पास वास्तविकता की एक विकृत तस्वीर है।

2.3 राजनीतिक सिद्धांत का विकास

राजनीतिक सिद्धांत में विकास हमेशा समाज में होने वाले परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है। विभिन्न समय पर उभरती चुनौतियों के जवाब में राजनीतिक सिद्धांत तैयार किए जाते हैं। राजनीतिक सिद्धांत के हेगेल का प्रतीकात्मक लक्षण इस सन्दर्भ में कि "मिनर्वा का उल्लू तब उड़ान भर लेता है जब अँधेरे की परछाई बढ़ जाती है", बहुत उपयुक्त है।

हालांकि हमें यह याद रखना अच्छा होगा कि राजनीतिक चिंतन, जो कि सामाजिक चुनौतियों के कारण भी उभरता है, समय के साथ साथ स्थान के साथ भी बंधा हुआ है और इसलिए, सिद्धांत से अलग है जो ऐसी बाधाओं को तोड़ता है और साबित करता है कि राजनीति की अद्भुत घटनाओं को अलग अलग प्रकृति और उत्पत्ति के सन्दर्भ में अच्छे से समझा जा सकता है और व्याख्या की जा सकती है।

ऐसा होता है, क्योंकि विचारधारों और पूर्वाग्रहों से सिद्धांतों को परिष्कृत और शुद्ध किया जाता है और कुछ नियम स्थापित हो जाते हैं, जो केवल कालातीत ही नहीं होते हैं, बल्कि उन्हें ज्ञान भी कहा जा सकता है।

राजनीतिक सिद्धांतकार, जब सिद्धांतीकरण में लिप्त होते हैं, अपने रुझानों और कल्पनाओं की पूर्ति के लिए विचारों का पालन या उसका अनुकरण ही नहीं करते हैं, बल्कि उन आदर्शों को भी खोजते हैं जिनके विचार जीवन को बेहतर बना सकते हैं। और इस उद्यम में, सिद्धांतवादी, बड़े पैमाने पर, ठोस राजनीतिक स्थिति से प्रेरित होते हैं।

राजनीतिक सिद्धांत का इतिहास बताता है कि समाजों को प्रभावित करने वाली बीमारियों और रोगों ने सिद्धांत के साधनों को कमज़ोर किया है, जिसके माध्यम से विभिन्न स्वीकृत सिद्धांतों और प्रथाओं और उनके पीछे की धारणाओं पर सवाल उठाये गए थे और भविष्य के लिए खाका तैयार किया गया था।

हालांकि, यह सच है कि सिद्धांत के लिए प्रोत्साहन हमेशा किसी प्रकार की विफलता और संबंधित दृढ़ विश्वास से आता है कि चीजों को बेहतर समझ के माध्यम से बेहतर किया जा सकता है और अंततः हल किया जा सकता है। इसलिए, राजनीतिक सिद्धांत का कार्य एक बेड़े की प्रतिक्रिया प्रदान करने और समझौता से संतुष्ट होने तक ही सीमित नहीं है। बल्कि, इसे समस्या की जड़ तक पहुंचना है और सिद्धांतों के वैकल्पिक नियमों के निर्माण के रूप में उपचार खोजना है। इसलिए, सिद्धांत पर किसी भी परियोजना के लिए एक 'दृष्टि' की आवश्यकता होती है जिसके माध्यम से एक सिद्धांतवादी न केवल हाथों की समस्याओं के बारे में सोच सकता है, बल्कि उनके आगे भी जा सकता है।

बात यह है कि कला या काव्य से राजनीतिक सिद्धांत को अलग किया जा सकता है। दृष्टि, प्रतिबिंब और अफवाहों के संदर्भ में, राजनीतिक सिद्धांत और कला और काव्य जैसे अन्य रचनात्मक गतिविधियों के बीच बहुत अंतर नहीं है। लेकिन जो बात एक राजनीतिक सिद्धांतकार से कवि को अलग करती है वह है उसका आग्रह और खोज, जो कि एक निश्चित प्रकार का होता है, जबकि एक कवि का अपना संसार होता है और काव्य के सहज स्वच्छंदता उसमें होती है। इसलिए, यह रचनात्मकता नहीं है, बल्कि चेतना है जो कि काव्य को सिद्धांत बनने की स्थिति से नकारती है।

2.4 राजनीतिक सिद्धांत की परिभाषा की ओर

राजनीतिक सिद्धांत अलग-अलग लोगों द्वारा विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। परिभाषाएं इसके गठबंधन तत्वों के जोर और समझ के आधार पर भिन्न होती हैं। राजनीतिक सिद्धांत की सेबाइन द्वारा दी गई प्रसिद्द परिभाषा यह है कि यह कुछ ऐसा है जिसमें विशेष रूप से तथ्यात्मक, कारण और मूल्यवान जैसे कारक शामिल हैं। हेकर के अनुसार, राजनीतिक सिद्धांत 'निराशाजनक और अनिच्छुक गतिविधि है। यह दार्शनिक और वैज्ञानिक ज्ञान का एक अंग है, चाहे वह मूल रूप से कब और कहाँ लिखा गया हो, इस दुनिया की हमारी समझ को बढ़ा सकता है जिसमें हम आज रहते हैं और जिसमें हम कल भी रहेंगे।

इसलिए, कोई यह कह सकता है कि राजनीतिक सिद्धांतों का हमारा अर्थ राजनीतिक घटनाओं के एक वर्ग के बारे में कुछ स्पष्टीकृत सिद्धांत के साथ प्रस्तावों का एक सुसंगत समूह है। इसका तात्पर्य है कि एक सिद्धांत, विचार के विपरीत, उस परिस्थिति में एक साथ ढेर सारी घटनाओं पर विचार नहीं कर सकता है, और केवल श्रेणी या प्रकार के मुद्दों से संबंधित होगा।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राजनीतिक सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक सिद्धांत की दूसरे अंतर-सम्बंधित शब्दों से अंतर करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 मुख्य सैद्धांतिक अवधारणाओं के महत्व

एक पाठक जब पहली बार राजनीतिक सिद्धांत से परिचित होता है, तो यह सोच सकता है कि समाज के चरित्र और प्रकृति को समझने के लिए अमूर्त अवधारणाओं के बजाय संस्थाओं का अध्ययन करना पर्याप्त है। जबकि संस्थानों का अध्ययन तभी संभव है, जब किसी को यह एहसास हो कि संस्थागत व्यवस्था अलग-अलग समाज में भिन्न होती है क्योंकि वह अलग-अलग प्रकार के विचारों पर आधारित होती हैं। यह वास्तविकता हमें इस मामले के बीचों बीच में ले जाती है कि अधिक महत्वपूर्ण क्या है, वास्तविकता या विचार, तथ्य या अवधारणाएं क्या विचार वास्तविकता को प्रतिबिंबित करते हैं या वास्तविकता विचारों पर आधारित होती है?

2.5.1 क्या राजनीतिक सिद्धांत मृत हो चुका है?

बीसवीं शताब्दी के मध्य में, कई पर्यवेक्षकों ने आसानी से राजनीतिक सिद्धांत की मृत्युलेख लिखी। कुछ ने इसकी गिरावट की बात की। दूसरों ने इसकी मौत की घोषणा की। किसी ने कहा कि राजनीतिक सिद्धांत आज मुसीबत से घिरा हुआ है। यह निराशाजनक विचार इसलिए फैला क्योंकि राजनीतिक सिद्धांत में शास्त्रीय परंपरा, बड़े पैमाने पर, अनुभवजन्य परीक्षण के नियंत्रण से परे मूल्य निर्णय के साथ मिली जुली है। मानक सिद्धांत की आलोचना 1930 के दशक में तार्किक सकारात्मकवादियों से हुई थी और बाद में व्यवहारवादियों द्वारा भी आलोचना की गई। ईस्टन का तर्क था कि चूंकि राजनीतिक सिद्धांत एक प्रकार के ऐतिहासिक रूप से सम्बंधित है, इसलिए यह अपनी रचनात्मक भूमिका खो चुका है। उन्होंने विलियम डनिंग, चार्ल्स एच. मक्लेवेन और जॉर्ज एम. सेबाइन को राजनीतिक सिद्धांत में इतिहासवाद को लाने के लिए दोषी ठहराया। इस तरह के राजनीतिक सिद्धांत ने छात्रों को मूल्यपरक सिद्धांत के गंभीर अध्ययन से वंचित कर दिया है और राजनीतिक सिद्धांत में इतिहास और दर्शन के तत्वों को अस्वीकार कर दिया।

ईस्टन ने आम तौर पर राजनीतिक सिद्धांत की गिरावट और विशेष रूप से ऐतिहासिकता में गिरावट के कारणों की जांच की। सबसे पहले, और सबसे महत्वपूर्ण, राजनीतिक वैज्ञानिकों के बीच प्रवृत्ति उनके समय के नैतिक प्रस्तावों के अनुरूप है जो रचनात्मक दृष्टिकोण के नुकसान की ओर अग्रसर हैं। इस बात पर ज़ोर देना है कि किसी के गुणों को उजागर करना और प्रकट करना जो कि यह दर्शाता है कि अब इन नैतिक मूल्यों की योग्यता की जांच करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन केवल उनके 'मूल, विकास और सामाजिक प्रभाव' को समझना है। मौजूदा मानों का समर्थन करने के लिए इतिहास का उपयोग किया जाता है। दूसरी बात, सिद्धांत को जो ख़ास बातें इतिहास से प्राप्त होती हैं उसके लिए नैतिक सापेक्षतावाद ज़िम्मेदार है। कुल मिलाकर, उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत की गिरावट के चार कारण दिए– ऐतिहसिकतावाद, नैतिक सापेक्षतावाद, अति तथ्यात्मकतावाद और सकारात्मकतावाद।

2.5.2 राजनीतिक सिद्धांत की पुनरुत्थान

1930 के दशक में, राजनीतिक सिद्धांत ने साम्यवाद, फासीवाद और नाज़ीवाद के साम्राज्यवादी सिद्धांतों के विरोध में उदार लोकतांत्रिक सिद्धांत की रक्षा के उद्देश्य से विचारों के इतिहास का अध्ययन करना शुरू किया। लासवेल ने मानव व्यवहार को नियंत्रित करने के अंतिम उद्देश्य के साथ एक वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धांत स्थापित करने की कोशिश की, जिससे मरियम द्वारा दिए गए लक्ष्य और दिशा को आगे बढ़ाया गया। शास्त्रीय परंपरा के विपरीत, वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धांत निर्धारित करने के बजाए वर्णन करता है। पारंपरिक अर्थ में राजनीतिक सिद्धांत आरेण्ड्ट, थिओडोर अडोर्नो, मार्क्यूस और लियो स्ट्रॉस के कार्यों में जीवित था। अमेरिकी राजनीतिक विज्ञान के भीतर व्यापक विचारों से उनके विचार पूरी तरह से भिन्न थे, क्योंकि वे उदार लोकतंत्र, विज्ञान और ऐतिहासिक प्रगति में विश्वास करते थे। वे सभी राजनीति में राजनीतिक मसीहावाद और उदारवाद को अस्वीकार करते हैं। आरेण्ड्ट ने मुख्य रूप से मानव की विशिष्टता और जिम्मेदारी पर ध्यान केंद्रित किया, जिसके साथ उन्होंने व्यवहारवाद में उनकी आलोचना शुरू की। उन्होंने तर्क दिया कि मानव प्रकृति में समानता के लिए व्यवहारिक खोज ने केवल इंसान को रूढ़िवादी बनाने में योगदान दिया है। स्ट्रॉस आधुनिक समय के संकट का समाधान करने के लिए शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धांत के महत्व की पुष्टि करते हैं। वह इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं कि सभी राजनीतिक सिद्धांत प्रकृति में विचारधारात्मक हैं जो किसी दिए गए सामाजिक-आर्थिक हित को प्रतिबिंबित करते हैं, क्योंकि ज्यादातर राजनीतिक विचारक सामाजिक अस्तित्व में सही क्रम के सिद्धांतों को समझने की संभावना से प्रेरित होते हैं। एक राजनीतिक दार्शनिक को मुख्य रूप से सच्चाई में रुचि रखनी पड़ती है। पिछले दर्शनों को समेकन और स्थिरता पर नजर रखने के साथ अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक सिद्धांत में शास्त्रों की रचना करने वाले लेखक बेहतर हैं क्योंकि वे प्रतिभाशाली थे और उनका लेखन नपा तुला होता था। स्ट्रॉस 'नए' राजनीतिक विज्ञान के तरीकों और उद्देश्यों की जांच करते हैं और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धांत की तुलना में यह दोषपूर्ण था, विशेष रूप से अरस्तु की तुलना में। अरस्तु के अनुसार, एक राजनीतिक दार्शनिक या राजनीतिक वैज्ञानिक को निष्पक्ष होना चाहिए, क्योंकि उसके पास मानव की अंतिम अवस्था तक की अधिक व्यापक और स्पष्ट समझ होती है। राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन समान हैं, क्योंकि सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं से युक्त विज्ञान दर्शन के समान है। अरस्तु का राजनीतिक विज्ञान भी राजनीतिक वस्तुओं का मूल्यांकन करता है, वास्तविक मामलों में दूरदृष्टि की स्वायत्तता का बचाव करता है और राजनीतिक कार्रवाई को अनिवार्यतः नैतिक रूप से देखता है। ये परिसर व्यवहारवाद से इनकार करते हैं, क्योंकि यह राजनीतिक दर्शन को राजनीतिक विज्ञान से अलग करता है और सैद्धांतिक और व्यावहारिक विज्ञान के बीच भेद को प्रतिस्थापित करता है। ऐसी मान्यता है कि व्यावहारिक विज्ञान सैद्धांतिक विज्ञानों से प्राप्त हुए हैं, लेकिन उस प्रकार से नहीं जिस प्रकार से शास्त्रीय परंपरा को दर्शाया जाता है। सकारात्मकवाद की तरह व्यवहारवाद विनाशकारी है, क्योंकि यह अंतिम सिद्धांतों के बारे में ज्ञान से इनकार करता है। उसका दिवालियापन स्पष्ट है, क्योंकि वह असहाय है, गलत से सही में अंतर करने में असमर्थ है, सर्वसत्तावाद के उदय के सन्दर्भ में अन्याय से न्याय के उदय के सन्दर्भ में देखता है। स्ट्रॉस ईस्टन का विरोध करते हैं और उनके ऐतिहासिकवाद पर आरोप लगाते हैं कि नया विज्ञान राजनीतिक सिद्धांत में गिरावट के लिए ज़िम्मेदार है, क्योंकि इसने मानक मुद्दों की समग्र उपेक्षा के कारण पश्चिम के सामान्य राजनीतिक संकट की ओर इशारा किया और उत्साहित किया। वोगेलिन राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांत को अविभाज्य मानते हैं और यह भी कि एक के बिना दूसरा संभव नहीं है। राजनीतिक सिद्धांत विचारधारा, यूटोपिया या वैज्ञानिक पद्धति नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत और

समाज दोनों में सही क्रम की एक अनुभवी विज्ञान पद्धति है। इसे गंभीर और अनुभवजन्य रूप से क्रम की समस्या को अलग करना होता है। सिद्धांत समाज में मानव अस्तित्व के बारे में केवल एक विचार मात्र नहीं है, बल्कि यह अनुभवों के एक निश्चित वर्ग की सामग्री की व्याख्या करके अस्तित्व के अर्थ को तैयार करने का प्रयास है। इसका तर्क मनमाने ढंग का नहीं है, लेकिन एकत्रित अनुभवों से इसकी वैधता प्राप्त करता है जिसमें इसे स्थायी रूप से अनुभवजन्य नियंत्रण के लिए संदर्भित होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राजनीतिक सिद्धांत की प्रासंगिकता के बारे में बहस पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 राजनीतिक सिद्धांत के दृष्टिकोण

सिद्धांतकारों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले राजनीतिक सिद्धांत की विभिन्न धारणाओं को पहचानना और वर्गीकृत करना काफी मुश्किल है। कठिनाई सिद्धांतकारों के बीच अभ्यास करने के लिए प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है, जिसमें वे विभिन्न अवधारणाओं और परंपराओं पर चित्रण शुरू करते हैं। यह और भी सत्य है, जैसा कि हम बाद में देखेंगे, समकालीन राजनीतिक सिद्धांत के साथ, जो इसके पहले थे। अतीत में, सिद्धांतवादियों ने कुछ हद तक सिद्धांत में अवधारणा की शुद्धता बनाए रखी– निर्माण और शायद ही कभी उनके द्वारा चुने गए ढांचे को आगे बढ़ाया। लेकिन यह समकालीन समय पर लागू नहीं होता है, जो सिद्धांत की एक दस्ते की पहचान हैं जो प्रकृति में संकर दिखाई देता है। लेकिन व्यापक रूप से कहना चाहें तो, राजनीतिक सिद्धांत में तीन अलग–अलग धारणाएं उभरीं जिनके आधार पर अतीत और वर्तमान दोनों सिद्धांतों को अवधारणाबद्ध, जांच और मूल्यांकन किया जा सकता है। वे हैंः ऐतिहासिक, सामान्य, और अनुभवजन्य।

2.6.1 ऐतिहासिक दृष्टिकोण

कई सिद्धांतकारों ने इतिहास से अंतर्दृष्टि और संसाधनों के आधार पर सिद्धांत-निर्माण का प्रयास किया है। सेबाइन ऐतिहासिक अवधारणा के मुख्य प्रतिपादकों में से एक हैं। उनकी राय में, एक प्रश्न, जैसे कि, राजनीतिक सिद्धांत की प्रकृति क्या है, का वर्णन वर्णनात्मक रूप से किया जा सकता है; इस तरह, सिद्धांत ने ऐतिहासिक घटनाओं और विशिष्ट परिस्थितियों का जवाब दिया है। दूसरे शब्दों में, इस परिप्रेक्ष्य में, राजनीतिक सिद्धांत स्थिति पर निर्भर हो जाता है, जिसमें प्रत्येक ऐतिहासिक स्थिति एक समस्या निर्धारित करती है, जो बदले में, सिद्धांत द्वारा तैयार किए गए समाधानों का ख्याल रखती है। राजनीतिक सिद्धांत की यह अवधारणा परंपरा की तुलना में अलग है। कोबबान भी यह मानते हैं कि परंपरागत विधि, जिसमें इतिहास का बोध पूरी तरह से दिया जाता है, राजनीतिक सिद्धांत

की समस्याओं पर विचार करने का सही तरीका है। यह सच है कि अतीत, सिद्धांत निर्माण के हमारे प्रयास में एक मूल्यवान गाइड के रूप में कार्य करता है, और हमें सिखाता है कि हम अपनी मौलिकता के बारे में भी बहुत अधिक सुनिश्चित न हों। यह इस तरफ भी इशारा करता है कि अब यह संभव हो गया है कि अन्य तरीकों पर भी प्रकाश डाला जाए जो कि केवल फैशनेबल और प्रभावशाली नहीं होगा। ऐतिहासिक ज्ञान हमें पिछली पीढ़ियों की असफलताओं के बारे में भी संवेदनशील बनाता है और वर्तमान के सामूहिक ज्ञान के साथ संबंध रखता है और हमारे अंदर कल्पनाशीलता को बढ़ावा देता है।

इसके ऊपर और पहले, ऐतिहासिक अवधारणा भी हमारे मानक दृष्टि में महत्वपूर्ण योगदान देती है। विचारों का इतिहास हमें बता सकता है कि हमारा सामाजिक और राजनीतिक ब्रह्मांड उन चीज़ों का एक उत्पाद है जिनकी जड़ अतीत में है। और उन्हें बेहतर ढंग से हमें पता चलेगा कि हमारे पास कैसे कुछ निश्चित मूल्य, मानदंड और नैतिक अपेक्षाएं हैं और वे कहां से आए हैं। इस तरफ की समझने की क्षमता हमारे अंदर होने के कारण ही, इन मूल्यों से पूछताछ करना और उनकी उपयोगिता का गंभीर आंकलन करना संभव है। लेकिन इस धारणा के साथ अंधा लगाव मूर्खता के बिना नहीं है। राजनीतिक सिद्धांत नामक योजना की नवीनता यह है कि इसकी प्रत्येक विशिष्ट स्थिति अद्वितीय है, नयी चुनौतियों के रहस्य से जुड़ा है। इसलिए, अतीत के मूल्य को कभी-कभी समाप्त कर दिया जाता है और यहां तक कि बाधा भी हो सकती है, अगर कोई इस पहलू से अनजान है। इसलिए, एक निश्चित स्तर से परे राजनीतिक सिद्धांत में इस दृष्टिकोण की उपयोगिता संदिग्ध है क्योंकि यह हमेशा पुराने समय से विचारों से बाहर निकलने के लिए तैयार है। विचारों के सूचक मूल्य रहते हैं, लेकिन सैद्धांतिक कार्य काफी कम हो जाता है। इसलिए, राजनीतिक सिद्धांत में इस दृष्टिकोण की उपयोगिता एक निश्चित स्तर से परे है और यह संदिग्ध है, क्योंकि यह हमेशा पुराने समय से पुराने विचारों से बंधा हुआ है।

2.6.2 मानक अथवा निर्देशात्मक दृष्टिकोण

राजनीतिक सिद्धांत में मानक धारणा विभिन्न नामों से जानी जाती है। कुछ लोग इसे दार्शनिक सिद्धांत कहते हैं, जबकि अन्य इसे नैतिक सिद्धांत के रूप में संदर्भित करते हैं। मानक अवधारणा इस धारणा पर आधारित है कि सिद्धांत और उद्देश्य, तर्क, अंतर्दृष्टि और अनुभवों की सहायता से तर्क, उद्देश्य और अंत के संदर्भ में दुनिया और इसकी घटनाओं का अर्थ लिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह मूल्यों के बारे में दार्शनिक अटकलों की एक परियोजना है। ऐसे प्रश्न, जो मानकवादियों द्वारा पूछे जाते हैं, होंगेः राजनीतिक संस्थानों का अंत क्या होना चाहिए? व्यक्तिगत और अन्य सामाजिक संगठनों के बीच संबंधों को क्या सूचित करना चाहिए? समाज में कौन सी व्यवस्था मॉडल या आदर्श बन सकती है और नियमों और सिद्धांतों को किस पर शासन करना चाहिए? कोई चाहे तो यह कह सकता है कि उनकी चिंताएं नैतिक हैं और इसका उद्देश्य आदर्श प्रकार का निर्माण करना है। इसलिए, ये सिद्धांतवादी ही हैं जिन्होंने हमेशा अपनी शक्तिशाली कल्पना के माध्यम से राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में 'यूटोपिया' की कल्पना की है। सामान्य राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक दर्शन की ओर बहुत ज़्यादा निर्भर करता है, क्योंकि इससे इसके अच्छे जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है और इसे पूर्ण मानदंड बनाने के अपने प्रयास में ढांचे के रूप में भी उपयोग किया जाता है। असल में, उनके औपचारिक हथियारों को राजनीतिक दर्शन से ले लिया जाता है और इसलिए, वे हमेशा अवधारणाओं के बीच अंतर-संबंध स्थापित करने की कोशिश करते हैं और घटनाओं के साथ-साथ उनके सिद्धांतों में सुसंगतता की तलाश करते हैं, जो दार्शनिक दृष्टिकोण के विशिष्ट उदाहरण हैं। लियो स्ट्रॉस ने दृढ़ता से सिद्धांत के

लिए मामले की वकालत की है और तर्क दिया है कि प्रकृति द्वारा राजनीतिक चीजें अनुमोदन या अस्वीकृति के अधीन हैं और अच्छे या बुरे और न्याय या अन्याय को छोड़कर किसी भी अन्य शर्तों में उनका न्याय करना मुश्किल है। लेकिन मानदंडवादियों के साथ समस्या ये है कि वे मूल्यों का मूल्यांकन करते समय, वे उन्हें सार्वभौमिक और पूर्ण के रूप में चित्रित करते हैं। उन्हें एहसास नहीं है कि भलाई के लिए पूर्ण मानक बनाने की उनकी इच्छा बिना संकट के नहीं है। और वह नैतिक मूल्य समय और स्थान के सापेक्ष एक भारी व्यक्तिपरक सामग्री के साथ हैं, जो पूर्ण मानक के किसी भी निर्माण की संभावना को रोकता है। हमें अच्छी तरह से यह याद रखना होगा कि यहां तक कि एक राजनीतिक सिद्धांतवादी भी दुनिया के आंकलन में एक व्यक्तिपरक साधन है और यह अंतर्दृष्टि कई सशर्त कारकों से हैं, जो प्रकृति में विचारधारात्मक हो सकती हैं।

अनुभवजन्य सिद्धांत के प्रतिपादकों ने मानकवाद की निम्न बात के लिए आलोचना की:

1) मूल्यों की सापेक्षता

2) नैतिकता और मानदंडों का सांस्कृतिक आधार

3) प्रतिष्ठानों में वैचारिक विषय सूची, एवं

4) परियोजना का सार और यूटोपियन प्रकृति

लेकिन अतीत के गहराई में, जो मानक सिद्धांत का ज़ोरदार समर्थन किया करते थे, उन्होंने हमेशा अपने सिद्धांतों को अपने समय की वास्तविकता की समझ के साथ जोड़ने की कोशिश की। हाल के दिनों में, नकारात्मक सिद्धांत के भीतर पुरानी संवेदनशीलता फिर से उभरी है और अच्छे जीवन और अच्छे समाज के भाव को विधिवत और अनुभवजन्य चतुरता से मेल किया गया है। जॉन रॉल्स की पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ़ जस्टिस' एक ऐसा मामला है जो अनुभवजन्य निष्कर्षों में तार्किक और नैतिक राजनीतिक सिद्धांत को सहारा देने का प्रयास करता है। रॉल्स, अपनी कल्पना के साथ, वितरण न्याय और कल्याणकारी राज्य के बारे में असली दुनिया की चिंताओं के साथ मानक दार्शनिक तर्कों को जोड़ने के लिए 'मूल स्थिति' बनाते हैं।

2.6.3 अनुभवजन्य दृष्टिकोण

बीसवीं शताब्दी में जिस राजनीतिक सिद्धांत ने प्रभुत्व किया, वह आदर्शता नहीं है, लेकिन एक और अवधारणा जिसे अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है, जो कि अनुभवजन्य अवलोकनों से सिद्धांतों को उत्पन्न करता है। अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत उन सिद्धांतों को ज्ञान की स्थिति प्रदान करने से इंकार कर देता है, जो मूल्य निर्णय में शामिल होते हैं। स्वाभाविक रूप से, इसलिए, मानक राजनीतिक सिद्धांत को केवल 'वरीयताओं' और 'मत की अभिव्यक्ति' के बयान के रूप में उजागर किया जाता है। मूल्य-मुक्त सिद्धांत के लिए अभियान राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र को वैज्ञानिक और उद्देश्य के क्षेत्र में शुरू करने के लिए शुरू किया गया और इसलिए, कार्य के लिए एक और अधिक विश्वसनीय मार्गदर्शन करना। इस नयी स्थिति निर्धारण को सकारात्मकवाद के रूप में जाना जाने लगा। सकारात्मकता के उद्भव के तहत, राजनीतिक सिद्धांतकारों ने सिद्धांत के आधार पर राजनीतिक घटनाओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार किया जिसे अनुभवी रूप से सत्यापित और साबित किया जा सकता था। इस प्रकार, उन्होंने समाज के प्राकृतिक विज्ञान को बनाने का प्रयास किया और इस प्रयास में, दर्शन को विज्ञान

का एक मात्र जोड़ा गया। सिद्धांत के इस तरह के एक स्पष्टीकरण ने एक सिद्धांतवादी की भूमिका को एक अनिच्छुक पर्यवेक्षक के रूप में चित्रित किया, सभी प्रतिबद्धताओं को समाप्त कर दिया और सभी मूल्यों को निकाला।

राजनीतिक सिद्धांत में यह अनुभवजन्य परियोजना ज्ञान के अनुभववादी सिद्धांत पर आधारित थी, जिसका दावा है कि सत्य और झूठ का गठन करने के लिए पूर्ण विकसित मानदंड है। इस मानदंड का सार प्रयोग और सत्यापन सिद्धांत में दर्ज है।

जब राजनीतिक सिद्धांत इस प्रभाव में पड़ रहा था, तो एक तथाकथित क्रांति शुरू हुई और 'व्यवहारिक क्रांति' के रूप में लोकप्रिय हो गई। यह क्रांति 1950 के दशक में राजनीतिक सिद्धांत के भीतर एक प्रभावशाली स्थिति तक पहुंच गई और नई सुविधाओं की वकालत करके अध्ययन और अनुसंधान के पूरे क्षेत्र को अपनी परिधि में ले लिया। इसमें शामिल थेः

1) विश्लेषण में मात्रात्मक तकनीक को प्रोत्साहित करना।
2) मानक ढांचे के उन्मूलन और अनुभवजन्य अनुसंधान के प्रचार जो सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए अतिसंवेदनशील हो सकते हैं।
3) विचारों के इतिहास की स्वीकृति और अस्वीकृति।
4) सूक्ष्म अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करना क्योंकि यह अनुभवजन्य उपचार के लिए अधिक सक्षम था।
5) विशेषज्ञता का गौरवगान।
6) व्यक्ति के व्यवहार से डाटा प्राप्त करना और
7) मूल्य-मुक्त शोध के लिए आग्रह करना।

वास्तव में, व्यवहारिक वातावरण को एक विरोधी सिद्धांत की अवस्था द्वारा अधिभारित किया गया था और जिन लोगों ने परंपरागत अर्थ में सिद्धांत पर हमला किया था, वो केवल एक का दिन था। थ्योरी को हास्यास्पद बना दिया गया था और विचारधारा को, अमूर्तता, आध्यात्मिक तत्वों और यूटोपिया के समानार्थी बना दिया गया था। कुछ साहसीवादियों ने उद्यम के रूप में सिद्धांत के लिए विदाई की भी वकालत की। वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के उत्साह में, उन्होंने वास्तविकता के एक पहलू को भी कम कर दिया और विचार और वास्तविकता के बीच भेद को धुंधला कर दिया। इस प्रकार, उन्होंने जल्द ही विज्ञान के कुछ दार्शनिकों के क्रोध और आग का वे लोग शिकार हुए जिन्होंने विज्ञान के उत्तर-सकारात्मकवादी दृष्टिकोण के लिए एक नई दूरदर्शिता की पेशकश की। कार्ल पॉपर ने वैज्ञानिक ज्ञान के एक मानदंड के रूप में 'मिथ्याकरण' के सिद्धांत को निर्धारित करके नई अवस्था को जन्म दिया और तर्क दिया कि सभी ज्ञान अनुमानित, टिकाऊ और अंतिम सत्य से बहुत दूर थे। वास्तविक मोड़ या सफलता विज्ञान के दर्शन में तब आई, जब थॉमस कुन्ह, इम्रे लाकाटोस और मैरी हेसे ने तथाकथित वैज्ञानिक सिद्धांत को ध्वस्त कर दिया। कुन्ह की किताब, "वैज्ञानिक क्रांति की संरचना", सकारात्मक सिद्धांत की शोक और विफलताओं को बाहर निकालने का मार्ग प्रशस्त किया यह दर्शाता है कि कैसे सभी विचार अंतर-व्यक्तिपरक संचार के साधन के रूप में विचारशील और व्याख्या पर निर्भर थे। कुन्ह ने जोरदार तर्क दिया कि यह न केवल तर्कहीन सम्मेलन था जो कि शब्दार्थगत ढांचे के निर्माण के पीछे छिपे हुए थे, लेकिन व्याख्या और आलोचना द्वारा तैयार तर्कसंगत व्याख्यान द्वारा भी सूचित किया गया था।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राजनीतिक सिद्धांत की अनुभवजन्य और मानक धारणाओं के बीच अंतर करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6.4 समकालीन दृष्टिकोण

समकालीन राजनीतिक सिद्धांत ने 1980 और 90 के दशक में बौद्धिक दृष्य पर अपनी उपस्थिति बनाई। ज्यादातर सिद्धांत में स्थापित परंपराओं के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप में और ज्ञान और विज्ञान जैसे प्रबोधन की श्रेणियां डालीं जिस पर कि राजनीतिक सिद्धांत में सभी परंपराओं को एक गंभीर और खोज आलोचना से बांधे हुए थे। उन्होंने कई पहलुओं को लाया जिन्हें बारीकी से जांच के तहत राजनीतिक सिद्धांत द्वारा सत्य की नींव के रूप में अपना लिया गया और नए सामाजिक और राजनीतिक संसार को समझने और विचार करने के लिए नए सिद्धांतों को निर्धारित किया गया जिनमें से कुछ ने "उत्तर-आधुनिक स्थिति" को बनाये रखा। हालांकि, यह विश्लेषण के एक व्यापक ढाँचे के तहत आज दिखाई देने वाले विभिन्न सैद्धांतिक रुझानों की दमन करने के लिए व्यक्तिपरक होगा। उदाहरण के लिए, सांप्रदायिकता और बहुलसंस्कृतिवाद के साथ सामूहिकतावाद और आधुनिकवाद के बाद चर्चा करना उनके खिलाफ बौद्धिक अत्याचार और उनकी चिंताओं और प्रतिबद्धताओं के लिए होगा। उदहारण के तौर पर, समुदायवाद और बहुलसंस्कृतिवाद के साथ उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकवाद पर उनकी चिंताओं और प्रतिबद्धताओं के खिलाफ बौद्धिक अत्याचार के साथ मिलकर विचार विमर्श करना क्योंकि उनके इतिहास, उनकी मानक चिंता के साथ-साथ सैद्धांतिक उपकरण और अनुभवजन्य संदर्भों में एक बड़ी असमानता और मोड़ है। लेकिन फिर भी कोई सैद्धांतिक क्षेत्र की योजना बना सकता है जिस पर राजनीतिक सिद्धांत के साथ उनकी भागीदारी होती है। व्यापक जोर जो कई समकालीन सिद्धांतकारों और सिद्धांतों को एक साथ लाता है, दोनों को एक साथ निम्नलिखित के तहत रख सकते हैंः

अं) **सार्वभौमिकता के लिए विपक्ष**

समकालीन समय में राजनीतिक सिद्धांतीकरण अतीत के राजनीतिक सिद्धांत के सार्वभौमिक दावों के अधीन हो चुका है, इस परंपरा के बावजूद भी कि वे महत्वपूर्ण सूक्ष्म परीक्षण से संबंधित थे। उन्होंने सामाजिक और अस्थायी संदर्भ के बिना उदार सार्वभौमिकता प्रकट की है, और उनकी राय में, पश्चिमी समाज के अनुभव पर आधारित गुप्त 'विशिष्टता' ने सार्वभौमिक मूल्यों और मानदंडों के रूप में स्वांग रचा है। वे तर्क देते हैं कि सार्वभौमिक सिद्धांतों के लिए अपील मानकीकरण के समान है;

इसलिए, न्याय का उल्लंघन जो किसी विशेष समुदाय या जीवन के रूप में निहित हो सकता है और जो अपने मूल्यों और मानक सिद्धांत को सम्मिलित कर सकता है। हाल के दिनों में सांप्रदायिक सिद्धांत और बहुलसंस्कृतिवाद सिद्धांत ने इसे काफी बल दिया है और इस तथाकथित सार्वभौमिक सिद्धांतों को 'विशिष्टतावादी' का केंद्र कहा गया, जिसने हमेशा मानव जाति के एकमात्र दृष्टिकोण के रूप में 'अच्छाई' का एक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

ब) **बड़े विवरणों की आलोचना**

उदारवादी और मार्क्सवादी, दोनों किस्मों के बड़े विवरण इस आधार पर आलोचना के घेरे में उभर कर आ गये हैं कि उदारवाद और मार्क्सवाद द्वारा वास्तविकता और सत्य की कोई अतिव्यापी या अनुवांशिक नींव नहीं है, क्यूंकि समकालीन सिद्धांतों में से कुछ को 'मूल सिद्धांत विरोधी' घोषित किया गया है, जैसे, राज्य संप्रभुता और शक्ति। उनके साथ निष्पक्षता होने पर, वे सभी मूलभूत बातें अस्वीकार नहीं करते हैं, बल्कि केवल अनुवांशिक बातें अस्वीकार करते हैं। बाद के आधुनिकतावादी बड़े विवरणों पर हमला करने में सबसे आगे हैं और तर्क देते हैं कि उद्देश्य पूर्व निर्धारित वास्तविकता या एक उद्देश्यपूर्ण सामाजिक वस्तु नहीं है जो इस तरह के बड़े विवरणों और उनके प्रारूपों का समर्थन कर सकता है।

स) **उत्तर-सकारात्मकवाद**

यह राजनीतिक सिद्धांत में व्यवहारवादियों द्वारा समर्थित सामाजिक विज्ञान में मूल्य तटस्थता के साथ पहले की प्रतिबद्धता का सबूत है। समकालीन सिद्धांत मूल्य विहीन संस्थाओं को बेकार कहते हैं और मानते हैं कि राजनीतिक सिद्धांत एक स्वाभाविक रूप से प्रामाणिक और राजनीतिक रूप से लगी हुई परियोजनाएं हैं, जो कि भविष्य के लिए तैयारियों और एक दूरदृष्टि प्रदान करने वाला माना जाता है।

द) **अनुभवजन्य और तुलनात्मक**

समसामयिक सिद्धांतवादियों के बीच उत्तर-सकारात्मक जोर उन्हें किसी सामान्यीकरण के प्रयास से पहले अनुभवजन्य और तुलनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता की वकालत करने से नहीं रोकता है। बहुलसंस्कृतिवाद एक ऐसा उदाहरण है, जो कि विषय वस्तु के प्रति संवेदनशील है। वास्तव में, इस तरह के अनुभवजन्य – तुलनात्मक कार्यप्रणाली संस्कृतियों और महाद्वीपों में व्यापक सामान्यीकरण पर एक जांच की तरह होगी। समकालीन राजनीतिक सिद्धांत से आने वाली नई अंतर्दृष्टि के बावजूद, वे कई कमजोरियों से पीड़ित हैं। शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धांत के विपरीत, अभी तक तुलनात्मक-आनुभविक जांच नहीं हुई है और सिद्धांतकारों के बीच अन्य सिद्धांतकारों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति बहुत ज़्यादा है। आदर्शवादी उद्यम तभी उपयोगी हो सकता है जब वह वास्तविकता से बंधा हो। इसलिए, समाज और राजनीति की वास्तविक चुनौती अनुभवजन्य वास्तविकता के आधार पर मानक सिद्धांत में निहित है। यह एकमात्र तरीका है, जिसमें केवल सामान्यीकरण के साथ एक वैध राजनीतिक सिद्धांत उभर सकता है, जो आधुनिकतावादी दृष्टिकोण और उसकी सापेक्षता और प्रसार की कमजोरियों को भी दूर करेगा जो हमेशा राजनीतिक परियोजनाओं के लिए जन्मजात नहीं होते हैं। इससे लाभ भी हो सकता है, शेल्डन वोलिन इसे 'महाकाव्य सिद्धांत' कहते हैं।

बोध प्रश्न 4

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) कुछ व्यापक चुनौतियों पर चर्चा करें, जो समकालीन सिद्धांतकारों को एक साथ लाते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 सारांश

चूंकि हमारे पास राजनीतिक सिद्धांत की अलग-अलग अवधारणाएं हैं, इसलिए वे विभिन्न परंपराओं में अलग-अलग अर्थ प्राप्त करते हैं। हमने देखा है कि राजनीतिक सिद्धांत क्यों उभरता है और यह कैसे राजनीति में मानव हस्तक्षेप को सुविधाजनक बनाकर इतिहास को आकार देता है और कैसे तय करता है। सिद्धांतकारों द्वारा आयोजित की जाने वाली विभिन्न अवधारणाओं पर भी चर्चा की गई है और उनकी दिक्कतों पर प्रकाश डाला गया है। समकालीन उद्यम, जो सामाजिक और राजनीतिक वास्तविकता के बारे में हमारी समझ में नई दिशाएं खोलने का दावा करता है, इसकी परिसीमाओं के साथ चर्चा की गई है। पिछली चर्चा से स्पष्ट रूप से उभरता है कि दर्शन और विज्ञान राजनीतिक सिद्धांत नामक परियोजना में एक-दूसरे को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते हैं, यदि एक दूरदृष्टि मानव जाति की मुक्ति के लिए एक मिशन है और यहां तक कि किसी चीज़ की अनुपस्थिति का उद्देश्य 'अच्छा' या उद्देश्य 'सत्य' है तो सिद्धांत के लिए व्यावहारिक आधार को अपनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। यह न केवल वांछनीय है, बल्कि व्युत्पन्न भी है। राजनीतिक सिद्धांत में कोई भी परियोजना जो कठोर आलोचना के अधीन होकर प्रामाणिक सोच के साथ अनुभवजन्य निष्कर्षों को एकीकृत करती है, राजनीतिक सिद्धांत में रचनात्मकता के लिए द्वार खोल सकती है जिसके आधार पर हम भविष्य में मार्गनिर्देशन कर सकते हैं।

2.8 संदर्भ

बैरी, बी, (1989), लोकतंत्र, शक्ति और न्याय में अजीबोगरीब मौत की विचित्र मौतः राजनीतिक सिद्धांत में निबंध, ऑक्सफोर्डः क्लेरेंडन प्रेस

बर्लिन, एस. आई., (1994), क्या राजनीतिक सिद्धांत अभी भी मौजूद है? 'पी. लैसलेट और डब्ल्यू जी रनसीमन, दर्शनशास्त्र, राजनीति और समाज में, 2 सीरीज़ (संस्करण) ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल

लैस्लेट, पी और डब्ल्यू जी रनसीमन (1957), *दर्शन, राजनीति और समाज*, ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल

सबाइन, जी. एच. (1939), राजनीति और दृष्टिः पश्चिमी राजनीतिक विचार में निरंतरता और नवीनता, बोस्टनः लिटिल ब्राउन

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदुओं पर प्रकाश डाला जाना चाहिए–

   कैसे राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक राजनीति विज्ञान का पर्याय है।

   राजनीतिक सिद्धांत और राजनीतिक दर्शन के अंतर-संबंध पर चर्चा करें।

   राजनीतिक सिद्धांत पर हेगेल के उद्धरण पर विस्तृत चर्चा करें।

   राजनीतिक सिद्धांत को परिभाषित करने में भिन्नता।

2) आपके उत्तर में यह व्याख्या होनी चाहिए कि यह राजनीतिक विज्ञान, राजनीतिक विचार और राजनीतिक विचारधारा से अलग कैसे है।

बोध प्रश्न 2

1) इस बहस की जांच करें कि क्या राजनीतिक सिद्धांत मृत है और लेवी स्ट्रॉस के विचारों पर भी चर्चा करें।

बोध प्रश्न 3

1) आपके उत्तर को स्पष्ट तथ्य-द्वंदवाद को उजागर करना चाहिए और उनकी ताकत और कमजोरियों का उल्लेख करना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1) सार्वभौमिकता के विरोध को उजागर करें, भव्य आख्यानों की आलोचना, प्रत्यक्षवाद के बाद और अनुभवजन्य और तुलनात्मक पर ध्यान केंद्रित करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 2
अवधारणाएँ

खंड 2 अवधारणाएँ

खंड 2 में चार इकाइयाँ है, जो राजनीति विज्ञान में स्वतंत्रता, समानता, न्याय और अधिकारों के मूल्यों से संबंधित है। **इकाई 3**, स्वतंत्रता की संकल्पना पर प्रकाश डालती है, जो कि फ्रांसीसी क्रांति के तीन प्रश्नादर्शों–समानता, न्याय और स्वतंत्रता में से एक है, उदारवाद का स्वतंत्रता पर स्पष्ट जोर है तथा जॉन लॉक ने स्वतंत्रता का नकारात्मक दृष्टिकोण दिया। 20वीं सदी में जे एस मिल, टी एच ग्रीन एवं अन्य ने लेखों के माध्यम से सकारात्मक स्वतंत्रता की वकालत की, तब से यह संकल्पना एक लम्बा सफर तय कर चुकी है। प्रश्नाइज़िया बर्लिन द्वारा एक प्रश्नलग व्याख्या दी गई, जिन्होंने स्वतंत्रता के नकारात्मक एवं सकारात्मक विचारों में सामंजस्य बनाने की कोशिश की। **इकाई 4**, समानता की अवधारणा के बारे में है, जिसे प्रश्नाधुनिक समाज में दो रूपों में स्थापित किया गया है। पहली है लोकतांत्रिक नागकिता की समानता तथा दूसरी है स्थिति की समानता। लोकतांत्रिक नागकिता की समानता मुख्य रूप से उन बुनियादी अधिकारों से संबंधित है, जिसका सभी समान रूप से उपयोग कर सकते है, जैसे–वोट का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार इत्यादि। हालांकि, विभिन्न व्यक्तियों के बीच सामाजिक असमानता की भरपाई के लिए पर्याप्त समानता की आवश्यकता है, ताकि स्थिति की समानता भी हो। **इकाई 5**, न्याय के विषय में विचारों को उजागर करती है, एक मानकीय अवधारणा जो स्वतंत्रता एवं समानता के साथ एकीकृत रूप से जुड़ी हुई है। यह वितरणात्मक, प्रक्रियात्मक, सामंजस्यपूर्णात्मक या सामाजिक हो सकती है। इस इकाई में इन सभी पहलुओं की चर्चा के साथ जॉन रॉल्स के विचारों का भी प्रश्नलग से वर्णन किया गया है। **इकाई 6** में अधिकारों की अवधारणा, उसके सिद्धांतों एवं मानव अधिकारों के विचार को शामिल किया गया है।

इकाई 3 स्वतंत्रता*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 स्वतंत्रता का अर्थ तथा प्रकार

3.3 स्वतंत्रता पर जे एस मिल की धारणा

3.4 ईसाइया बर्लिन तथा 'टू कॉन्सेप्ट्स ऑफ लिबर्टी'

3.5 मार्क्सवादी समालोचना तथा स्वतंत्रता का विचार

3.6 स्वतंत्रता पर अन्य सामयिक विचार

3.7 सारांश

3.8 संदर्भ

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.1 उद्देश्य

स्वतंत्रता को आधुनिक राजनीतिक व सामाजिक सिद्धांत में एक सबसे महत्त्वपूर्ण संकल्पना तथा एक बुनियादी लोकतांत्रिक मूल्य माना जाता है। स्वतंत्रता की धारणा का जन्म आधुनिक सभ्य समाज एवं राजनीतिक प्राधिकार की रचना के प्रसंग में ही हुआ। यद्यपि यह अवधारणा उदारवादी सोच से जुड़ी हुई है, उदारवादियों ने इस धारणा पर विभिन्न तरीकों से दृष्टिपात किया है। मार्क्सवादीजन स्वतंत्रता-संबंधी उदारवादी धारणाओं की आलोचना करते हैं और व्यक्ति व समाज संबंधी नितान्त भिन्न मान्यताओं पर इस अवधारणा को दोबारा गढ़ते हैं। इस इकाई में हम स्वतंत्रता विषयक विभिन्न पहलुओं पर नज़र डालेंगे, और इस धारणा के अर्थ, औचित्यों एवं सीमाओं को समझने का प्रयास करेंगे।

3.1 परिचय

स्वतंत्रता की अवधारणा उदारवादी विचारधारा कामूल भाव है. जो सामान्यतौर पर 'नियंत्रण-अभाव के रूप में समझी जाती है। स्वतंत्रता-संबंधी धारणा आधुनिक यूरोप में नए सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक संबंधों की स्थापना के प्रसंग में जन्मी। उक्त धारणा के मूल में तर्कसंगत निर्णयों को लेने में सक्षम, एक समझदार व्यक्ति का विचारथा। यह विवेकी व्यक्ति, यह सोचा गया, आत्म-निर्णय में सक्षम था; दूसरे शब्दों में, व्यक्ति उन निर्णयों को लेने में सक्षम था जो स्वयं उससे संबंध रखते थे। अपनी क्षमताओं को विकसित करने के लिए, व्यक्ति को सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक नियंत्रणों से मुक्ति चाहिए थी।

इस प्रकार, स्वतंत्रता की धारणा का विकास नियंत्रण-अभाव अथवा व्यक्ति की स्वायत्तता-क्षेत्र के रूप में हुआ। साथ ही, तथापि, इस तथ्य को कि एक सामाजिक संगठन के भीतर व्यक्ति अकेला नहीं है और अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध में ही अस्तित्व रखता है, इस बात की अपेक्षा थी कि स्वायत्तता संबंधी उनके क्षेत्रों पर अन्य व्यक्तियों का समान ही अधिकार

*डॉ. (श्रीमती) अनुपमा रॉय, महिला विकास अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली

होना चाहिए। इस लिहाज से कि स्वायत्तता हेतु सभी व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने दावेन्यूनतम विवाद के साथ स्पष्टतया अनुभव किए जा सकें, यह अनिवार्य था कि नियंत्रणों एवं नियमतीकरण संबंधी एक व्यवस्था बनायी जाए और हर एक द्वारा उसका अनुपालन किया जाये। हॉब्स, लॉक एवं रूसो जैसे दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत सामाजिक संविदा संबंधी सिद्धांतों ने नियंत्रणों की अविद्यमानता के रूप में स्वतंत्रता की धारणा सामने रखी। उसी के साथ, उन्होंने उस ढाँचे का प्रस्ताव भी रखा जिसके भीतर वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रकट होनी थी। तदनुसार, राजनीतिक समुदाय का विचार व्यक्तियों की क्षमताओं व स्वायत्तता तथा उन आदेशों की एक समकालिक मान्यता पर आधारित था कि सभी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता पर नियंत्रणों की एक सर्वमान्य श्रृंखला के अधीन होने चाहिए।

तदनुसार, यह बोध अवश्य होना चाहिए कि स्वतंत्रता, जिसका आम समझ में मतलब है स्वच्छंदता अथवा वैयक्तिक कर्म हेतु नियंत्रणों एवं अवरोधों का अभाव, तथा जिसको एक लोकतांत्रिक आदर्श माना जाता है, हमेशा सामाजिक संबंधों में एक विशिष्ट नियंत्रण-श्रृंखला के भीतर जहाँ-तहाँ पाये जाने के रूप में प्रतिपादित किया गया है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों में स्वतंत्रता के स्वीकार्य रूपों में जिसे देखा जाता है, उसके लिए हमेशा सीमायें रही हैं। आगामी भाग में, हम स्वतंत्रता के तत्त्वों तथा उक्त विषयक अवरोधों हेतु औचित्यों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, स्वतंत्रता के अर्थ पर दृष्टि डालेंगे।

3.2 स्वतंत्रता का अर्थ तथा प्रकार

स्वतंत्रता का अर्थ है नियंत्रणों से मुक्ति, अथवा उनका अभाव। किसी व्यक्ति को मुक्त अथवा कुछ करने में स्वतंत्र माना जा सकता है, जब उसके कार्य अथवा विकल्प दूसरे के कार्यों अथवा विकल्पों द्वारा बाधित अथवा अवरुद्ध न हों। यह समझना आवश्यक है कि अवरोधों का अभिप्राय राजनीतिक व अन्य प्राधिकरणों द्वारा डाली गई अड़चनों से है। तदनुसार, कारावास, दासत्व या गुलामी, कानूनों का अधीनीकरण, आदि को पराधीनता अथवा स्वतंत्रता के अभाव की दशाओं के रूप में देखा जा सकता है।

जबकि कारावास अथवा कानून-अधीनीकरण जैसी पराधीनता-संबंधी दशाएँ स्वतंत्रता पर अवरोधों के रूप में प्रतीत हो सकती हैं, हम जानते हैं कि आधुनिक लोकतांत्रिक सामाजिक व राजनीतिक संगठन विधिसंगत एवं संस्थागत संरचनाओं पर आधारित हैं, जो कि हर व्यक्ति की स्वतंत्रता के समान महत्त्व को सुनिश्चित करने पर अभिलक्षित हैं। किसी भी समाज के पास, इसी कारण, कोई असीमित 'स्वतंत्रता-संबंधी अधिकार' नहीं होगा। हर समाज के पास स्वतंत्रता विषयक प्रतिबंधों की एक श्रृंखला होगी, जो कि इस आधार पर न्यायसंगत हैं कि लोग इन प्रतिबंधों को यह मानकर स्वीकार करतें हैं कि स्वतंत्रता का अधिकतम विकास करने के लिए ये सर्वश्रेष्ठ परिस्थितियां है।'नियंत्रण-अभाव' अथवा 'बाह्य अवरोधों का अभाव' के रूप में स्वततंत्रता-बोध का आमतौर पर निषेधात्मक के रूप में वर्णन किया जाता है। स्वतंत्रता का 'नकारात्मक' प्रभाव दो भिन्न अर्थों में दिखाई पड़ता है :

अ) पहले अर्थ में, कानून को स्वतंत्रता के मुख्य अवरोध के रूप में देखा जाता है। हॉब्स ने, उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता का वर्णन 'कानूनों की खामोशी' के रूप में किया। इस प्रकार का दृष्टिकोण स्वतंत्रता को उन कामों से जोड़ते हैं, जिसे करने से अन्य जन लोगों को सोच-समझकर रोकते हैं। यह बोध, इसी कारण,कानून व सरकार दोनों को एक निश्चित सीमा में रहनें के लिए कहता है। जॉनलॉक जैसे दार्शनिकों ने, हालाँकि, इशारा किया कि स्वतंत्रता हेतु किसी वचनबद्धता का अर्थ यह नहीं है कि कानून को समाप्त कर दिया जाए। इसकी बजाय, इसका अर्थ है कि कानून किसी की स्वतंत्रता

को दूसरों के अतिक्रमण से बचाने तक सीमित रहना चाहिए। लॉक ने, इसी कारण, यह पेशकश की कि कानून स्वतंत्रता को सीमाबद्ध नहीं करता, बल्कि उसे वह बढ़ाता है व उसकी रक्षा करता है।

ब) दूसरा दृष्टिकोण स्वतंत्रता को 'विकल्प की स्वतंत्रता' के रूप में देखता है। मिल्टन फ्रीडमैन, उदाहरण के लिए, अपनी पुस्तक *कैपिटलिज़्म एण्ड फ्रीडम* (1962) में कहते हैं कि 'आर्थिक स्वतंत्रता' में शामिल है बाज़ार-व्यवस्था में चुनने की आज़ादी –उपभोक्ता को यह चुनने की आज़ादी कि वह क्या खरीदे, कर्मचारी को यह आज़ादी कि वह अपनी नौकरी अथवा पेशे को चुने और उत्पादक को यह आज़ादी कि वह क्याउत्पादन करे और किसे रोज़गार दे। 'चुनने' का अर्थ है कि व्यक्ति विभिन्न विकल्पों में से बेरोकटोक और स्वैच्छिक चुनाव कर सके।

स्वतंत्रता के विषय में बात करते हुए प्रायः उसकी नकारात्मक व सकारात्मक धारणाओं के बीच भेद किया जाता है, यथा 'बाह्य अवरोधों का अभाव' तथा 'समर्थ करने वाली अथवा मदद करनेवाली दशाओं की विद्यमानता' के बीच। अन्य शब्दों में, कुछ 'करने की आज़ादी' तथा वस्तुतः उसे करने में सक्षम होने के बीच अंतर कुछ करने के लिए स्वाधीन अथवा स्वतंत्र होने को उसे करने से रोका अथवा बचाया जाना नहीं है। जबकि कुछ करने में समर्थ होने हेतु वित्तीय अथवा अन्य क्षमता रखना है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति किसी भी नौकरी को करने के लिए स्वतंत्र हो सकता है, फिर भी, हो सकता है व्यक्ति के पास वे योग्यताएँ अथवा आर्थिक संसाधन न हों जो उसकी उम्मीदवारी को सार्थक बना सकें। राजनीतिक वैज्ञानिक साधारणतः नियंत्रण-अभाव के रूप में स्वतंत्रता तथा उन दशाओं के बीच भेद करते हैं, जो स्वतंत्रता को सार्थक बनाते हैं। एक भूखा मरता आदमी जो एक महँगे रेस्तराँ में खाने के लिए कानूनन स्वतंत्र है (उसे कोई रोक नहीं है), दरअसल कानूनी स्वतंत्रता के आधार पर किसी भी अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता। इस उदाहरण में खाने की स्वतंत्रता को साकार करने के लिए राज्य द्वारा किसी सकारात्मक कार्यवाही की अपेक्षा होगी। यही वह तर्क है जो व्यक्तियों के लिए अवसर बढ़ाने हेतु बनाये गए सामाजिक विधान को सही ठहराने के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐसी सकारात्मक कार्यवाही से राज्य के बारे में कहा जाता है कि न सिर्फ़ असमानता घटायेगा, बल्कि स्वतंत्रता भी बढ़ायेगा।

स्वतंत्रता संबंधी नकारात्मक संकल्पना अंग्रेज़ी, राजनीतिक विचार–सूत्र का लक्षण है, जिसका प्रतिनिधित्व जैरेमी बैन्थम, जेम्स मिल, जॉन स्टुअर्ट मिल, हैनरी सिगविक, हर्बर्ट स्पैन्सर एवं उन सैद्धान्तिक व नव-सैद्धान्तिक अर्थशास्त्रियों ने किया, जिन्होंने मनमानी सरकार के अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्ति पाने के लिए लोगों के दावों का समर्थन किया। नकारात्मक स्वतंत्रता का मुख्य स्वयं सिद्ध सत्य था कि 'हर व्यक्ति अपने हित को सबसे अच्छी तरह जानता है' और राज्य को लोगों के साधन व प्रयोजन तय नहीं करने चाहिए। इस सिद्धांत के लिए अनिवार्य है अनुबन्ध की पवित्रता (sanctity)। पवित्रता संबंधी इस मान्यता में अन्तर्निहित थी यह समझ कि किसी अनुबन्ध में शामिल होने की कार्यवाही, चाहे वह अनुबंध-शर्तें वैयक्तिक स्वतंत्रता में बाधक हों फिर भी वह एक स्वतंत्रता-संबंधी, अभिव्यक्ति थी। इस प्रकार, इन विचारकों के लिए, किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता एक उस क्षेत्र से संबंधित कार्य था, जिसमें उसको अकेला छोड़ दिया गया और कार्यवाही की गुणवत्ता से कोई वास्ता नहीं रखा गया। नकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा स्वतंत्रता के एक अर्थ विषयक सिद्धांत के रूप में सबसे अच्छी तरह समझी जाती है। यद्यपि नकाराम्मक स्वतंत्रता की प्रायः 'भूखा मरने की आज़ादी' के रूप में निन्दा की जाती है, यह समझ कुछ-कुछ भ्रामक है। यह राज्य-हस्तक्षेप पर कोई अनिवार्यतः निषेध लागू नहीं करती, बल्कि सिर्फ़ इतना बताती है कि इसे इस आधार पर सही नहीं ठहराया जा सकता कि यह आज़ादी को बढ़ाती

है, हालाँकि इसको न्यायसंगत ठहराने के लिए असमानता के तर्क का इस्तेमाल किया जा सकता तथापि, नकारात्मक स्वतंत्रता एवं अहस्तक्षेप-सिद्धांत (*laissez-faire*) अर्थव्यवस्थाओं के बीच ऐतिहासिक संबंध से इंकार नहीं किया जा सकता, और उसके अधिकांश समर्थकों ने एक न्यूनतम राज्य का पक्ष लिया है। यह अवधारणा इस अर्थ में उदासीन है कि यह राजनीति की एक व्यापक श्रृंखला के अनुरूप है, और यह अच्छी है या नहीं की ओर संकेत किए बग़ैर स्वतंत्रता की एक दशा का वर्णन करती है।

स्वतंत्रता संबंधी नकारात्मक धारणा की आलोचना आधुनिक उदारवादियों, सामाजिक प्रजातंत्रवादियों एवं समाजवादियों की ओर से हुई है। उन्नीसवीं सदी में उदारवादियों, मुख्यतः टी एच ग्रीन व कुछ हद तक जे. एस. मिल, ने नकारात्मक स्वतंत्रता संबंधी कुछ सबसे पहली आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने महसूस किया कि पूँजीवाद ने सामंतवादी पदानुक्रमों एवं कानूनी प्रतिबंधों से छुटकारा पा लिया है (खासकर आर्थिक पेशों में), परन्तु इसने विशाल जन-साधारण को ग़रीबी, बेरोज़गारी और बीमारी के वशीभूत कर दिया है। ऐसी परिस्थितियाँ स्वतंत्रता को उतना ही बाधित करती हैं जितना जितना कि कानूनी अड़चनें तथा सामाजिक नियंत्रण।

स्वतंत्रता संबंधी सकारात्मक धारणा को अपनाने वाले प्रथम उदारवादियों में एक थे टी एच ग्रीन (1836-82), जिन्होंने स्वतंत्रता को लोगों की 'स्वयं द्वारा सबसे अधिक और सबसे अच्छा किए जाने' संबंधी योग्यता के रूप में परिभाषित किया। यह स्वतंत्रता महज अकेला छोड़ दिए जाने में ही नहीं, बल्कि काम करने की ताकत में भी निहित होती है जिसके द्वारा वह प्रत्येक व्यक्ति हेतु उपलब्ध अवसरों की ओर ध्यान ले जाती है। सकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा ही कल्याणकारी राज्य का आधार रही है। इस धारणा ने राज्यों द्वारा रखे गए सामाजिक कल्याणकारी प्रावधानों के पीछे प्रेरक शक्ति के रूप में काम किया है, जिसके द्वारा स्वतंत्रता समानता से जुड़ गयी।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता की सकारात्मक व नकारात्मक अवधारणाओं में अंतर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 स्वतंत्रता पर जे. एस मिल की धारणा

जे एस मिल की पुस्तक *ऑन लिबर्टी* 1960 के दशक में अकादमिक बहसों में प्रभावशाली रही। मिल की पुस्तक को स्वतंत्रता-संबंधी नकारात्मक अवधारणा की एक व्याख्या के रूप में देखा जाता है। वैयक्तिक स्वतंत्रता का पक्ष लेते हुए मिल प्रथाओं और रिवाजों की तरफ अवमानना का भाव रखते थे। ऐसी भावना मिल उन सभी कानूनों और आदर्शों के लिए भी रखते थे, जिन्हें तर्कसंगत और न्यायसंगत नही कहा जा सकता था। कभी-कभी यह भी तर्क

दिया जाता है कि मिल के अनुसार कोई भी स्वतंत्र कार्य, चाहे वह कितना भी अनैतिक हो, अपने में सद्‌गुण का कुछ तत्त्व रखता है, क्योंकि वह स्वतंत्रतापूर्वक किया गया है। यद्यपि मिल ने व्यक्ति के कार्यों पर नियंत्रण को बुराई माना, उन्होंने नियंत्रणों को पूरी तरह अतर्कसंगत नहीं माना। फिर भी, उन्होंने महसूस किया कि समाज के भीतर स्वतंत्रता के पक्ष में एक परिकल्पना हमेशा रहती है। इसलिए अगर स्वतंत्रता पर कोई अवरोध लगाता है, तो उसका औचित्य भी उसी को बताना होगा।

मिल के अनुसार, स्वतंत्रता का उद्देश्य था 'व्यक्तित्व' हासिल करने को बढ़ावा देना था। व्यक्तित्व (individuality) का अभिप्राय व्यक्ति के विशिष्ट लक्षण से है, और आज़ादी का अर्थ है, इस व्यक्तित्व का बोध, यथा निजी विकास एवं आत्म-निश्चय। मनुष्यों में व्यक्त्वि के गुण ने ही उन्हें निष्क्रिय की बजाय सक्रिय बनाया, साथ ही सामाजिक व्यवहार की वर्तमान रीतियों का समालोचक भी, ताकि वे जब तक परम्पराओं को तर्कसंगत न पायें उन्हें स्वीकार न करें। मिल के तानेबाने में स्वतंत्रता इसीलिए मात्र नियंत्रण-अभाव के रूप में नहीं, बल्कि कुछ वांछित प्रवृत्तियों की सुविवेचित वृद्धि (deliberate cultivation) में नज़र आती है। यही बात है जिसके कारण मिल को अक्सर स्वतंत्रता की सकारात्मक संकल्पना की ओर आकर्षित होते देखा जाता है। स्वतंत्रता संबंधी मिल की संकल्पना का मूल विकल्प की धारणा में भी है। यह बात उनके इस विश्वास से प्रमाणित होती है कि वह व्यक्ति जो 'अपने लिए स्वयं की जीवन-योजना को चुनने' का अधिकार दूसरों को दे देता है, 'व्यक्तित्व' अथवा आत्म-निश्चय संबंधी मानसिक शक्ति नहीं दर्शाता। ऐसा लगता है कि ऐसे व्यक्ति के पास वानर की तरह नकल करने की ही क्षमता है। दूसरी ओर, वह व्यक्ति है 'जो स्वयं के लिए योजना चुनता है, अपनी सभी मानसिक शक्तियों को काम में लाता है'। अपने व्यक्तित्व को स्पष्टतया अनुभव करने के लिए, और उसके द्वारा स्वतंत्रता की स्थिति प्राप्त करने के लिए, यह आवश्यक था कि व्यक्तिजन दबावों अथवा मानदण्डों व प्रथाओं का विरोध करें जो आत्म-निश्चय में बाधक थे। मिल का, तथापि, यह विचार भी था कि विरोध करने व स्वतंत्र विकल्प चुनने की क्षमता रखने वाले लोग बहुत ही थोड़े हैं। शेष जन 'वानर की तरह नकल' में विश्वास रखने वाली विषयवस्तु हैं, जिसके द्वारा वे परतंत्रता की दशा में रहते हैं। स्वतंत्रता-संबंधी मिल की अवधारणा को इसी कारण संभ्रांतवादी के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि व्यक्तित्व का उपभोग मात्र एक अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा ही किया जा सकता है, न कि व्यापक रूप से जन-साधारण द्वारा।

अन्य उदारवादियों की ही भाँति, मिल ने व्यक्ति व समाज के बीच सीमा-निर्धारण पर बल दिया। वैयक्तिक स्वतंत्रता पर तर्कसंगत अथवा न्यायोचित प्रतिबंधों के बारे में बात करते हुए, मिल ने स्वयं-संबंधी एवं अन्य-संबंधी कार्यों के बीच भेद किया, यथावे कार्य जो सिर्फ़ व्यक्ति-विशेष को प्रभावित करते थे, और वे कार्य जो आम समाज को प्रभावित करते थे। किसी व्यक्ति पर किसी प्रतिबंध अथवा हस्तक्षेप को सिर्फ़ दूसरों को नुकसान से बचाने के लिहाज से ही सही ठहराया जा सकता था। उन कार्यों के संबंध में व्यक्ति को स्वयं प्रभावित करते थे, व्यक्ति संप्रभु था। कानूनी व सामाजिक बाधाओं की ऐसी समझ यह इशारा करती है कि व्यक्ति व समाज के बीच रिश्ता 'पिता-पुत्र' का नहीं है। व्यक्ति चूँकि अपने हितों का सर्वश्रेष्ठ पारखी होता है, कानून व समाज किसी व्यक्ति के 'सर्वश्रेष्ठ हितों' को प्रोत्साहन देने के लिए हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

इसी प्रकार, यह धारणा कि किसी कार्य पर सिर्फ़ तभी नियंत्रण लगाया जा सकता है यदि वह दूसरों को हानि पहुँचाता हो, इस धारणा को नकारता है कि कुछ कार्य अन्तर्भूत (intrinsically) रूप से अनैतिक होते हैं और इसी कारण इस बात पर ध्यान दिए बग़ैर कि वे किसी और को प्रभावित करते हैं, अवश्य ही सज़ा दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, मिल का तानाबाना 'उपयोगितावाद' को अप्रासंगिक कह कर घोषित करता है, जैसा कि

बैन्थम द्वारा कहा गया है, जो कि हस्तक्षेप को सही ठहरायेगा यदि वह आम हित को अधिकतम सीमा तक बढ़ाता है। तथापि, मिल के विचार में व्यक्तिव समाज के बीच सीमांकन कठोर नहीं है क्योंकि सभी कार्य दूसरों को किसी न किसी तरीके से प्रभावित करते ही हैं। मिल का मानना यह भी था कि उसका सिद्धांत दूसरों के आत्म-संबंधी व्यवहार की तरफ किसी नैतिक उदासीनता का धर्मोपदेश नहीं करता। साथ ही उन्होंने महसूस किया कि अनैतिक व्यवहार को हतोत्साहित करने के लिए अनुनय का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसी तरह, मिल सामाजिक लाभ को प्रोत्साहन देने हेतु स्वतंत्रता को एक सहायक के रूप में देखते थे। यह बात विचार, चर्चा एवं अभिव्यक्ति की संपूर्ण स्वतंत्रता तथा सभा व संस्था हेतु अधिकार के लिए उसके तर्कों के विषय में खासतौर पर सही है। मिल ने महसूस किया कि खुली चर्चा पर से सभी प्रतिबन्ध हटा लिए जाने चाहिए, क्योंकि विचारों की खुली प्रतिस्पर्धा से सच्चाई उजागर होगी। यह उल्लेख किया जा सकता है कि स्वतंत्रताओं संबंधी आज की सूची में, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को शायद एक लोकतांत्रिक आदर्श के रूप में आर्थिक स्वतंत्रता की जगह अधिक महत्त्व दिया जाता है।

3.4 ईसाइया बर्लिन तथा 'टू कॉन्सेप्ट्स ऑफ लिबर्टी'

अपनी साहित्यिक रचना टू कॉन्सेप्ट्स ऑफ लिबर्टी (प्रथम प्रकाशित : 1958) में ईसाइया बर्लिन स्वतंत्रता संबंधी नकारात्मक व सकारात्मक धारणाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। बर्लिन के अनुसार, स्वतंत्रता संबंधी 'नकारात्मक' धारणा को इस प्रश्न का जवाब देकर समझा जा सकता है : वह कौन सा क्षेत्र है जिसमें व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को बिना दूसरों के हस्तक्षेप के काम करने की छूट दे दी जानी चाहिए। दूसरी ओर, 'सकारात्मक' अर्थ इस प्रश्न के उत्तर से सम्बन्धित है : 'नियंत्रण अथवा हस्तक्षेप का स्रोत क्या, अथवा कौन है, जो किसी व्यक्ति को उस की बजाय यह करने, अथवा बनने, को निश्चित कर सकता है?'

सकारात्मक स्वतंत्रता महज अकेले छोड़ दिए जाने के रूप में नहीं, बल्कि 'स्वयं-निपुणता' के रूप में आज़ादी की व्याख्या करती है। इस सिद्धांत में स्वयं-संबंधी एक विशेष सिद्धांत शामिल है। व्यक्तिगत विशेषता (personality) एक उच्च और एक निम्न व्यक्तित्व में विभाजित होती है। उच्च व्यक्तित्व ही किसी व्यक्ति के यथार्थ एवं युक्तिपरक दीर्घकालीन लक्ष्यों का स्रोत होता है, जबकि निम्न व्यक्तित्व उसकी उन युक्तिहीन इच्छाओं को बढ़ाता है, जो अस्थायी और अल्पकालिक प्रवृत्ति की होती हैं। कोई व्यक्ति उस हद तक ही स्वतंत्र है जहाँ तक कि उसका उच्च व्यक्तित्व उसके निम्न व्यक्तित्व के वश में है। तदनुसार, एक व्यक्ति प्रभाव न देने जाने के अर्थ में स्वतंत्र हो सकता था, परन्तु वह युक्तिहीन लालसाओं का दास ही रहता; जैसे कि एक नशेड़ी, एक शराबी अथवा एक विवशजुआरी को परतंत्र ही कहा जायेगा। इस अवधारणा का मुख्य लक्षण है, इसका खुले रूप से मूल्यांकनकारी स्वभाव, इसका प्रयोग वांछित माने जाने वाली जीवन-रीति से विशेष रूप से जुड़ा है। सकारात्मक स्वतंत्रता संबंधी धारणा में व्यक्तित्व का एक विशेष अर्थ शामिल है और वह सिर्फ़ यह मानकर नहीं चलती कि गतिविधि का एक कार्यक्षेत्र होता है, जिसकी ओर ही व्यक्ति स्वयं को लक्ष्य-निर्देशित करे। उक्त धारणा यह सुझाती है कि जब व्यक्ति लक्ष्य-निर्देशित होता है, तो वह स्वतंत्र किया जा रहा होता है। सकारात्मक स्वतंत्रता संबंधी बर्लिन की धारणा के आलोचक यह महसूस करते हैं कि सकारात्मक स्वतंत्रता में विश्वास इस धारणा को भी लेकर चलता है कि अन्य सभी मूल्य – समानता, अधिकार, न्याय आदि – उच्च स्वतंत्रता संबंधी सर्वोच्च मूल्य के मातहत हैं। इसी प्रकार, यह धारणा कि व्यक्ति के उच्च संकल्प समष्टियों, जैसे कि वर्ग, राष्ट्र व प्रजाति, के संकल्पों के अनुरूप ही होते हैं, सत्तावादी विचारधाराओं की ओर प्रवृत्त कर सकते हैं।

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता संबंधी जे. एस मिल के विचारों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 मार्क्सवादी समालोचना तथा स्वतंत्रता का विचार

स्वतंत्रता संबंधी मार्क्सवादी संकल्पना उन उदारवादी विचारों से भिन्न है, जिनकी चर्चा पर की गई है। भिन्नता संबंधी मुख्य बातें व्यक्ति व समाज संबंधी मार्क्सवादी समझ, दोनों के बीच संबंध एवं पूँजीवादी समाज संबंधी मार्क्सवादी समीक्षा से सामने आती हैं। यद्यपि उदारवादी दृष्टिकोण व्यक्ति एवं उसकी स्वतंत्रता की केन्द्रीयता पर आधारित है, मार्क्सवादी, व्यक्ति पर आधारित स्वतंत्रता को गुलामी की तरह देखते हैं? मार्क्सवादियों के अनुसार, व्यक्ति विकल्प के स्वतंत्र प्रयोग हेतु स्वायत्त स्थानों की सीमाओं द्वारा समाज में अन्य व्यक्तियों से अच्छा नहीं है। इसकी बजाय वे परस्पर निर्भरता में एक साथ बधें हैं। व्यक्तित्व-संबंधी धारणा उसी तौर से एक धनी व्यक्तित्व-संबंधी धारणा में बदल गयी, जो कि व्यक्ति की सामाजिक संलग्नतापर ज़ोर देती है, और इस धारणा में भी कि व्यक्तिजन रचनात्मक उत्कृष्टता की स्थिति में पहुँच सकते हैं और ऐसे समाज में अपनी क्षमताएँ विकसित कर सकते हैं जो अपने सभी सदस्यों की उन्नति का प्रयास करता है। मार्क्सवादियों के अनुसार, इसी कारण स्वतंत्रता रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास में निहित होती है, और पूँजीवादी समाज में इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता जहाँ व्यक्तिजनों को स्वार्थ की सीमाओं द्वारा अलग-अलग कर दिया जाता है, और जहाँ वे स्वयं के स्वतंत्र होने की कल्पना मात्र कर सकते हैं जबकि वास्तव में वे शोषणकारी ढ़ाँचों से बँधे होते हैं। सिर्फ़ ऐसे समाज में जो निजी हितों के स्वार्थपूर्ण प्रोत्साहन से मुक्त हों, ही स्वतंत्रता की स्थिति विद्यमान रह सकती है। स्वतंत्रता, इस प्रकार, एक पूँजीवादी समाज में प्राप्त नहीं की जा सकती।

ये विचार फ्रेड्रिक एन्जिल्स कृत ऐन्टी-ड्यूरिंग एवं कार्ल मार्क्स कृत इकॉन्मिक एण्ड फ़िलॅसॉफ़िक मैन्युस्क्रिप्ट्स ऑफ़ *1844* में स्पष्टतया व्यक्त हैं। एन्जिल्स स्वतंत्रता-संबंधी धारणा की चर्चा आवश्यकता से स्वतंत्रता तक गुजरने की स्थिति के रूप में करते हैं। आवश्यकता-संबंधी अवस्था को उस स्थिति द्वारा सही निरूपित किया जाता है जिसमें व्यक्ति दूसरे की इच्छा के अधीन होता है। एन्जिल्स बताते हैं कि इंसान में उन शक्तियों को पहचानने व समझने की क्षमता होती है, जो उसके जीवन को अनुकूलित व निश्चित करती हैं। मनुष्य ने इस प्रकार उन प्राकृत कानूनों के विषय में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त की जो उसके अस्तित्व को निर्धारित करते हैं और यह भी जाना कि इन कानूनों के साथ यथा संभव सर्वश्रेष्ठ तरीके से किस प्रकार रहें। विडम्बना यह है कि मनुष्य अब तक उन उत्पादन-बलों के बंधन से मुक्त नहीं हो पाया है जिन्होंने उसे ऐतिहासिक रूप से अधीनता न्याय में रखा है, या अन्य शब्दों में, उसे आवश्यकता के कार्यक्षेत्र में ही सीमित रखा है। स्वतंत्रता की स्थिति में पहुँचने के लिए, मनुष्य को न सिर्फ़ मानव इतिहास की जानकारी,

बल्कि उसे बदल डालने की क्षमता भी रखनी पड़ती है। वैज्ञानिक समाजवाद की ही मदद से मनुष्य आवश्यकता के कार्यक्षेत्र को छोड़ने तथा स्वतंत्रता के कार्यक्षेत्र में घुसने की आशा कर सकता है। स्वतंत्रता कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो में मार्क्स व एन्जिलस द्वारा निर्धारित साम्यवादी समाज संबंधी धारणा का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। एक साम्यवादी समाज में ही, जहाँ कोई वर्ग-शोषण नहीं होगा, स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी।

अपनी पुस्तक मैन्युस्क्रिप्ट्स में कार्ल मार्क्स दृष्ढ़तापूर्वक कहते हैं कि पूँजीवादी समाज व्यक्ति को अमानवीय बना रहा है। वह न सिर्फ़ व्यक्ति को उसके यथार्थ व्यक्तित्व से विमुख कर देता है, वह उसको समाज के रचनात्मक प्रभावों से भी पृथक कर देता है। मार्क्स प्रस्ताव करते हैं कि उन परिस्थितियों को बदलकर ही, जिनमें पृथक्करण होता है, स्वतंत्रता पुनर्प्राप्त की जा सकती है। तदनुसार, सिर्फ़ ऐसे एक साम्यवादी समाज में, जहाँ उत्पादन-साधन सामाजिक रूप से रखे जाते, और समाज का प्रत्येक सदस्य सभी की उन्नति के लिए दूसरे के साथ सहयोग में काम करता है। सच्ची आज़ादी हासिल की जा सकती थी। इस प्रकार, मार्क्स की सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्रता को आत्म-सिद्धि व आत्म-बोध अथवा व्यक्ति के सच्चे स्वभाव की अनुभूति को द्योतित करते हुए एक सकारात्मक अर्थ में देखा जाता है। मार्क्स ने स्वतंत्रता के यथार्थ कार्यक्षेत्र को अपने लिए ही स्वतंत्रता के विकास के रूप में देखा। इस प्रयोज्य संसाधन की अनुभूति, मार्क्स का मानना था, अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु दूसरों के साथ काम करते हुए, सिर्फ़ रचनात्मक उद्योग के अनुभव से ही की जा सकती है। रॉबिन्सन क्रूसो, जिसने कि जिस सीमा तक अधिक से अधिक संभव था नकारात्मक स्वतंत्रता का उपभोग किया तथा उसके द्वीप पर उसे रोकने अथवा बाध्य करने वाला अन्य कोई भी नहीं था। वह अविकसित और इसी कारण परतंत्र व्यक्ति था, जो कि उन सामाजिक संबंधों से वन्चित था जिनके माध्यम से मनुष्यजन पूर्णता हासिल करते हैं। स्वतंत्रता संबंधी यह धारणा मार्क्स की 'पृथक्करण' संबंधी अवधारणा में स्पष्टतः प्रकट होती है। पूँजीवाद के अन्तर्गत, श्रम को व्यक्तित्व-वंचित (de-personalized) बाज़ार शक्तियों द्वारा नियंत्रित व निरूपित मात्र एक वस्तु के रूप में देंखा जाता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण में पूँजीवादी कर्मचारी इस बात में पृथक्करण भोगते हैं कि वे अपनी ही यथार्थ प्रकृति से अलग हो जाते हैं : वे अपने ही उद्योग के उत्पाद से अलग हो जाते हैं, स्वयं उद्योग-प्रक्रिया से अलग हो जाते हैं, अपने साथी मनुष्यों से अलग हो जाते हैं, और अन्ततः अपने 'सच्चे' व्यक्तित्वों से अलग हो जाते हैं। स्वतंत्रता इसी कारण व्यक्तिगत सिद्धी से जुड़ी है जो कि सिर्फ़ अपृथत उद्योग ही करवा सकता है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता संबंधी मार्क्स की समीक्षा का आलोचनात्मक विवेचन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 स्वतंत्रता पर अन्य सामयिक विचार

बर्लिन को छोड़कर, जिसकी पुस्तक शायद स्वतंत्रता विषयक समकालीन पुस्तकों में सबसे महत्त्वपूर्ण है, अन्य विचारक भी हैं जिन्होंने वैचारिक विभाजन के दोनों पक्षों पर विचारकों द्वारा व्यक्त विचारों पर विस्तार से स्वतंत्रता संबंधी धारणा पर चर्चा की है। मिल्टन फ्रीडमैन, मिल व बर्लिन की ही भाँति, एक उदारवादी थे जिसने अपनी पुस्तक कैपिटलिज़्म एण्ड फ्रीडम में पूँजीवादी समाज के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वतंत्रता की धारणा को विकसित किया। आदान-प्रदान की स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का एक आवश्यक पहलू था। इस स्वतंत्रता को प्रोत्साहन देने के लिए फ्रीडमैन चाहते थे कि राज्य कल्याण व सामाजिक सुरक्षा से अपना ध्यान हटा ले और स्वयं को कानून व व्यवस्था कायम करने, सम्पत्ति-अधिकारों की रक्षा करने, अनुबंध लागू करने आदि हेतु समर्पित कर दे। फ्रीडमैन के अनुसार, न सिर्फ़ व्यक्तिजनों के बीच स्वतंत्र व स्वैच्छिक आदान–प्रदान हेतु स्वतंत्रता अनिवार्य थी साथ ही ऐसी स्वतत्रता सिर्फ एक पूँजीवादी समाज में ही प्राप्त की हो सकती थी। इसके अतिरिक्त, यह आर्थिक स्वतंत्रता ही थी, जिसने राजनीतिक स्वतंत्रता हेतु कालोचित व आवश्यक परिस्थिति प्रदान की।

अपनी पुस्तक द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ़ लिबर्टी (1960) में, एफ.ए. हयेक ने स्वतंत्रता संबंधी एक सिद्धांत प्रतिपादित किया, जो राज्य की नकारात्मक भूमिका पर बल देता है। हयेक के अनुसार, एक स्वतंत्रता की स्थिति तब प्राप्त होती है, जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के मनमानी इच्छा के अधीन नहीं रहता। हयेक इसको 'वैयक्तिक स्वतंत्रता' कहते हैं और साथ ही, राजनीतिक स्वतंत्रता समेत स्वतंत्रता के अन्य रूपों से वैयक्तिक स्वतंत्रता की श्रेष्ठता व निरपेक्षता को विहित करते हुए इसे स्वतंत्रता के अन्य रूपों से अलग मानते हैं। हयेक अनुमोदित करते हैं कि स्वतंत्रता का मूल अर्थ 'नियंत्रणों का अभाव' के रूप में सुरक्षित रहना चाहिए। स्वतंत्रता के नाम पर राज्य–हस्तक्षेप के बढ़ने का अर्थ होगा, उस वास्तविक स्वतंत्रता का हस्तांतरण जो कि नियंत्रणों से व्यक्ति की मुक्ति में निहित होती है।

स्वतंत्रता संबंधी मार्क्सवादी धारणा द्वारा प्रभावित विचारकों के एक अन्य समूह ने इस बात पर ज़ोर दिया कि स्वतंत्रता जिस प्रकार आधुनिक पूँजीवादी समाजों में व्यवहार की जाती है, अकेलेपन को जन्म देती है। ऐरिक फ्रोम (1900-1980) ने स्पष्ट किया कि आधुनिक समाजों में अलगाव व्यक्ति के उसकी रचनात्मक क्षमताओं व सामाजिक संबंधों से पृथक् होने के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुआ। इस पृथक्करण ने व्यक्ति में उसके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हुए उसमें भौतिक व नैतिक अलगाव पैदा किया। केवल न्याय रचनात्मक एवं सामूहिक कार्य द्वारा ही व्यक्ति समाज के प्रति स्वयं को पुनः प्रतिष्ठित कर सकता है। हर्बर्ट मार्क्युज़ ने भी अपनी पुस्तक *वन-डाइमैन्शनल मैनः स्टडीज़ इन दि आइडिऑलॅजि ऑफ़ एडवान्स्ड इण्डस्ट्रियल सोसाइटी (1968)* में पूँजीवादी समाजों में पृथक्करण की प्रकृति संबंधी अच्छी छानबीन की है। मार्क्युज़ दृष्ढ़तापूर्वक कहते हैं कि पूँजीवादी समाजों में व्यक्ति की रचनात्मक बहुआयामी क्षमताएँ निष्फल हो जाती हैं। मनुष्य स्वयं को सिर्फ़ अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में निरन्तर लगे एक उपभोक्ता के रूप में ही व्यक्त कर सकता है।

बोध प्रश्न 4

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता पर कुछ दूसरी समकालीन धारणाओं पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3.7 सारांश

स्वतंत्रता की धारणा उदारवादी विचार के मर्म में है, जो विवेकशील व्यक्ति को अपने केन्द्र में रखती है और व्यक्ति या उसके स्वायत्तता-क्षेत्र एवं राज्य व समाज के बीच एक सीमारेखा खींचती है। स्वतंत्रता का उसके सामान्य बोध में अर्थ है, 'नियंत्रणों का अभाव'। दूसरे शब्दों में, यह ऐसी स्थिति को इंगित करती है जिसमें एक व्यक्ति जो अपने निजी मामलों से संबंधित तर्कसंगत निर्णयों को लेने में सक्षम है, राज्य व समाज समेत, बाहर से किसी भी नियंत्रण के बिना कोई भी कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है। साथ ही, बहरहाल, स्वतंत्रता की धारणा एक राजनीतिक समुदाय एवं राजनीतिक प्राधिकार की धारणा के रूप में उसी समय क्रम-विकसित होकर सामने आयी। इस समकालिक क्रम-विकास का मतलब था, सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं को समान रूप से मान्यता और यह बोध कि वैयक्तिक स्वतंत्रता पर सकारण नियंत्रणों को इस आधार पर सही ठहराया जा सकता है कि उन्होंने ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान कीं जिनमें वैयक्तिक स्वतंत्रता बिना किसी विवाद के उपभोग की जा सके।

नियंत्रण-अभाव के रूप में स्वतंत्रता की धारणा स्वतंत्रता संबंधी एक 'नकारात्मक' धारणा से जुड़ी है। स्वतंत्रता संबंधी एक 'सकारात्मक' धारणा को टी.एच. ग्रीन जैसे विचारकों द्वारा सुस्पष्ट किया गया, जिन्होंने उन परिस्थितियों का ध्यान रखा जिन्होंने व्यक्ति को वास्तव में स्वतंत्र होने में समर्थ किया। तदनुसार, एक सकारात्मक धारणा के रूप में स्वतंत्रता कार्य करने का अधिकार, और वे अवसर जिन्होंने कार्य संभव बनाया, रखने में निहित थी। कल्याणकारी राज्य संबंधी धारणा ने इसी विचार को लेकर शुरूआत की जिसे अपेक्षा थी कि राज्य ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान करने हेतु सकारात्मक कदम उठाये जिनमें व्यक्तिजन कार्य करने एवं स्वयं को विकसित करने में वास्तविक रूप से स्वतंत्र हों।

यद्यपि जे.एस. मिल एवं ईसाइया बर्लिन जैसे दार्शनिकों ने उक्त दोनों धारणाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की, मार्क्सवादियों ने महसूस किया कि स्वतंत्रता एक पूँजीवादी समाज में अनुभव नहीं की जा सकती। एक पूँजीवादी समाज, उन्होंने बल देकर कहा, व्यक्ति को उसके सामाजिक प्रसंगों से एवं उसके अपने स्वभाव से पृथक् कर देता है। स्वतंत्रता, हम देख सकते हैं, विभिन्न विचार-सूत्रों द्वारा विभिन्न रूप से समझी गई है। यह, बहरहाल, लोकतांत्रिक विचार में एक बुनियादी अवधारणा बनी ही हुई है।

3.8 संदर्भ

बैरी, नॉर्मन, *ऐन इण्ट्रोडक्शन टु मॉडर्न पॅलिटिकॅल थिअरी*, मैकमिलन, लंदन, 2000 (अध्याय 8 : लिबर्टी)

हेवुड,एण्ड्रयू, *पॅलिटिकॅल थिअरी*, मैकमिलन, लंदन, 1999 (अध्याय 9 : फ्रीडम, टॉलेरेशन एण्ड लिबरेशन)

विनोद, एम जे और एम देशपान्डे, 2013 *कन्टेम्परेरी पालिटिक्स थिअरी*, नई दिल्ली, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालें:

- नकारात्मक स्वतंत्रता का मतलब है बाहरी नियंत्रणों का अभाव।
- सकारात्मक स्वतंत्रता उन परिस्थितियों के होने पर जोर देती है, जिनसे बेहतर विकास हो।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न बिंदुओं पर ध्यान दें:

- मिल ने नकारात्मक स्वतंत्रता पर बल दिया।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिबंध का विरोध किया।
- स्वयं संबंधी तथा अन्य संबंधी कार्यों में तर्क।

बोध प्रश्न 3

1) निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालें:

- उदारवादियों की तुलना में मार्क्सवादी व्यक्ति और समाज में आपसी निर्भरता को मानते हैं।
- पूँजीवाद मनुष्य को उसके स्वयं तथा समाज के रचनात्मक प्रभावों से अलग कर देता है।
- स्वतंत्रता सिर्फ एक कम्युनिस्ट समाज में ही प्राप्त की जा सकती है।
- राबिन्सन क्रूसो का उदाहरण।

बोध प्रश्न 4

1) निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालें:

- मिन्टन फ्रीडमैन, एफ ए. हायेक एरिक फ्रोम तथा हरब्रट मार्क्युज के विचारों का जिक्र करें।

इकाई 4 समानता*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 समानता के विभिन्न प्रकार

- 4.2.1 औपचारिक समानता
- 4.2.2 अवसर की समानता
- 4.2.3 परिणामों की समानता

4.3 समानता के कुछ मूल सिद्धांत

4.4 समानता के विरुद्ध कुछ तर्क

4.5 असमानता के पक्ष में उदारवादी तर्कसंगतता

4.6 समानता एवं नारीवाद

4.7 समानता और स्वतंत्रता

4.8 सारांश

4.9 संदर्भ

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है, समानता का अर्थ समझना और इस अवधारणा से जुड़े महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक विषयों पर ध्यान देना। इस इकाई को पढ़ने पर, आप इस योग्य होंगे कि :

- समानता संबंधी मूल सिद्धांतों की संकल्पना को स्पष्ट कर सकें,
- समानता के कुछ मूल सिद्धांतों पर चर्चा कर सकें,
- औपचारिक समानता, अवसर की समानता और परिणामों की समानता को स्पष्ट कर सकें,
- कुछ समतावाद-विरोधी विचारों की जाँच कर सकें,
- उदारवादियों के असमानता-संबंधी औचित्य प्रतिपादन पर चर्चा कर सकें, और अन्ततः
- समानता व स्वतंत्रता के बीच संबंध का मूल्यांकन कर सकें।

4.1 परिचय

समानता अर्थात् बराबरी की धारणा आधुनिक राजनीति एवं राजनीतिक चिंतन का मुख्य विषय प्रतीत होती है। जन्म पर आधारित सामाजिक अनुक्रम को प्रकृति प्रदत्त माना जाता था। काफी समय पहले सोच बदली है और अब ऐसा नहीं माना जाता है। वस्तुतः आधुनिक राजनीतिक सोच इस परिकल्पना से शुरू होती है कि सभी मनुष्य समान हैं। 1789 में फ्रांसीसी क्रांति व तदोपरांत अमेरिकी गृह-युद्ध – लोकतंत्र, समानता व स्वतंत्रता के विचार

*प्रो. कृष्णा मेनन, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

को व्यक्त करने में ये दो ऐतिहासिक रूप से बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। एक ने मध्यकालीन क्रम-परम्पराओं को चुनौती दी, तो दूसरी ने नस्ल-आधारित असमानताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। तथापि, समानता के विचार को स्वीकृति मिलना आसान नहीं न्याय था। 1931 में लेखन करते हुये आर.एच. टॉनी ने ब्रिटिश समाज में 'असमानता का धर्म' पर अफसोस ज़ाहिर किया। जिस बात ने उन्हें परेशान किया था वह मात्र समाज में असमानताओं की विद्यमानता नहीं थी, वरन् उसको नैसर्गिक और अपरिहार्य के रूप में स्वीकार किया जाना था। द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत काल में अनेक परिवर्तन हुए थे और समानता के विचार को काफ़ी व्यापक लोकप्रियता मिल चुकी थी। उपनिवेश देशों में स्वतंत्रता की तीव्र लहर ने समानता विषयक बहस में एक और महत्त्वपूर्ण आयाम जोड़ दिया तथा नारी-आन्दोलन ने भी कुछ ऐसा ही किया है।

आज के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि समानता को मानव जीवन के एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है, तथापि इस बारे में बड़े झगड़े होते हैं कि समानता को कहाँ और कैसे व्यवहार में लाया जाए। एक और अधिक विवाद ग्रस्त क्षेत्र है – समाज में धन-सम्पत्ति व आय के वितरण हेतु समानता के सिद्धांत का प्रयोग इस संदर्भ में यह उल्लेख करना उपयोगी होगा कि हाल के वर्षों में समतावाद-विरोधी सोच का गंभीर रूप से पुनरुत्थान हुआ है, जो कि उस राजनीतिक अर्थव्यवस्था वाली विचारधारा की बढ़ती लोकप्रियता से दृढ़ीकृत हुई है, जिसका तर्क है कि समतावादी उपाय बाज़ार क्षमता का गला घोंट देते हैं और आगे चलकर हर किसी की हालत खस्ता कर देते हैं।

समतावादियों से तदनुसार अपेक्षा है कि चुनौतियों की एक नयी शृंखला के जवाब में अपने तर्कों को सुस्पष्ट करें; वे आमतौर पर इस तथ्य को स्पष्टतः सिद्ध करने में लगे रहते हैं; कि वे सम्पूर्ण समानता की माँग नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार, एक रूपता उनकी योजना का हिस्सा कतई नहीं है। इसके विपरीत, जिसको वे बचाने का प्रयास करते हैं वह है विविधता।

4.2 समानता के विभिन्न प्रकार

4.2.1 औपचारिक समानता

अंग्रेजी दार्शनिक जॉन लॉक मनुष्य की नैसर्गिक समानता पर आधारित समानता–संबंधी विचार के सर्वाधिक वाक्पटु समर्थकों में से एक हैं। (कहने की ज़रूरत नहीं कि लॉक की कार्य-योजना में महिलाओं का कतई स्थान नहीं था!) कांट ने इस सार्वभौम मानवता के एक निष्कर्ष रूप में सार्वत्रिकता और समानता के बारे में बात कर इस विचार को और मज़बूती प्रदान की। इस प्रकार, औपचारिक समानता का अर्थ हो गया –सामान्य मानवता के आधार पर सभी व्यक्तियों से समान रूप से व्यवहार किया जाए।

इस विचार की सबसे महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है – विधि-संगत समानता अथवा कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत। कानून के द्वारा सभी लोगों से समान रूप से व्यवहार किया जाना चाहिए, बेशक उनकी जाति, नस्ल, वर्ण, लिंग, धर्म, सामाजिक पृष्ठभूमि, इत्यादि कुछ भी हो। जबकि यह नस्ल, लिंग, सामाजिक पृष्ठभूमि व इसी प्रकार के अन्य मानदण्डों पर आधारित विशेषाधिकारों के खिलाफ़ संघर्ष में एक स्वागत योग्य कदम था, अपने आप में यह एक बहुत सीमित धारणा है। यह सिद्धांत इस तथ्य से इंकार करता है कि जाति, लिंग व सामाजिक पृष्ठभूमि द्वारा डाली गई अड़चनें इतनी अपरिहार्य हो सकती थीं कि व्यक्ति उस औपचारिक समानता को लाभ उठाने में भी समर्थ नहीं होता जो कि कानून सभी व्यक्तियों को प्रदान करता है।

इस संदर्भ में यह ग़ौरतलब है कि यही वो अपर्याप्ता थी, जिसने मार्क्स को अपने निबंध 'ऑनदृजूइश क्वैश्चन' में इस समस्या पर सूक्ष्म दृष्टि डालने को प्रवृत्त किया। उसने निश्चय पूर्वक कहा कि औपचारिक समानता जबकि एक महत्त्वपूर्ण अग्रसर कदम है, वह मानव का उद्धार नहीं कर सकती। जबकि बाज़ार ने लोगों को सामाजिक दर्जे व अन्य समरूप श्रेणियों द्वारा लगाए गए अड़ंगों से मुक्त कर दिया, उसने भेदों को पैदा कर दया, जिनको वर्ग आधारित निजी संपत्ति ने कायम रखा। इसका मतलब है कि सभी व्यक्तियों का बाजार मूल्य अलग-अलग है। इसलिए, मार्क्सवादी औपचारिक समानता का वर्णन बाजार की समानता के संदर्भ में करते हैं, जो कि समाज की नितांत असमानताओं को छुपाने का एक मुखौटा मात्र है।

आज, समतावादी इस धारणा से दूर चले गए हैं कि सभी मनुष्यों को समान बनाया गया है और इसी कारण से, उन्हें समान अधिकार रखने चाहिए; ऐसा इस तथ्य की वजह से है कि मनुष्य जन अधिकांश महत्त्वपूर्ण पहलुओं में समान नहीं हैं। इसीलिए, आज, समानता शब्द विवरणकारी के स्थान पर एक निदेशात्मक अर्थ में अधिक प्रयोग होता है। उन नीतियों का समर्थन किया जाता है जो मनुष्यों के कुछ वर्णनात्मक विशेष गुणों पर निर्भर न रहते हुए समानता के आदर्श को बढ़ावा देती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) वह क्या था जिसने ब्रिटिश समाज के बारे में आर.एच.टॉनी को व्याकुल कर दिया?

.....

.....

.....

.....

.....

2) औपचारिक समानता सिद्धांत को दिशा-निर्देशित करने वाला मूल तत्त्वज्ञान क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.2.2 अवसर की समानता

सरल समझ में, अवसर की समानता का अर्थ है उन सभी अवरोधों को दूर करना जो व्यक्तिगत आत्म-विकास में बाधा डालते हैं। इसका अर्थ है कि पेशे या व्यवसाय प्रतिभावान व्यक्ति के लिए ही खुले होने चाहिए और तरक्कियाँ योग्यताओं पर आधारित होनी चाहिए। हैसियत, पारिवारिक संबंधों, सामाजिक पृष्ठभूमि व ऐसे ही अन्य कारकों का हस्तक्षेप नहीं होने देना चाहिए।

अवसर की समानता एक अत्यन्त आकर्षक धारणा है, जो उस बात से संबंधित है जिसका न्याय जीवन के आरम्भ बिन्दु के रूप में वर्णन किया जाता है। निहितार्थ यह है कि समानता यह अपेक्षा रखती है कि सभी व्यक्ति एक समान बिंदु से जीवन शुरू करें। तथापि, यह ज़रूरी नहीं कि इसके परिणाम बिल्कुल भी समतावादी हों। यथार्थतः चूँकि हर व्यक्ति ने समान रूप से शुरुआत की, असमान परिणाम स्वीकार्य एवं वैध हैं। इस असमानता को तब भिन्न-भिन्न नैसर्गिक प्रतिभाओं, परिश्रम करने की क्षमता तथा भाग्य के भी शब्दों में स्पष्ट किया जाएगा।

यह लगता है कि इस तरह से बनी अवसर की समानता एक ऐसी व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा करने का समान अवसर प्रदान करती है जो अनुक्रम आधारित रही है। अगर ऐसा है तो यह तत्त्वतः कोई समतावादी सिद्धांत प्रतीत नहीं होता। अवसर की समानता, इस प्रकार, एक असमतावादी समाज की ओर इशारा करती है, यद्यपि वह योग्यता के उच्च आदर्श पर आधारित, है। यह धारणा स्वयं को प्रकृति और परम्परा के बीच भिन्नता पर आधारित करती है। तर्क यह है कि वे भिन्नताएँ जो प्रतिभाओं, कौशलों, कठोर श्रम इत्यादि जैसे विभिन्न प्राकृतिक गुणों के आधार पर प्रकट होती हैं, नैतिक रूप से समर्थनीय हैं। तथापि, वे भिन्नताएँ जो परम्पराओं अथवा ग़रीबी, आश्रयहीनता जैसे सामाजिक रूप से बने भेदों से पैदा होती हैं, समर्थनीय नहीं हैं। सच्चाई, हालाँकि, यह है कि यह एक विशिष्ट सामाजिक पक्षपात है जो समाज में भेदों को स्पष्ट करने के लिए सुन्दरता अथवा बुद्धिमत्ता जैसी किसी प्राकृतिक भिन्नता को एक प्रासंगिक आधार बना देती है। तदनुसार, हम देखते हैं कि प्रकृति व परम्परा के बीच भेद इतना सुस्पष्ट नहीं है जैसा कि समतावादी बतलाते हैं।

अवसर की समानता को प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए पेशे या व्यवसाय खुले रखना, निष्पक्ष समान अवसर उपलब्ध कराना और सकारात्मक-भेदभाव सिद्धांत में बदलाव के माध्यम से संस्थापित किया जाता है। ये सब इस प्रकार काम करते हैं कि असमानता की व्यवस्था तर्कसंगत और स्वीकार्य लगे। निहित धारणा यह है कि जब से प्रतिस्पर्धा निष्पक्ष हुई है, लाभ अपने आप आलोचना से परे हो गया है। इस बात में कोई शक नहीं कि इस प्रकार की व्यवस्था ऐसे लोगों को जन्म देगी जो सिर्फ़ अपनी प्रतिभाओं एवं वैयक्तिक सहजगुणों पर ध्यान देंगे। यह बात उन्हें अपने लोगों के साथ किसी भी सामुदायिक अनुभूति से वंचित करती है, क्योंकि वे सिर्फ़ प्रतिस्पर्धा की भाषा में ही सोच सकते हैं। शायद, यह सिर्फ़ एक ऐसे समुदाय को जन्म दे सकती है जो एक ओर तो सफल व्यक्तियों का समुदाय होगा, और दूसरी ओर असफल व्यक्तियों का ऐसा समुदाय जो अपनी तथाकथित विफलता के लिए स्वयं को ही दोष देगा। अवसर की समानता के साथ एक और समस्या यह है कि वह एक पीढ़ी व दूसरी पीढ़ी की सफलताओं व विफलताओं के बीच एक बनावटी वियोजन पैदा करने का प्रयास करती है।

इस प्रकार, यह देखने में आता है कि समानता पर उदारवादी विचार अवसर की समानता पर आधारित है। यह वकालत, समानता संबंधी किसी भी यथेष्ट धारणा के विरुद्ध है क्योंकि ये वो अवसर हैं जो असमान परिणामों की ओर ले जाते हैं। यह सिद्धांत, इस प्रकार, परिणामों से असम्बद्ध है और सिर्फ़ प्रक्रिया में रुचि रखता है। यह पूरी तरह से इस उदारवादी विचार को कायम रखने के साथ है कि व्यक्तिजन समाज की बुनियादी इकाई हैं और समाज को अवश्य ही उनके लिए यह संभव बनाना होगा कि वे अपने निजी हितों को सिद्ध कर पाएँ।

क्या इसका मतलब यह हुआ कि समतावादी अवसर की समानता को अनदेखा करेंगे? स्पष्ट उत्तर है—नहीं। तथापि, वे अवसर की समानता संबंधी एक अधिक व्यापक परिभाषा को लेकर चलेंगे, जो कि हर किसी को एक संतोषजनक एवं पालन योग्य तरीके से अपनी

क्षमताओं को विकसित करने के साधन मुहैया करायेगी। एक समतावादी समाज कुछ लोगों को अपनी क्षमताएँ विकसित करने हेतु वास्तविक अवसर प्रदान करने से इंकार नहीं करेगा। इस अवसर का निष्कपट समतावादी प्रयोग एक सार्थक जीवन की ओर प्रवृत्त करेगा। चूँकि यह सुनिश्चित करना सम्भव नहीं है कि हर व्यक्ति एक सार्थक जीवन बिताए, समतावादी इसका प्रयास करेंगे कि ऐसी सामाजिक परिस्थितियाँ हों जो सभी व्यक्तियों को सार्थक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करें ।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) अवसर की समानता क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.2.3 परिणामों की समानता

तथापि, परिणाम पर नज़र डालने हेतु जीवन के आरंभ-बिंदु से आगे चलकर समानता के संबंधी धारणा एक और अभिव्यक्ति परिणामों की समानता के शब्दों में होगी। मार्क्स, उदाहरण के लिए, यह विचार रखते थे कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से घिरा समानता हेतु कोई भी अधिकार पक्षपाती के सिवा कुछ और नहीं हो सकता। तदनुसार, उसने संपूर्णसमाजिक समानता का समर्थन किया, जो कि निजी संपत्ति के उन्मूलन द्वारा ही संभव है। परिणाम की समानता के समर्थकों का मानना है सभी दूसरी समानताएँ अधूरी रहेंगी यदि परिणाम की समानता सुनिश्चित नहीं की जाती।

परिणाम-संबंधी समानता के आलोचक यह बात रखते हैं कि इस प्रकार का काम निष्क्रियता, अन्याय और तानाशाही का रास्ता दिखलायेगा। हयेक ने, उदाहरण के लिए, तर्क दिया है कि लोग चूँकि बहुत भिन्न होते हैं, उनकी अभिलाशाएँ व लक्ष्य भिन्न होते हैं तथा कोई भी व्यवस्था जो उनसे समान रूप से सुलूक करती है, वस्तुतः असमानता में परिणत होती हैं। यह तर्क दिया जाता है कि समानता की तरफ कदम स्वतंत्रता की कीमत पर होते है। समाजवादी समतावादी उपायों का लागू किया जाना, यह दलील दी जाती है, व्यक्ति की गरिमा और आत्म-सम्मान को गुप्त रूप से क्षति पहुँचाता है और ऐसे उपायों के साथ चलने वाला सहज पैतृकवाद व्यक्ति की एक विवेकपूर्ण पसंदकर्त्ता बनने संबंधी योग्यता को अस्वीकार करता है।

4.3 समानता के कुछ मूल सिद्धांत

समतावादी जन यह नहीं मानते कि हर व्यक्ति एक-सा है अथवा एक-सा होना चाहिए। यह कोई सहज गणित की धारणा नहीं है। यह हमको कुछ ऐसे मर्म सिद्धांत प्रस्तुत करने में मदद करेगी, जिनके प्रति समतावादी वचनबद्ध होंगे। पहला वचन इस धारणा के प्रति है कि हर व्यक्ति अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने का अधिकार रखता/रखती है और जीवन-स्तर में व्यापक असंगतियों वाले लक्षण रखने वाला कोई भी समाज उन्हें स्वीकार्य

नहीं है। वे एक ऐसे समाज के प्रति वचनबद्ध हैं जहाँ–जीवन दशाएँ सहनीय ही नहीं, बल्कि सभी के लिए एक संतोषजनक एवं पालन योग्य जीवन प्रदान करने में सक्षम भी हों।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धांत समान आदर संबंधी है, जिसका निहितार्थ है – किसी भी प्रकार के अपमानजनक व्यवहार अथवा परिस्थितियों का विरोध; आदर्श रूप में, सहानुभूतिपर आधारित एक समाज। एक समतावादी विचार न सिर्फ़ व्यक्तियों के बीच, बल्कि राष्ट्रों के बीच भी, आय व धन-सम्पत्ति में बड़े अन्तरों का विरोध करता है। इसमें सभी के लिए गरिमापूर्ण, रुचिपूर्ण एवं सुरक्षित कार्य की संभावना के अतिरिक्त, अर्थव्यवस्था एवं कार्यस्थल का लोकतांत्रिक नियंत्रण भी शामिल होगा। राजनीतिक समानता, कहने की ज़रूरत नहीं, महज वोट देने अथवा किसी सार्वजनिक पद हेतु खड़े होने का अधिकार नहीं है, वरन् यह जीवन के सभी पहलुओं में नागरिक अधिकारों का एक व्यापक जाल-तंत्र एवं एक लोकतांत्रिक भागीदारी है, ताकि व्यक्तिजन एक अधिक सार्थक तरीके से अपने जीवन को नियंत्रित करने व कार्यरूप देने में समर्थ हों।

लैंगिक, प्रजातीय, संजातीय व धार्मिक समानता समानता-संबंधी जटिल धारणा के कुछ अन्य घटक हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हम समानताओं की कोई पूरी तरह से विस्तारपूर्वक सूची नहीं बना सकते, और इसी में अन्तर्निहित है समानता संबंधी अवधारणा की सुधारवादी क्षमता।

4.4 समानता के विरुद्ध कुछ तर्क

यह तर्क दिया जाता है कि समानता एक ऐसी अवधारणा है जो कि वास्तव में स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि समाज और सामाजिक प्रक्रियाएँ एक प्रतिस्पर्धा से जुड़ी हैं, जिसमें हर एक व्यक्ति विजेता नहीं हो सकता। हम ऐसी आपत्तियाँ परिणामों की समानता संबंधी अपने चर्चा के प्रसंग में पहले ही देख चुके हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप यह कहा जा सकता है कि यह विरुद्ध तर्क समाज व व्यक्ति के स्वभाव की एक विशिष्ट व्याख्या से जन्मता है।

आज के युग में हयेक, फ्रीडमैन एवं नोज़िक के नाम उस विचार से जुड़े हैं जो समतावाद को आज़ादी के लिए एक ख़तरा मानता है। नोज़िक विशेष रूप से जॉन रॉल्स व डवोरकिन जैसे उदारवादियों के आलोचक हैं, इस बात के लिए कि वे अवसर की समानता को बढ़ाने के लिए कल्याणकारी विधानों के प्रति वचनबद्ध थे। जो यह कहते हैं कि समाज में असमानता आत्म-सम्मान को गुप्त रूप से क्षति पहुँचाती है, इसके विपरीत नोज़िक जैसे मुक्तिवादी का तर्क है यह समतावाद ही है जो लोगों से उनका आत्म-सम्मान छीन लेता है। नोज़िक का दावा है कि असमतावादी समाज व्यक्तियों की विशिष्टता एवं उनके बीच भेद को स्वीकार कर व्यक्तियों के प्रति अधिक सम्मान दर्शाते हैं। चूँकि एक समतावादी समाज सत्ता, पद, आय अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित किन्हीं भी भेदों से वंचित होगा, वहाँ आत्म-सम्मान के लिए कोई आधार न होगा, क्योंकि आत्म-सम्मान उन मानदण्डों पर आधारित होता है जो लोगों में भेद उत्पन्न करते हैं।

एक बड़ी सख्त आपत्ति वे लोग करते हैं जो यह मानते हैं कि समानता लागू करने का कोई भी प्रयास राज्य को मज़बूती प्रदान करने में परिणत होता है और इसकी वजह से वैयक्तिक स्वतंत्रता कमज़ोर पड़ती है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्पष्ट करें कि किस प्रकार नोज़िक के अनुसार एक समतावादी समाज लोगों से उनका आत्म-सम्मान छीन लेता है।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 असमानता के पक्ष में उदारवादी तर्कसंगतता

उदारवादी लोगों से भिन्न व्यवहार किए जाने हेतु अनुकूल मानदण्डों के रूप में लिंग, नस्ल, अथवा वर्ग को अस्वीकार करते हैं, परन्तु वे यह ज़रूर मानते हैं कि यदि असमानताएँ उनके भिन्न गुण-अवगुण अथवा योग्यता के आधार पर अर्जित एवं यथोचित हैं, तो यह बात न्यायसंगत और उचित है। तदनुसार, उदारवादी सिद्धांत यह दावा करता है कि जब तक असमानता को समाज हेतु विशेष गुणों व योग्यताओं अथवा विशेष योगदान के लिए पारितोषिक अथवा पुरस्कार के आधार पर सही ठहराया जा सकता है, यह स्वीकार्य रहेगा। यहाँ हम इस बात पर ध्यान दिए बग़ैर नहीं रह सकते कि समाज के लिए जो भी पुरस्करणीय, विशेष अथवा योगदान-स्वरूप है, सभी उक्त समाज की विशिष्टताओं से सीमाबद्ध है। इसके अतिरिक्त, किसी व्यक्ति के योगदान के मूल्य को अलग कर पाना बहुत मुश्किल है, और यदि कोई योगदान देने के बाद वापस ले जाता है, तो क्या वह वाक़ई कोई योगदान कर रहा है? यह विचार समग्रता में बुनियादी उदारवादी विचार के विरुद्ध लगता है कि सभी व्यक्ति समान रूप से योग्य व सम्मान योग्य हैं, और लोगो को प्रतिभाओं व योग्यताओं की एक गठरी सा बना देता है।

आज के युग में, रॉल्स एवं डवोरकिन जैसे आधुनिक उदारवादियों ने असमानता को सही ठहराने के लिए मानदण्डों के रूप में योग्यता एवं गुण को नहीं माना है। वास्तव में, वे सभी जनों की भिन्न वैयक्तिक प्रतिभाओं व कौशलों पर ध्यान दिए बग़ैर उनके समान नैतिक गुण पर आधारित सम्मान की समानता की वकालत करते हैं। वे इस समानता को इस धारणा पर आधारित करते हैं कि सभी मनुष्य विकल्प चुनने एवं जीवन-योजना तैयार करने की योग्यता से समान रूप से सम्पन्न हैं। रॉल्स, उदाहरण के लिए, योग्यता अथवा प्रयास के अनुसार पारितोषिकों के वितरण को नैतिक रूप से मनमाना कहकर अस्वीकार करते हैं, क्योंकि योग्यताओं व कुशलताओं में अंतर प्राकृतिक सच्चाई हैं और इन कुशलताओं व योग्यताओं की विद्यमानता अथवा अभाव के कारण किसी को लाभ अथवा हानि नहीं होनी चाहिए। इस कारण से, वह इन नैसर्गिक योग्यताओं का सामाजिक संपत्ति के रूप में समर्थन करते हैं, ताकि 'समाज का बुनियादी ढाँचा व्यवस्थित किया जा सके, ताकि ये आकस्मिकताएँ सबसे कम किस्मत वालों की भलाई करें।

तथाकथित 'भेद सिद्धांत' जो कि रॉल्स स्पष्टतया व्यक्त करते हैं, वह उनकी समझ में सर्वोत्तम सिद्धांत है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राकृतिक गुण अनुचित लाभों की ओर प्रवृत्त न करें। यह सिद्धांत अपेक्षा रखता है कि सामाजिक व आर्थिक असमानताएँ इस प्रकार व्यस्थित हों कि ये दोनों शर्तें पूरी हों : (अ) ये न्यूनतम लाभांवितों के अधिकतम लाभार्थ हों और (ब) ये अवसर की उचित समानता संबंधी शर्तों के तहत सभी के लिए खुले उच्च पद व स्थानों से जुड़ी हों। यह, तदनुसार, परम्परागत उदारवादी अधिकारों से भिन्न समानता

की एक अधिक व्यापक समझ है। असमान पारितोषिक भिन्न योग्यताओं के आधार पर नहीं, वरन् प्रोत्साहन के रूप में न्यायोचित ठहराये गए हैं, ताकि वे न्यूनतम लाभांवितों को लाभ पहुँचायें। डवोरकिन समानता संबंधी परम्परागत उदारवादी विचारों से भी असहमति जताते हैं और कुछ पुनर्वितरण एवं कल्याणकारी नीतियों की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं।

मैकफ़र्सन ने रॉल्सवादी समानता की इस आधार पर आलोचना की है कि यह वर्गों के बीच संस्थागत असमानताओं की अपरिहार्यता को मानती हैं। ऐसा करते हुए रॉल्स इस तथ्य से इंकार करते हैं कि वर्गाधारित असमानताएँ विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के बीच असमान शक्ति-संबंधों को जन्म देती हैं और इस प्रकार, समानता के अन्य पहलुओं पर असर पड़ता है।

4.6 समानता एवं नारीवाद

नारीवादी समानता के मुद्दे को लिंग-भेद के नज़रिए से देखते हैं। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है सूज़न ओकें कृत जस्टिस, जैंडर एण्ड द फ़ैमिली (1989)। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि समान अवसर संबंधी-कानून अथवा विभिन्न क्षेत्रों हेतु समानता सिद्धांतों के प्रसार द्वारा पुनर्वितरणकारी न्याय, सारतः, समानता पैदा नहीं कर सकते, क्योंकि ये नियम व सिद्धांत एक ऐसे वातावरण में संचालित होते हैं जो कि पहले से ही लिंगों के बीच असमानता से दूषित हैं, ऐसी असमानता जो सामाजिक प्रथाओं से जन्मी हैं। इनमें से अनेक प्रथाएँ महिलाओं के प्रति सीधे विभेदकारी नहीं हैं, बल्कि उनका समग्र प्रभाव होता है असमानता को मज़बूती प्रदान करना और उसे वैधता का एक जामा पहनाना। तदनुसार, यद्यपि कानून औपचारिक रूप से लिंगों के बीच भेद नहीं कर सकता, हालत यह है कि विशिष्ट व्यवसायों में महिलाओं को अलग रखने की प्रवृत्ति पायी जाती है और विवाहित महिलाएँ जो व्यवसायरत हैं, एक लिंगभेद के पूर्वाग्रह से ग्रसित समाज में खास तौर पर हानि हैं।

नारीवादी यह ध्यान दिलाते हैं कि महिलाओं की मौलिक असमानता पारिवारिक निर्णयन् में उनका कमज़ोर स्वर, बच्चों के पालन-पोषण संबंध उनका दायित्व एवं श्रम-बाज़ार से तदन्तर उनकी निकासी का विकल्पों की सहज एवं स्वैच्छिक कार्य-प्रणाली से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि भूमिकाएँ सामाजिक रूप से बनाई हुई है।

तथापि, साथ ही, यदि राज्य लिंगभेद-संबंधी भेदभाव को दूर करने में, खासकर पारिवारिक जीवन में, शामिल होता है तो इस बात पर शायद नारीवादी भी नाराज़गी व्यक्त करेंगे। यह, संभवतः, अधिक आसान होगा कि हम लिंग-असमानता के प्रति जागरुक हों और उसे सामाजिक प्रथाओं एवं सामाजिक रूप से संरचित भूमिकाओं में खोजें, जबकि इसका उपचार ढूढ़ना मुश्किल है। जब तक कि महिलाएँ स्वयं अपनी असमानता, परिवार में अपनी अधीनस्थ भूमिका के प्रति जागरूक नहीं होतीं, और सामाजिक ढाँचों को पुनः अनुकूलित करने के लिए सामने नहीं आतीं, लिंगभेद समानता के संबंध में ठोस कुछ नहीं किया जा सकता।

4.7 समानता और स्वतंत्रता

अक्सर यह दावा किया जाता है कि एक तो स्वतंत्रता व समानता विरोधात्मक हैं, और दूसरे यह विवाद इसी कारण समझौते के योग्य नहीं है। डी टोकविल ने समानता को स्वतंत्रता के सामने खड़े एक संभावित ख़तरे एवं बहुमत की निरंकुशता के रूप में देखा, जैसा कि वह व्यापक सानुरूपता भय से देखते थे, फ्रीडमैन, नोज़िक एवं हयेक इस विचार से जुड़े कुछ

अभी हाल के नाम हैं। इस प्रकार के विचार स्वतंत्रता व समानता के बीच सोच-समझकर कोई न कोई विवाद खड़ा करते हैं। यह सुझाते हुए कि समानता लागू करने के प्रयासों का तत्काल अर्थ होता है – बलप्रयोग और स्वतंत्रता की समाप्ति। वे संकेत करते हैं कि चूँकि व्यक्तिजन अपने-अपने कौशलों व योग्यताओं के लिहाज से आपस में भिन्न होते हैं, उनके जीवन में भिन्नताएँ तो अवश्यंभावी हैं, और तदनुसार असमानता की ओर एक सहज प्रवृत्ति तो होगी ही। इसको सुधारने का कोई भी प्रयास सत्तावादी दमन के साथ ही होगा और इसी कारण से स्वतंत्रता समाप्त हो जायेगी।

यहाँ समानता की तुलना एकरूपता से करने का सुविचारित प्रयास किया जाता है, समतावादी समाज कोई समरूप समाज नहीं होता। यह एक ऐसा समाज है, जहाँ हर व्यक्ति अपनी वैयक्तिक एवं भिन्न प्रतिभाओं के साथ एक समान रूप से सार्थक एवं यथेष्ट जीवन व्यतीत कर सकता/सकती है।

वे लोग जो यह दावा करते हैं कि समानता एवं स्वतंत्रता असमाधेय हैं, अपनी बात स्वतंत्रता की एक विशिष्ट समझ से शुरू करते हैं; जिसका वर्णन स्वतंत्रता की 'नकारात्म संकल्पना' के रूप में किया जाता है। वस्तुतः वे दावा करते हैं कि स्वतंत्रता की सकारात्मक संकल्पना स्वतंत्रता कतई नहीं है, बल्कि स्वतंत्रता के छद्म वेश में कोई चीज है। स्वतंत्रता संबंधी नकारात्म वर्णन स्वतंत्रता को एक व्यक्ति के जीवन में जानेबूझे हस्तक्षेप के अभाव के रूप में देखता है। इसके विपरीत, समतावादी स्वतंत्रता को उन विकल्पों के चुनने हेतु उपलब्धता एवं योग्यता के रूप देखते हैं, जो सार्थक एवं प्रभावी हों। स्वतंत्रता-संबंधी इस प्रकार की समझ इसे तत्काल ही सामाजिक एवं संस्थागत सत्ता ढ़ाँचों तक पहुँच, भौतिक व आर्थिक आवश्यकताएँ पूरा करने, तथा निस्संदेह, शिक्षा व ज्ञान पर अधिकार आदि मामलों से जोड़ेगी। इसी कारण, समतावादियों का कहना है कि सामाजिक प्रभाव, आर्थिक धन-सम्पत्ति एवं शिक्षा के लिहाज से समानता यह सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य है कि हर व्यक्ति एक सार्थक एवं यथेष्ट जीवन व्यतीत करे। यह काम करने में समतावादी सामाजिक एवं संस्थागत ढ़ाँचों द्वारा दबी हुई समानता को पाना अपना लक्ष्य मानते हैं। धन-संपत्ति के अंतर से स्वतंत्रता गंभीर रूप से बाधित है। शिक्षा, हमें नए विचारों को ग्रहण करने में समर्थ करके और हमें विभिन्न कौशलों से शिक्षित कर निस्संदेह एक युक्तिकारी कारक की भूमिका निभाती है। इसी कारण, इन मूल सिद्धांतों की प्राप्ति में कोई भी असमानता, उस सार्थक व यथेष्ट जीवन को जीने हेतु व्यक्ति की समर्थता को सीमितकर देगी जो कि समतावादियों के लिए स्वतंत्रता की धारणा का सार-तत्त्व है।

समतावादी यह तर्क देते हैं कि मनुष्य महज अकेले छोड़ दिए जाने से स्वतंत्र नहीं हो जाता। उनका कहना है कि अधिकार, धन-सम्पत्ति व शिक्षा स्वतंत्रता के मूल स्रोत हैं और वह समाज जो उन पहलुओं में समानता सुनिश्चित नहीं कर सकता, स्वतंत्र समाज नहीं हो सकता। तदनुसार, हम देखते हैं कि स्वतंत्रता व समानता विरोधात्मक होने से बढ़ कर दरअसल महज संगत ही नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर भी हैं।

बीसवीं सदी का अधिकांश समय ऐसा था, जब समानता की तर्कसंगतता देने की जरूरत नहीं थी। इसको ऐसे केन्द्रीय सिद्धांत के रूप में देखा जाता था जिसके इर्द-गिर्द राष्ट्रों व समाजों को स्वयं को संगठित करना होता था। बहरहाल, नई सदी के आगमन के साथ ही, समानता को नैतिक रूप से अवांछित सिद्ध करने का एक गंभीर बौद्धिक एवं राजनैतिक प्रयास किया जा रहा है। संपत्ति के अधिकार की अपरिहार्य प्रवृत्ति एवं समाज की अनिवार्यतः बहुवादी प्रवृत्ति के चलते समतावाद-विरोधी दावे को समानता के अनुशीलन द्वारा गंभीर रूप से ख़तरा रहेगा।

4.8 सारांश

इस इकाई में हमने इस बात पर सूक्ष्म दृष्टि डाली कि समानता की अवधारणा का मतलब क्या है। इस तथ्य के साथ यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि हम ऐसे समाज में रहते हैं जो अनेक प्रकार की असमानताओं से लड़ रहा है। समानता अपने बहुत ही सीमित अर्थ में औपचारिक समानता है जो कि सभी मनुष्यों की सार्वभौम मानवता संबंधी धारणा को स्वीकार करती है। अवसर की समानता, जिसको हमने देखा, का प्रयोग असमानता को अन्यतम रूप से सही ठहराने के लिए किया जा सकता है। परिणामों की समानता समानता शब्द के अर्थ को विस्तार प्रदान करती है। हमने समानता संबंधी आधुनिक उदारवादी बचाव पक्ष के साथ-साथ इस बात का भी अध्ययन किया कि यदि वह समाज में केवल सबसे खस्ता हालत वालों के अधिकतम लाभ हेतु ही काम करता हो तो वह असमानता को किस प्रकार सही ठहराता है। हमने समानता संबंधी नारीवादी समालोचना पर भी ध्यान दिया।

अन्ततः, हमने समानता व स्वतंत्रता के बीच बहस पर सूक्ष्म दृष्टि डाली, और देखा कि स्वतंत्रता संबंधी एक नकारात्मक अवधारणा इन दो अवधारणाओं को विवादास्पद बनाती है।

4.9 संदर्भ

नोर्मैंज, पी. बेरी, *ऐन इण्ट्रोडक्शन टु माडर्न पॅलिटिकॅल थिअरी*, मैकमिलन, लंदन, 2000

हैल्ड, डैविड, *पॅलिटिकॅल थिअरी टुडे,* स्टिबार्ट, रॉबर्ट एम., रीडिंग्स इन सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल फिलॉसफी

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) टॉनी न सिर्फ़ असमानता की विद्यमानता को लेकर परेशान थे, बल्कि इस बात से भी कि इस असमानता को स्वाभाविक एवं अपरिहार्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।
2) औपचारिक समानता का मार्गदर्शन करने वाला बुनियादी सिद्धांत यह है कि चूँकि सभी मनुष्य समान बनाये गए हैं, उनके साथ समान व्यवहार होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) एक समतावादी समाज कुछ लोगों को अपनी क्षमताएँ विकसित करने के लिए सच्चा अवसर देने से इंकार नहीं करेगा। इस अवसर का वास्तविक समतावादी प्रयोग एक सार्थक जीवन व्यतीत करना होगा।

बोध प्रश्न 3

1) नोज़िक यह दावा करते हैं कि असमतावादी समाज व्यक्तियों की विशिष्टता एवं उनके बीच भेद को स्वीकार कर व्यक्तिजनों के प्रति अधिक सम्मान दर्शाते हैं। चूँकि एक समतावादी समाज से प्रभाव, पद, आप व सामाजिक स्थिति पर आधारित भेद दूर कर दिए जाएँगे, आत्म-सम्मान के लिए आधार नहीं होगा, क्योंकि आत्म-सम्मान उन मानदण्डों पर आधारित होता है जो लोगों में भेद करते हैं।

इकाई 5 न्याय*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 न्याय का अर्थ

5.2.1 न्याय और कानून

5.2.2 न्याय और भेदभाव

5.3 वितरणकारी न्याय

5.3.1 वितरणकारी न्याय और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना

5.4 सामाजिक न्याय

5.4.1 सामुदायिक हित का प्राबल्य

5.4.2 सुधार अथवा सामाजिक परिवर्तन

5.4.3 सामाजिक न्याय संबंधी पाउण्ड का चित्रण

5.4.4 सामाजिक न्याय संबंधी आलोचना

5.5 प्रक्रियात्मक न्याय

5.6 जॉन रॉल्स का न्याय-सिद्धांत

5.7 न्याय : संयोजन का एक शब्द

5.8 सारांश

5.9 संदर्भ

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम न्याय की संकल्पना का अध्ययन करेंगे, जो आमतौर पर राजनीति-विज्ञान और खासतौर पर राजनीति-सिद्धांत में सबसे बुनियादी और महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं में से एक है। यह इकाई पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- न्याय-संबंधी संकल्पना के अर्थ को स्पष्ट कर सकें;
- न्याय के विभिन्न पहलुओं के बीच अंतर कर सकें;
- न्याय के विभिन्न सिद्धांतों की पहचान और व्याख्या कर सकें; और
- स्वतंत्रता, समानता, कानून व न्याय के बीच संबंध स्पष्ट कर सकें।

5.1 परिचय

अब तक आप सभी कानून, स्वतंत्रता एवं समानता जैसी संकल्पनाओं के विषय में जान चुके होंगे। इन संकल्पनाओं का एक पूर्व-अध्ययन न्याय की अवधारणा को समझने में मदद करेगा। न्याय का मूल सिद्धांत वस्तुतः उपरोक्त विषयों से जुड़ा है।

*डॉ. रचना सुचिन्मयी, मगध विश्वविद्यालय, पटना

इस इकाई में हम इस अवधारणा का अर्थ उसके पहलुओं में समझने का प्रयास करेंगे। तदोपरांत, हम न्याय संबंधी विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे। हम एक ओर न्याय और दूसरी ओर कानून, स्वतत्रंता व समानता के बीच संबंध पर भी प्रकाश डालेंगे।

न्याय राज्य के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में एक है। राजनीति विषयक प्राचीनतम समझौतों में एक समझौता, प्लैटो का 'रिपब्लिक', न्यायसंगत राज्य के निर्माण हेतु एक प्रयास था। न्याय इसकी केन्द्रीय अवधारणा थी। इसी कारण, इस अवधारणा की एक सही समझ विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों, उनकी नीतियों व उन विचारधाराओं जिन पर वे आधारित हैं, के मूल्यांकन में मदद करेगी। इस प्रकार, न्याय ही राजनीतिक मूल्यों का समन्वयक एवं संयोजक है तथा, जैसा कि अरस्तू ने कहा, यह 'वो है जो तमाम भलाई के लिए ज़िम्मेदार' है।

5.2 न्याय का अर्थ

न्याय की अवधारणा संबंधी किसी भी चर्चा में उसके बहु-आयामी स्वभाव का ध्यान रखना पड़ता है। 'न्याय क्या है' का जवाब सिर्फ़ उन मापदण्डों (मूल्यों) का संकेत करके ही दिया जा सकता है, जिनके सहारे मनुष्य ने न्याय के बारे में सोचा और सोचता रहेगा। यह वक्त गुज़रने के साथ ही बदल जाता है। इस प्रकार, अतीत में जो न्याय था, वर्तमान में अन्याय हो सकता है तथा वर्तमान में जो न्याय है, अतीत में अन्याय रहा हो सकता है। तदनुसार, न्याय का समतावादी बोध रहा है जिसमें उच्चतम स्थान समानता के मूल्य को दिया जाता है, 'इच्छा स्वातंत्र्यवादी' बोध रहा है जिसमें स्वतंत्रता ही परम मूल्य होता है; 'क्रांतिकारी' दृष्टिकोण जिसमें न्याय का मतलब है कायापलट कर देना; 'दैवी' दृष्टिकोण जिसमें ईश्वर की इच्छा का निष्पादन ही न्याय है; 'सुखवादी' न्याय की कसौटी 'अधिकतम संख्या का अधिकतम लाभ' को बनाता है; 'समन्वयक' के लिए न्याय पर्याप्त संतुलन लाने हेतु विभिन्न मूल सिद्धांतों व मूल्य का समन्वय करना है। कुछ लोग न्याय को 'कर्त्तव्य' अथवा शान्ति व व्यवस्था कायम रखने के साथ पहचानते हैं; दूसरे, इसे एक अभिजात-वर्गवादी कार्य के रूप में देखते हैं; इस प्रकार, न्याय व्यक्ति के अधिकार के साथ-साथ समाज की सार्वजनिक शांति से भी संबंध रखता है।

5.2.1 न्याय और कानून

रोम के अधिवक्ताओं ने 'प्राकृत न्याय' संबंधी विचारों को राज्य के सकारी कानून के साथ जोड़ा। जैसे कि नागरिक कानून एवं राष्ट्रिक कानून प्राकृत कानून के साथ मेल खाते हैं। यह वैसे न्यायशास्त्र की एक दुर्बोध अवस्था है। वस्तुतः, न्याय सकारी कानून को लागू किए जाने में निहित होता है। कानून व न्याय दोनों ही सामाजिक व्यवस्था कायम रखने का प्रयास करते हैं। जॉन ऑस्टिन इस बात के मुख्य समर्थक हैं, जो बतलाते हैं कि कानून को एक ओर न्याय के साधन रूप में और दूसरी ओर अनिष्ट को रोकने के साधन रूप में काम करना पड़ता है।

वैध रूप से, न्याय-व्यवस्था को अन्यायपूर्ण कहकर आलोचना की जा सकती है, यदि वह कानून-व्यवस्था की प्रक्रियाओं द्वारा वांछित निष्पक्षता के मानक तक पहुँचने में असमर्थ रहती है। यथा अभियुक्त अपने विरुद्ध लगाये गए आरोपों से अवगत होना चाहिए; उसे अपने बचाव के लिए एक सकारण अवसर दिया जाना चाहिए आदि, जबकि नैतिक रूप से, किसी कानून को अनुचित कहा जा सकता है यदि वह न्याय-संबंधी नैतिक विचारों से मेल न खाता हो। नैतिकता, बहरहाल, न्याय से अधिक महत्त्व रखती है।

न्याय के प्रतीक को प्रायः आँखें बंद किए हुए के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि उसको निष्पक्ष माना जाता है। ताकि दो सिरों – धनवान या ग़रीब, उच्च अथवा निम्न के बीच, कोई भेदभाव न रहे। इसी कारण, निष्पक्षता न्याय की एक पूर्व शर्त बन जाती है। तो फिर क्या इसका मतलब, न्याय को पक्षपात की कतई ज़रूरत नहीं पड़ती?

5.2.2 न्याय और भेदभाव

प्लैटो और अरस्तू ने न्याय की एक भिन्न व्याख्या हेतु तर्क दिया – ''न्याय-निष्ठता'' के विचार सहित ''आनुपातिक समानता''। न्याय की सैद्धांतिक व्याख्या अरस्तू के पास पहुँचकर एक आनुभविक दिशा पकड़ लेती है जो कहते हैं : ''जब समानों से असमान रूप से व्यवहार किया जाता है, तो अन्याय उत्पन्न होता है।'' इसका मतलब कि यदि किसी लोकतंत्र में लिंग के आधार पर भेदभाव होता हो तो इसका अर्थ समानों के साथ असमानरूप से व्यवहार करना है। इसी तरह, एक 80-किग्रा. (heavy-weight) पहलवान को एक 60-किग्रा. (light-weight) पहलवान के सामने लड़ने के लिए प्रस्तुत करना भी अनुचित होगा। इस प्रकार, न्याय अपेक्षा करता है कि भिन्नताओं के आधार पर भेदभाव हो, जो कि निष्पादित कार्यों के लिए प्रासंगिक है। प्लैटो के न्याय-संबंधी सिद्धांत का निहितार्थ था कि लोगों का जीवन कार्यात्मक विशेषज्ञता नियम के अनुरूप होना चाहिए। यहाँ न्याय 'सही स्थान' सिद्धांत का दूसरा नाम हो जाता है, यथा किसी आदमी को बस उसी काम का ही अभ्यास करना चाहिए जिसके प्रति उसका स्वभाव सर्वाधिक अनुकूल है। इसके वैयक्तिक व सामाजिक दोनों ही पहलू होते हैं। व्यक्ति व समाज, दोनों की ही सबसे ज़्यादा भलाई इसी में रहेगी यदि हम यह सत्य मान लें कि किसी व्यक्ति के लिए इससे अच्छी बात नहीं होगी कि वह ऐसा काम करे, जिसके लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त हो। ठीक इसी प्रकार, समाज के लिए इससे बेहतर कोई बात नहीं होगी कि यह देखे कि हर व्यक्ति उसी स्थान को ही भरे जिसके लिए वह अपने व्यक्तित्व की विशेषता के आधार सर्वाधिक योग्य हो। इसके लिए व्यक्ति व राज्य के लिए बुद्धि, शक्ति व प्रवृत्ति संबंधी तीन मूल तत्त्वों पर ज़ोर दिया गया है, ताकि वे उनको उचित मर्यादा में रखें।

साथ ही, सामान्यतः कानून निजी जीवन में विभेदकारी व्यवहार की घटनाओं में हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु इससे यदि सामाजिक हानि पहुँचती हो, तो राज्य का इसमें हस्तक्षेप करना न्यायसंगत होगा, जैसे अस्पृष्यता की घटनाओं में, जहाँ कुछ समुदायों को मानवाधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इसी कारण, इसके विरुद्ध कोई भी कानून न्यायसंगत होगा। इसी तरह, अलग से दी गई सुविधाएँ वस्तुतः समान नहीं हो सकतीं। यही कारण है कि डॉ॰ अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों के लिए मंदिरों में प्रवेष के अधिकार की माँग की और उनके लिए पृथक् मंदिरों, विद्यालयों अथवा छात्रावासों का विरोध किया।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) न्याय क्या है?

.....

.....

.....

.....

2) न्याय की अवधारणा में भेदीकरण कैसे समाविष्ट होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 वितरणकारी न्याय

अरस्तू की धारणा उस सिद्धांत की नींव रखने वाली सिद्ध हुई, जिसको 'वितरणकारी न्याय' कहा जाता है। अरस्तू की व्याख्या का महत्त्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि न्याय या तो 'वितरणात्मक' होता है अथवा 'दोषनिवारक'; पूर्ववर्ती अपेक्षा करता है कि समानों के बीच समान वितरण हो और परवर्ती वहाँ लागू होता है, जहाँ किसी अन्याय का प्रतिकार किया जाता है।

वह सिद्धांत जो मार्क्स ने क्रांति-पश्चात् साम्यवादी समाज में वितरणकारी न्याय हेतु प्रस्तुत किया, वो है – 'हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार'। वितरणकारी न्याय का विचार कुछ हाल के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों की पुस्तकों में प्रकट होता है। इस संदर्भ में, जे.डब्ल्यू. चैपमैन की पुस्तक प्रशंसनीय है, जो 'मनुष्य की आर्थिक तर्कशक्ति' संबंधी अपने सिद्धांतों को 'नैतिक स्वतंत्रता' संबंधी व्यक्तिगत दावे से जुड़ी 'उपभोक्ता की संप्रभुता' से जोड़ने का प्रयास करते हैं। उनके अनुसार, न्याय का प्रथम सिद्धांत उन लाभों का वितरण होना प्रतीत होता है, जो उपभोक्ताओं के सिद्धांतों के अनुसार लाभ-वृद्धि करते हों। दूसरा सिद्धांत यह है कि ऐसी व्यवस्था अन्यायपूर्ण होती है, यदि मात्र कुछ लोगों के भौतिक कल्याण को अनेक लोगों की कीमत पर खरीद लिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि न्याय यह अपेक्षा करता है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे की कीमत पर लाभ प्राप्त न करे।

5.3.1 वितरणकारी न्याय और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना

वितरणकारी न्याय आम कल्याण की शर्त के अधीन है। वह चाहता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को इस प्रकार सुधारा जाए कि लाभ आम आदमी तक पहुँच सकें। इस तरीके से आर्थिक न्याय की धारणा का अर्थ होगा समाज का एक साम्यवादी प्रतिमान।

आर्थिक न्याय का पहला काम है, हर सक्षम-देही नागरिक को रोज़गार, खाद्य, आश्रय व वस्त्रादि मुहैया कराना। सभी की प्राथमिक व मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के इस क्षेत्र के संबंध में यह ठीक ही कहा गया है कि स्वतंत्रता अर्थहीन है, यदि वह आर्थिक न्याय दिलाने में रुकावट डालती है। तदनुसार, उदारवादीजन यह मानते हैं कि आर्थिक न्याय समाज में हासिल किया जा सकता है, यदि राज्य कल्याणकारी सेवा प्रदान करता हो और वहाँ कराधान की सुधारवादी व्यवस्था हो; सामाजिक सुरक्षा वाले रोज़गार प्रबन्ध हेतु अच्छी आमदनी हो, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, आनुतोशिक एवं भविष्य निधि।

तथापि, न्याय-संबंधी मार्क्स के विचार का मूल अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ही है। मार्क्स के अनुसार, राज्य का सरकारी कानून उस वर्ग-विशेष के प्राधिकार द्वारा ही अपने सदस्यों पर थोपा जाता है, जो उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करता है। कानून शासक वर्ग के न्याय

आर्थिक हित द्वारा तय किया जाता है। जब निजी सम्पत्ति को समाप्त कर दिया जाता है और कामगार वर्ग उत्पादन-साधनों पर नियंत्रण कर लेता है, तो ये कानून कामगार वर्गके हित को सोचने-विचारने के लिए बाध्य होते हैं। इसी कारण, न्याय की विषयवस्तु उत्पादन-साधनों पर नियंत्रण रखने वाले वर्ग पर निर्भर करती है। जब राज्य का क्षय हो जाएगा, जैसा कि साम्यवादी जन इरादा रखते हैं, तो यहाँ आर्थिक मूल के बग़ैर न्याय व्याप्त हो जाएगा।

आधुनिक उदारवादी जन काफ़ी लम्बे समय से आर्थिक अहस्तक्षेप संबंधी आम सिद्धांत को छोड़ चुके हैं। पुनर्वितरणकारी न्याय (जिसकी अरस्तू ने बात की) 'संशोधन उदारवाद' का एक अभिन्न हिस्सा है, जिसका कि जे.डब्ल्यू. चैपमैन, जॉन राल्स, व अर्थर ओकुन ने समर्थन किया। इन लेखकों ने सभी के लिए न्याय व स्वतंत्रता के हितार्थ अर्थव्यवस्था में राज्यीय हस्तक्षेप के अपने आशय के साथ ''पुनर्वितरणकारी न्याय'' की वकालत की।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) वितरणकारी न्याय से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय विद्यमान कानूनों के तहत किसी व्यक्ति की न्यायसंगत अपेक्षाओं की पूर्ति सुनिश्चित करते हुए उस व्यक्ति के अधिकार व सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन से ताल्लुक रखता है और उसे लाभों व उसके अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण से बचाव की गारण्टी देता है। चलिए, न्याय के निम्नलिखित पहलुओं के लिहाज से 'सामाजिक न्याय 'शब्दपद पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं, यथा एक, सामुदायिक हित के प्राबल्य की धारणा और दो, 'सुधार' अथवा सामाजिक परिवर्तन की धारणा।

5.4.1 सामुदायिक हित का प्राबल्य

बाज़ार आदि मामलों में अहस्तक्षेप सिद्धांत के ह्रास के साथ ही एक नई जानकारी विकसित हुई कि किसी व्यक्ति के अधिकार समुदाय-विशेष के हित में युक्तिसंगत रूप से सीमाबद्ध होने चाहिए, ताकि सामाजिक न्याय का उद्देश्य वैयक्तिक अधिकारों व सामुदायिक हित के बीच सामंजस्य की अपेक्षा रखे। वह यह भी मानकर चलता है कि इन दोनों के बीच किसी विवाद की दिशा में, सामुदायिक हित वैयक्तिक विषयों से अवश्य ही ऊपर रहना चाहिए। सामाजिक न्याय, तदनुसार, उस धारणा से गहरे जुड़ा हुआ है जिसमें आम भलाई अथवा सामुदायिक हित शामिल हैं। आज सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में लोकतंत्र के प्रवेश के साथ ही, सामुदायिक हित के दायरे में न सिर्फ़ राजनीतिक (राजनीतिक मामलों में उचित व्यवहार) बल्कि सामाजिक (सामाजिक क्षेत्रों में अभेदभाव) व आर्थिक (आय व सम्पत्ति का

उचित वितरण) क्षेत्र भी आने लगे हैं। इस प्रकार, सामाजिक न्याय की शृंखला अल्पसंख्यक राजनीतिक अधिकारों की रक्षा से लेकर अस्पृष्यता निवारण एवं ग़रीबी उन्मूलन तक फैली है। जैसे कि, विश्व के पिछड़े देशों में, सामाजिक न्याय संबंधी धारणा राज्य को आदेश देती है कि वह समुदाय के पददलित एवं कमज़ोर वर्गों की उन्नति के लिए ठोस प्रयास करें।

5.4.2 सुधार अथवा सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक न्याय को आजकल निष्पक्षता व समानता संबंधी धारणाओं के आधार पर समाजके संगठन को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह सामाजिक व्यवस्था पर विचारकर उसे बदलने का प्रयास करता है, ताकि एक अधिक साम्यिक समाज बन सके। मनुष्य युगों से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तनों का प्रयास करता रहा है, ठीक उतना ही जितना कि वह एक प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था को बचाये रखने का प्रयास करता रहा है। सामाजिक न्याय का अर्थ है – सुधारवादी न्याय, सामाजिक व्यवस्था पर विचारकर उसे बदलना और निष्पक्षता संबंधी सामयिक विचारों से मेल खाते अधिकारों का पुनर्वितरण। जब अरस्तू ने 'वितरणकारी न्याय' की बात की थी, तो वह सुधारवादी, अथवा जिसे राफ़ेल ''कृत्रिम अंगी'' कहते हैं, न्याय की बात दिमाग़ में रखते थे, क्योंकि इसका उद्देश्य यथास्थिति में किंचित् हेर-फेर करना था।

कोई सौ वर्ष पहले, न्याय सरकार से यह अपेक्षा नहीं रखता था कि बेरोज़गारों का ध्यान रखे। इस काम की अपेक्षा दातव्य (charity) संस्थान से की जाती थी। ''सुधारवादी'' अथवा ''कृत्रिम अंगी'' न्याय संबंधी विचारों की युक्ति से आज यह राज्य का कर्त्तव्य है कि बेरोज़गारों का ध्यान रखे और उन्हें रोज़गार मुहैया कराये।

5.4.3 सामाजिक न्याय संबंधी पाउण्ड का चित्रण

सामाजिक न्याय संबंधी धारणा की अभिपुष्टि डीन रौस्को पाउण्ड की व्याख्या में बहुत अच्छी तरह की गई है, जो सामाजिक हित का छह-सतही चित्रण प्रस्तुत करते हैं और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए आठ कानूनी यानी अधिकार व कर्त्तव्य संबंधी अभिधारणाएँ सामने रखते हैं। तदनुसार, सामाजिक न्याय संबंधी धारणा एक न्याय-संगत सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित कर लोगों के कल्याण को प्रोत्साहन देने की परिकल्पना करती है।

5.4.4 सामाजिक न्याय संबंधी आलोचना

सामाजिक न्याय संबंधी सिद्धांतों की तीन आधारों पर आलोचना की जाती है। प्रथम, सामाजिक न्याय हेतु माँगें, उलझाव में डालकर, राज्य के क्रियाकलापों में इज़ाफा कर देती हैं। राज्य को तब तय करना पड़ेगा कि ''कौन क्या, कब और कैसे प्राप्त करे''। जहाँ राज्य के अधिकारीगण निहित स्वार्थों को प्रकट करते हों, ऐसा काल्पनिक संकल्प सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने वाला नहीं है। दूसरे, सामाजिक न्याय संबंधी नीतियों एवं उनको लागू किए जाने में आज़ादी की काट-छाँट किए जाने की आवश्यकता पड़ती है। कितने महत्त्वपूर्ण/कितने साधारण सामाजिक न्याय के लिए कितनी आज़ादी कुर्बान की जाये – यह एक मुश्किल से ही सुलझाई जा सकने वाली समस्या बन जाती है। अन्ततः, यह निर्धारित करना मुश्किल होता है कि ऐसी बुनियादी आवश्यकताएँ कौन-सी हैं, जिनका सामाजिक न्याय के मापदण्डों को पूरा करने हेतु निवारण किया जाना है और कौन-सी समानता को छोड़ देना उचित ठहराती हैं।

तथापि, जब भारतीय संविधान विधानमंडल, शैक्षणिक संस्थाओं एवं सार्वजनिक रोज़गार में स्थानों के आरक्षण की घोषणा करता है, तो वह समानता से दूर जाना आवश्यक बना देता

है। न्याय के संबंध में इन नीतियों के लिए अनेक कारण बताए जाते हैं। प्रथमतः यह कि ऐसा बर्ताव वंचनाओं से भरे सौ सालों की क्षतिपूर्ति कर देता है, दूसरे यह कि ये उपाय वंचितों को समाज के साथ ही समान दृढ़स्थिति में लाने के लिए मूलभूत समानता का अनुभव कराने हेतु आवश्यक हैं और तीसरे, यह कि न्याय केवल तभी किया जा सकता हैजबकि राज्य उनका सामाजिक सम्मान, आर्थिक जीवन क्षमता एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा दिलाने में मदद करने रियायती नीतियाँ लेकर आगे आये।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) सामाजिक न्याय क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 प्रक्रियात्मक न्याय

न्याय संबंधी एक अपेक्षाकृत अधिक अनुदार दृष्टिकोण वह है, जिसे 'प्रक्रियात्मक न्याय'कहा जाता है। इस अर्थ में यह शब्द धन-दौलत व लाभों के पुनर्वितरण की प्रयोग-विधि बतलाने में इतना इस्तेमाल नहीं होता, जितना कि वैयक्तिक कार्यों हेतु व्यवहृत नियमों व प्रक्रियाओं के लिए। अनिवार्यतः वह मानवीय कार्यों में मनमानेपन को दूर करने व कानून के शासक का समर्थन करने का प्रयास करता है। इस अवधारणा में व्यष्टियाँ होती हैं, न कि समष्टियाँ। इस दृष्टिकोण से, नियमों व प्रक्रियाओं का साथ न देते हुए, लाइन तोड़कर आगे पहुँचना अथवा प्रतिस्पर्धा में कुछ प्रतिभागियों को अनुचित लाभ देना अन्याय कहलायेगा। प्रक्रियात्मक सिद्धांतियों (उदाहरणतः हयेक) का मानना है कि सम्पत्ति के पुनर्वितरण हेतु मापदण्डों को थोपना सर्व-सत्तावाद और आज़ादी की एक नाज़ायज कुर्बानी की ओर प्रवृत्त करेगा। इसमें राज्य द्वारा निरन्तर हस्तक्षेप शामिल है, ताकि समानता द्वारा अपेक्षित प्रतिमान कायम रहे। उन्हें लगता है कि यदि राज्य किसी कल्याणकारी नीति को अपना भी लेता है, तो उसका न्याय से कम ही सरोकार होता है।

प्रक्रियात्मक सिद्धांत के समालोचकों का तर्क है कि महज नियमों का पालन मात्र ही कोई उचित परिणाम सुनिश्चित नहीं कर देता। किसी सामाजिक प्रसंग में बनाये गए नियम कुछ ही समुदायों के पक्ष में विचारे जाते हैं। इसी कारण, एक स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा हमेशा एक निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती। दूसरे, मुक्त-बाज़ार सम्बंध उन व्यक्तियों के लिए समान रूप से दमनकारी हो सकते हैं, जिनके पास आर्थिक शक्ति का अभाव है; उनके लिए एक मुक्तबाज़ार की आज़ादी अर्थहीन होगी।

5.6 जॉन रॉल्स का न्याय-सिद्धांत

विभिन्न राजनीतिक सिद्धांत 'एक वास्तविक रूप से न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था क्या होगी' संबंधी विभिन्न चित्र प्रस्तुत करते हैं। इनमें से दो सिद्धांत हैं – उपयोगितावादी

सिद्धांत, और निष्पक्षता के रूप में न्याय संबंधी रॉल्स का सिद्धांत। उपयोगितावादी सिद्धांत का दावा है कि वह सामाजिक व्यवस्था जिसमें बड़ी से बड़ी संख्या में लोग अपनी उपयोगिता की उच्चतम संतुष्टि पा सकते हैं, न्यायसंगत है। परन्तु इसके बिल्कुल शुरुआती दिनों से ही समालोचकों को उपयोगितावाद के होते हुए भी बड़ी ही दिक्कतों का सामना पड़ा है। इस पृष्ठभूमि में, उपयोगितावाद के विकल्प रूप में, रॉल्स के सिद्धांत का प्रस्ताव किया गया है। रॉल्स की पुस्तक, थिअरी ऑफ जस्टिस, इस अवधारणा की एक निर्णायक व्याख्या देती है।

न्याय-संबंधी जॉन रॉल्स के सिद्धांत पर चर्चा करने के लिए, पहले उसके नैतिक समस्याओं पर पहुँचने के तरीके का उल्लेख आवश्यक है, जो कि सामाजिक सिद्धांत की संविदावादी परम्परा में देखा जाता है। परन्तु साथ ही, रॉल्स का सिद्धांत यह आवश्यक बनाता है कि नैतिक विवेचन के निष्कर्ष हमेशा सहज-ज्ञान द्वारा अनुभूत नैतिक धारणाओं के मुकाबले जाँचे व पुनर्व्यवस्थित किए जाएँ, और यह बात संविदावादी परम्परा में उन दूसरे लोगों के विपरीत है जो यह दावा करते हैं, कि न्याय के नियम वो होते हैं जिन पर एक परिकल्पित परिवेश में सहमति होती है।

रॉल्स मनुष्य को एक परिकल्पित मूल व्यवस्था में 'अज्ञानता के परदे' के पीछे रखते हैं, जहाँ व्यक्तिजन अपनी आवश्यकताओं, हितों, कौशलों, योग्यताओं संबंधी एवं उन वस्तुओं संबंधी, जो वर्तमान समाजों में विवाद पैदा करती हैं, बुनियादी जानकारी से वंचित रहते हैं। परन्तु उनके पास एक चीज़ ज़रूर होगी, जिसे रॉल्स 'न्याय-बोध' कहते हैं।

इन परिस्थितियों के तहत, रॉल्स का दावा है, लोग शाब्दिक क्रम में न्याय संबंधी दो सिद्धांतों को सहर्ष स्वीकार करेंगे। पहला है 'समानता सिद्धांत', जिसमें हर व्यक्ति को दूसरों की सदृश स्वतंत्रता के अनुरूप ही सर्वाधिक व्यापक स्वतंत्रता का समान अधिकार होगा। यहाँ समान स्वतंत्रता को उदारवादी लोकतांत्रिक शासन-प्रणालियों के सुविदित अधिकारों के रूप में साकार किया जा सकता है। इनमें शामिल हैं – राजनीतिक भागीदारी हेतु समान अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, कानून के समक्ष स्वतंत्रता, इत्यादि। दूसरे सिद्धांत को 'भिन्नता सिद्धांत' कहा जाता है, जिसमें रॉल्स का तर्क है कि असमानताओं को केवल तभी सही ठहराया जा सकता है, यदि उनसे निम्नतम लाभांवितों को लाभ पहुँचता हो।

न्याय-संबंधी जॉन रॉल्स की अवधारणा के दो पहलू हैं। प्रथम, वह एक ''संवैधानिक लोकतंत्र'' की माँग करती है, यानी कानूनों की सरकार और वो ऐसी हो जो वश में हो, जवाबदेह हो और जिम्मेवार हो। दूसरे, वह ''एक निश्चित रीति से'' मुक्त अर्थव्यवस्था केनियमन में विश्वास करती है। ''यदि कानून व सरकार'', रॉल्स लिखते हैं, ''बाज़ार को प्रतिस्पर्धात्मक रखने, संसाधनों को पूरी तरह नियोजित रखने, सम्पत्ति व समृद्धि व्यापक रूप से समयोपरि वितरित कर देने एवं उचित सामाजिक न्यूनातिन्यून को कायम रखने हेतु प्रभावी रूप से काम करते हैं, तब यदि सभी के लिए शिक्षा द्वारा दायित्व-स्वीकृत अवसर की समानता हो, तो परिणामित वितरण न्यायपूर्ण होगा''।

''पुनर्वितरणवादी'' भी अपनी समालोचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। तदनुसार, म्यैर एफ. प्लैटनरन्याय-संबंधी दृष्टिकोण के खिलाफ़ दो दावे पेश करते हैं। पहला, उनका विश्वास है कि यद्यपि समानता एक स्नेह–पालित मूल्य है, इसे सामर्थ्य की कीमत पर हासिल करना संभव नहीं हो सकता। प्लैटनर के अनुसार, यह समानता बनाम बढ़ी समृद्धि की समस्या रॉल्स को एक परस्पर विरोध में डाल देती है। इस प्रकार, एक ओर रॉल्स ''उनको इस बात को स्वीकार करने से एकदम इंकार करते हैं कि वे जो ज़्यादा आर्थिक योगदान देते हैं, ज़्यादा आर्थिक

प्रतिफल का हक रखते हैं''। यद्यपि, दूसरी ओर उनका ''विभिन्नता सिद्धांत'' (जो यह निर्दिष्ट करता है कि ''सामाजिक व आर्थिक असमानताओं को व्यवस्थित किया जानाहै, ताकि वे न्यूनतम लाभांवितों के अधिकतम लाभ हेतु हों'') फिर भी दृढ़तापूर्वक कहता हैकि उन्हें अधिक आर्थिक पारितोषिक प्रदान करना न्याय-संगत है, जहाँ तक कि वे उन तरीकों से अपने योगदान में वृद्धि करने हेतु प्रोत्साहनों के रूप में काम करते हों जो अन्तोगत्वा अलाभांवितों को लाभ पहुँचाते हों।

दूसरा दावा जो प्लैटनर करते हैं, वो हैं कि पुनर्वितरणवादी चाहता है कि व्यक्ति को उसके'' खरे परिश्रम'' के पारितोषिक से इंकार कर दिया जाए, और उसकी बजाय वह सारे उत्पादन को समग्र समान की ''सार्वजनिक सम्पत्ति'' के रूप में मानते हैं। साथ ही, प्लैटनर हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि यह ''निजी सम्पत्ति संबंधी नैतिक आधारों और उसके साथ ही उदारवादी समाज'' को गुप्त रूप से क्षति पहुँचाता है।

बोध प्रश्न 4

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जॉन रॉल्स के न्याय के सिद्धांत की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 न्याय : संयोजन का एक शब्द

शायद न्याय हेतु सबसे अच्छा दृष्टिकोण इसे एक सामंजस्य-संबंधी शब्द के रूप में देखना है। न्याय की समस्या सुलह-संबंधी समस्या है। न्याय का कार्य विभिन्न स्वतंत्रताओं (राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक) का एक दूसरे के साथ तुष्टिकरण; विभिन्न समानताओं (राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक) का एक-दूसरे के साथ और सामान्यतः स्वतंत्रता का उसके सभी रूपों में, मिलाप कराने का काम ही है। संक्षेप में, न्याय का अर्थ है विवादग्रस्त मूल्यों का सामंजस्य और उनको एक साथ किसी साम्यावस्था में रखना।

अनेक जाने-माने लेखकगण स्वतंत्रता बनाम समानता का पक्ष लेना पसंद करते हैं। लॉर्डऐक्टन कई साल पहले ही यह स्मरणीय उद्घोषणा कर चुके थे कि ''समानता हेतु सनकने स्वतंत्रता की आशा को व्यर्थ कर दिया है'' (वह फ्रांसीसी क्रांति के संदर्भ में बोल रहे थे)। ''सिर्फ़ स्वतंत्रता'' के हिमायतियों, उदाहरणार्थ डब्ल्यु. ई. लकी अपनी पुस्तक *डिमोक्रेसी एण्ड लिबर्टी* में, का दावा है कि ''समानता केवल स्वाभाविक विकास के एक कठोर दमन के द्वारा ही मिलती है।''

दरअसल, स्वतंत्रता और समानता दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, जैसा कि कैरिट का कथन है, दोनों ही एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं। यदि समानता है, तो स्वतंत्रता ज़्यादा संतोष प्रदान करेगी। और, साथ ही, यह स्वतंत्रता ही है जो व्यक्ति को समानता की माँग करने के योग्य बनाती है। आदमी को आज़ादी दो और वह अभी, नहीं तो बाद में, समानता की माँग करेगा। स्वतंत्रता व समानता के बीच अन्तर्संबंध पर अनेक तरीकों से प्रकाश डाला जा सकता है।

बोलने और वोट देने की स्वतंत्रता का ही उदाहरण ले लें, ये दोनों ही धन-संपत्ति के भारी असमान वितरण द्वारा निष्प्रभ किए जा सकते हैं। धनी जन न सिर्फ़ प्रतिस्पर्धा करने बल्किप्रचार करने हेतु भी एक बेहतर स्थिति में होते हैं। उनके पास प्रचार माध्यमों तक अपेक्षाकृत आसान पहुँच होती है। हैरॉल्ड लास्की के शब्द आज भी सत्य लगते हैं : ''असमानों के समाज में अपनी स्वतंत्रता का दावा करने वाले व्यक्ति के हर प्रयास को ताकतवरों द्वारा चुनौती दी जायेगी।'' संक्षिप्त में, हम पाते हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक लोकतंत्र को कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना पड़ता है। और, यदि विभिन्न राजनीतिक मूल्यों पर सूक्ष्मदृष्टि डालें, तो पायेंगे कि यद्यपि ऊपरी तौर से वे परस्पर विरोधी हो सकती हैं, ध्यापूर्वक न्याय देखे जाने पर वे संपूरक एवं अन्तर्सम्बद्ध पायी जाएँगी। बहरहाल, यह न्याय का काम है कि विविध एवं प्रायः–विरोधी मूल्यों के बीच संयोजन या सामंजस्य स्थापित करे। न्याय ही अन्तिम सिद्धांत है, जो स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता के भी हित में विभिन्न अधिकारों (राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक) के वितरण को नियंत्रित करता है।

न्याय संबंधी इस प्रकार की अवधारणा एक सामाजिक विचार की विकास-प्रक्रिया के रूप में ऐतिहासिक रूप से विकसित होती है। इस अर्थ में यह एक विकासमान अवधारणा है जो समाज की वास्तविकता एवं अभिलाषा को प्रतिबिम्बित करती है।

5.8 सारांश

हमने जो अब तक देखा वह यह छाप छोड़ता है कि न्याय अनिवार्यतः एक नियामक संकल्पना है, जिसका स्थान अनेक क्षेत्रों में है, जैसे धर्म, नीतिशास्त्र एवं कानून, यद्यपि इसके शाखा-विन्यास में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र आते हैं।

निष्पक्षता न्याय की एक अनिवार्य शर्त है। निष्पक्षता का अर्थ बिना भेदभाव के सबके साथ समान रूप से व्यवहार करना नहीं है। एक व्याख्या है – समानों के साथ समान रूप से और असमानों के साथ असमान रूप से सुलूक करना। परन्तु मुख्य रूप से विभेदीकरण को प्रासंगिक मानदण्डों पर ही रहना पड़ता है।

न्याय चाहता है एक न्यायसंगत आधार पर मूल्यों का विभेदीकरण। विभिन्न सिद्धांत इनकी व्यवस्था का समर्थन अथवा छिद्रान्वेषण करते हैं। सामाजिक न्याय लोगों की आवश्यकताओं पर ज़ोर देता है। वह भारतीय सामाजिक संदर्भ में रियायती नीतियों का भी आह्वान करता है। इसके विपरीत, प्रक्रियात्मक न्याय कानून के शासन और यादृच्छिकता के विलोपन की अपेक्षा रखता है।

न्याय संबंधी रॉल्स के सिद्धांत में लोगों को सामाजिक व्यवस्था संबंधी एक विकल्प चुनना पड़ता है। वे स्वाभावतः एक इच्छा स्वातंत्र्यवादी समाज चुनेंगे। यह सिद्धांत सभी को समान मौलिक स्वतंत्रताएँ प्रदान करता है। असमानताएँ सभी के लिए खुले उच्चपदों से जुड़ी होनी चाहिए। उन्हें सबसे अधिक अलाभांवित वर्ग को लाभ पहुँचना चाहिए।

अन्त में, तथापि न्याय संबंधी गहरी व जटिल बहस में पड़ने की बजाय, यह कहना सार्थक होगा कि सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मूल्यों का यही संयोजी बन्ध (converting bond) है। उदाहरण के लिए, यदि समानता के मानदण्ड का उल्लंघन किया जाता है, तो स्वतंत्रता कायम नहीं रहेगी और यदि न्याय नहीं होगा तो समानता नहीं रहेगी। स्पष्ट है कि न्याय स्वतंत्रता एवं समानता के मानदण्डों से अभिन्न रूप से जुड़ा है। इसी प्रकार, हम कह सकते हैं कि यदि कोई अधिकार अस्तित्व में नहीं है, तो कोई आज़ादी नहीं रहेगी और यदि न्याय-

प्रबन्ध सुनिश्चित करने हेतु कानून की कोई सुसंगठित व्यवस्था नहीं है, तो अधिकारों की कोई रक्षा नहीं होगी। पुनः स्पष्ट है कि न्याय-संबंधी धारणा अनिवार्यतः अधिकारों व कानून की अवधारणाओं से जुड़ी है। इस दशा में सबसे ग़ौरतलब बात यह है कि न्याय-संबंधी धारणा न सिर्फ़ कानून, स्वतंत्रता, समानता व अधिकारों संबंधी मानदण्डों से अभिन्न रूप से जुड़ी है, यह अनिवार्य सम्बन्ध भी स्थापित करती है। न्याय इस अर्थ में राजनीतिक मूल्यों का पुनर्संधि स्थापक और संयोजक है। डैनियल वैब्स्टरने बिल्कुल ठीक ही कहा कि न्याय ''मनुष्य का प्रधानतम हित है''।

5.9 संदर्भ

ऐलन, सी.के., *ऐस्पैक्ट्स ऑफ जस्टिस,* स्टीवन एण्ड सन्ज़, लंदन, 1955

बेकर, अर्नेस्ट, *प्रिंसिपॅल्स ऑफ़ सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल थिअरी,* लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी,लंदन, 1967

बैरी, नॉर्मन पी., *एन इण्ट्रोडक्शन टु माडर्न पॅलिटिकॅल थिअरी,* मैकमिलन, लंदन, 1981

राफ़ैल, डी.डी., *प्रॉब्लम्स ऑफ़ पॉलिटिकॅल फ़िलोसॅफ़ी,* मैकमिलन, लंदन, 1976 (द्वितीयसंस्करण)

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर में न्याय की समतावादी, इच्छा स्वातंत्रयवादी, देवी और सुखवादी संकल्पनाओं पर प्रकाश डालें।

2) न्याय के लिए भिन्नताओं के आधार पर भेदभाव की जरूरत होती है।

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर में निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालें–

- वितरणकारी न्याय सामान्य कल्याण की बात करता है।
- आर्थिक लाभ आम इंसान तक पहुँचना चाहिए।
- उदारवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण।

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर में निम्न बिंदुओं पर प्रकाश डालें–

- सामाजिक न्याय वैयक्तिक अधिकार तथा सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन की बात करता है।
- राज्य का हाशिये पर जो समूह हैं, उनके हितों की रक्षा करनी चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1) दूसरा सिद्धांत जिसे भिन्नता सिद्धांत भी कहा जाता है, इस बात पर जोर देता है कि असमानताओं को तभी उचित ठहराया जा सकता है जब उनसे निम्नतम लाभान्वितों का लाभ मिले।

इकाई 6 अधिकार*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 अधिकारः अर्थ एवं प्रकृति

- 6.2.1 अधिकार का अर्थ
- 6.2.2 अधिकार की प्रकृति
- 6.2.3 विभिन्न अधिकार

6.3 अधिकार के सिद्धांत

- 6.3.1 प्राकृतिक अधिकार के सिद्धांत
- 6.3.2 विधिक अधिकार के सिद्धांत
- 6.3.3 अधिकार का ऐतिहासिक सिद्धांत
- 6.3.4 अधिकार का समाज-कल्याण सिद्धांत
- 6.3.5 अधिकार का मार्क्सवादी सिद्धांत

6.4 मानवाधिकार

6.5 सारांश

6.6 सन्दर्भ

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आप अधिकारों की संकल्पना और उनसे जुड़े सैद्धांतिक-ढांचों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप इस योग्य होंगे किः

- अधिकारों के अर्थ की व्याख्या कर सकें;
- उनके प्रकृति की चर्चा कर सकें; तथा
- अधिकारों से जुड़े मुख्य सिद्धांतों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर सकें।

6.1 परिचय

सही अर्थों में अधिकार वे सामाजिक दावे हैं जो व्यक्ति को आत्मप्राप्ति और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में सहायता प्रदान करते हैं। यदि लोकतंत्र लोगों का शासन है तो उसे उसके अनुरूप होना होगा; क्योंकि वह लोकतंत्र ही अपने लोगों की बेहतर सेवा कर सकता है जो अपने लोगों के लिए अधिकारों की व्यवस्था बनाये रखे। राज्य कभी भी अधिकारों के प्रदाता नहीं होते, वे अधिकारों को मान्यता प्रदान करते हैं। सरकार कभी भी अधिकारों का अनुदान नहीं देती बल्कि उन्हें सुरक्षा प्रदान करती है। अधिकारों की उत्पत्ति समाज में एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होती है, और इस कारण ये अंततः सामाजिक होते हैं। अधिकार, व्यक्तियों के अधिकार हैं; ये व्यक्ति से सम्बंधित हैं; उनका अस्तित्व व्यक्तियों के लिए है; ये व्यक्तियों के द्वारा ही उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

*डॉ. एन.डी. अरोरा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

6.2 अधिकारः अर्थ और प्रकृति

व्यक्ति और राज्य के बीच सम्बन्ध प्रत्येक राजनीतिक सिद्धांत के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। राजनीतिक दार्शनिकों ने इस बात को लेकर लगातार विचार-विमर्श किया है कि 'राज्य' और 'व्यक्ति' में कौन अधिक महत्वपूर्ण है और किसके ऊपर, किसका, क्या ऋण है। अनेक दार्शनिक, उदाहरण के तौर पर प्लेटो, यह विश्वास करते हैं कि राज्य अकेले ही न्याय की स्थापना कर सकता है और व्यक्ति का कार्य है कि वह अपनी क्षमता और योग्यता के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। ऐसे दार्शनिकों को हम आदर्शवादी कहते हैं। कुछ अन्य दार्शनिकों, उदाहरण के लिए जॉन लॉक, का मानना है कि राज्य साध्य की प्राप्ति का साधन मात्र है, और व्यक्ति साध्य है; इसका अर्थ है कि व्यक्ति के अधिकार अनुलंघनीय और अबाध्य हैं। व्यक्तिगत अधिकारों का सिद्धांत आधुनिक युग की परिघटना है, जिसका प्रारम्भ 15वीं-16वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में हुआ; ये अधिकार राज्य की निरंकुशता के विरुद्ध गारंटी हैं, इस कारण से समाज में इनकी उत्पत्ति होने का आभास केवल आधुनिक युग में ही हो पाया। अधिकार व्यक्ति से सम्बंधित होते हैं, इस कारण ये राज्य के पास नहीं होते। अधिकार व्यक्तियों के अधिकार हैं इस कारण व्यक्तियों के विकास के लिए ये अनिवार्य परिस्थितियां हैं। अधिकार हमारी सामाजिक प्रकृति के उत्पाद हैं, अतः ये हमारी समाज की सदस्यता के परिणाम हैं।

6.2.1 अधिकारों का अर्थ

अधिकार दावे हैं, सामाजिक दावे व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास के लिए आवश्यक होते हैं। अधिकार मात्र उसी के हक नहीं हैं जो इन्हें अपने पास रखता है। प्राचीन और मध्य काल में कुछ लोग विशेषाधिकार प्राप्त थे। लेकिन इन विशेषाधिकारों को अधिकार का नाम नहीं दिया जा सकता। अधिकार, विशेषाधिकार नहीं होते क्योंकि ये पात्रता पर आधारित नहीं हैं। अधिकार और विशेषाधिकार में अंतर होता है; अधिकार वे दावे होते हैं जो वैसे ही हमें दूसरों पर मिलते हैं, जैसे दूसरों को हम पर; जबकि विशेषाधिकार हमें दूसरों को नकार कर मिलते हैं। अधिकार इस सन्दर्भ में सार्वभौमिक हैं कि ये सभी को सुनिश्चित किये जाते हैं, जबकि विशेषाधिकार सार्वभौमिक नहीं होते हैं और कुछ निश्चित लोगों को ही दिए जाते हैं। अधिकार व्यक्ति को हक के रूप में प्राप्त होते हैं; जबकि विशेषाधिकार संरक्षण के रूप में प्राप्त होते हैं। अधिकारों की उत्पत्ति एक लोकतान्त्रिक समाज में होती है; जबकि विशेषाधिकार अलोकतांत्रिक समाज के लक्षण हैं। जैफरसन ने उद्घोषणा की थी कि व्यक्ति अपने निर्माता द्वारा कुछ अनुलंघनीय अधिकारों से प्रदत्त है और यह दर्शाता है कि अधिकार प्राकृतिक होते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य के पास अधिकार हैं क्योंकि वह प्राकृतिक तौर पर मनुष्य है। ऐसे व्यक्ति को अधिकार है अथवा होना चाहिए इस सन्दर्भ में तथ्यात्मक रूप से कोई विवाद नहीं है। लेकिन यह तथ्य इससे अधिक या कम कुछ भी नहीं कहता। इस तथ्य में कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। होलान्द परिभाषित करते हैं कि समाज के ताकत से दूसरे के कार्यों को प्रभावित करने की एक व्यक्ति की क्षमता अधिकार कहलाती है। उनकी परिभाषा अधिकार को मनुष्य की गतिविधि के रूप में परिभाषित करती है जिसे समाज ने प्रदान किया है, इसका आशय यह है कि होलान्द अधिकार को सिर्फ सामाजिक दावे के रूप में परिभाषित करते हैं। जबकि अधिकारों के अन्य पक्ष भी हैं, अधिकारों की किसी एक परिभाषा में उसे उचित स्थान नहीं प्राप्त हो पाता। वाइल्ड ने अधिकारों की अपनी परिभाषा में कहा है कि अधिकार सामाजिक दावों के पक्ष को अनौपचारिक उपचार प्रदान करते हैं; जब वे कहते हैं कि, "अधिकार, कुछ निश्चित गतिविधियों को करने के लिए आजादी हेतु औचित्यपूर्ण दावे हैं।" बोसांके और लास्की, अधिकारों की अपनी परिभाषा में समाज, राज्य और व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्थान निर्धारण करते हैं, लेकिन वे भी अधिकारों

के अंग के रूप में दायित्व के महत्वपूर्ण पक्ष को नजर अंदाज कर देते हैं। बोसांके कहता है, "अधिकार एक दावा है जिसे समाज मान्यता देता है और राज्य लागू करता है।" लास्की के अनुसार, "अधिकार, सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियां हैं जिनके बिना व्यक्ति सामान्य तौर पर अपने बेहतर स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता।"

अधिकारों की कार्यात्मक परिभाषा में कुछ निश्चित पक्ष शामिल होने चाहिए। उनमें से, सामाजिक दावा का पक्ष एक है जिसका आशय है कि अधिकारों की उत्पत्ति समाज में होती है और इस कारण समाज से पूर्व, समाज से ऊपर और समाज के विरुद्ध अधिकारों का कोई अस्तित्व नहीं है। अधिकारों का एक अन्य पक्ष 'व्यक्तित्व का विकास' है, जिसका आशय है कि अधिकार व्यक्ति से सम्बंधित होते हैं और ये व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के महत्पूर्ण तत्त्व होते हैं– अधिकारों का यह पक्ष व्यक्ति को सरकार का विरोध करने का अधिकार देता है, यदि उसका कोई भी कार्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विरुद्ध हो। अधिकार की परिभाषा में 'अधिकारों के स्वरूप में राज्य की भूमिका' को सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह पक्ष इस बात पर जोर देता है कि राज्य हमें अधिकार प्रदान नहीं करते बल्कि उसे बनाये रखते हैं। अधिकार इस कारण से अधिकार हैं क्योंकि वे राजनीतिक रूप से मान्यता प्राप्त हैं। अधिकार समाज द्वारा स्वीकृत दावे होते हैं इस कारण ये व्यक्ति के समाज के सदस्य के रूप में कर्तव्यों का अनुसरण करते हैं। कर्तव्य अधिकार के पहले आते हैं न कि उनके बाद। इस अर्थ में कि कर्तव्य अधिकारों से पूर्व हैं, इस आधार का निर्माण करते हैं कि अधिकार अपनी प्रकृति और प्रयोग में सीमित हैं। अधिकार निरंकुश नहीं होते, यह परिभाषा अपने आप में विरोधाभासी है। राफेल ने सही कहा है कि, स्वतंत्रता के रूप में अधिकार और दावे के रूप में अधिकार के बीच का अंतर सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांतों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

6.2.2 अधिकारों की प्रकृति

अभी तक की चर्चा के आधार पर यह पहचानना अधिक आसान हो गया है कि अधिकारों के मूल में क्या है। अधिकारों का स्वभाव उनके नाम में ही निहित है। अधिकार केवल दावे नहीं है; अपितु वे दावों की प्रकृति में होते हैं। सभी अधिकार दावे होते हैं, परंतु सभी दावे अधिकार नहीं होते हैं। अधिकार, वे दावे होते हैं जिन्हें समाज के द्वारा अधिकार के रूप में मान्यता मिलती है। ऐसे पहचान के अभाव में अधिकार केवल दावे बन कर रह जाते हैं। एक व्यक्ति ऐसे किसी भी अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता जो समाज के द्वारा एक अधिकार के रूप में पहचाने नहीं गए हैं। हॉब हाउस के अनुसारः ''अधिकार वो हैं जो हम दूसरों से मांग सकते हैं तथा दूसरे हमसे, एवं सभी मौलिक वास्तविक अधिकार समाज कल्याण की शर्ते हैं। अतः आंशिक रूप से अधिकार वे दावे हैं जिनकी मांग कोई इसलिए कर सकता है क्योंकि वह उन कर्तव्यों के प्रति पालन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं जो समाज उससे करने की आकांक्षा रखता है। अधिकार सामाजिक होते हैं; और वे सामाजिक इस सन्दर्भ में हैं क्योंकि उनका जन्म समाज में ही होता है। किसी भी कीमत पर ये सामाजिक हैं क्योंकि उनका जन्म समाज की उत्पत्ति के पूर्व नहीं हुआ था; एवं वे सामाजिक हैं क्योंकि उनका प्रयोग कभी भी समाज द्वारा अनुभव किये जाने वाले सामान्य-हित के विरुद्ध नहीं हो सकता।

अधिकार, एक सामाजिक दावे की तरह समाज में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करते हैं जो एक मनुष्य के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है, उनको बनाया जाता है तथा उनको प्रदान किया जाता है। राज्य समाज से अलग होकर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है तथा उनको प्रदान करता है। राज्य ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करके अधिकारों को संभव बनाता है। इस तरह से ऐसी स्थिति का

निर्माण होता है जिससे अधिकारों का सही मायने में प्रयोग किया जा सके। राज्य अधिकारों का निर्माता नहीं है, परंतु अधिकारों की सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा करता है। यह राज्य की अधिकार शक्ति के अंदर नहीं है कि वह किसी व्यक्ति के अधिकार छीन सके। अगर राज्य ऐसी परिस्थितियों के निर्माण में सफल नहीं हो पाता है जिन परिस्थितियों में एक व्यक्ति अपने संपूर्ण विकास की दिशा में अधिकारों का प्रयोग करता है तो राज्य अपने प्रति संपूर्ण विश्वास के दावे को खारिज कर देता है। अधिकार एक प्रतिक्रिया है, उस समाज के प्रति जहां उनकी उत्पत्ति हुई है। किसी स्थान तथा समय में, किसी समाज में किन दावों को अधिकारों की स्थिति प्राप्त हुई है यह काफी हद तक उस समाज के नियमों तथा नीतियों पर निर्भर करता है। जैसे ही किसी समाज तथा उसकी परिस्थितियों में बदलाव आता है वैसे ही किन दावों को अधिकारों की स्थिति प्राप्त हुई है इन में भी बदलाव आता है। इसीलिए हम कहते हैं कि अधिकार सदैव बदलते रहते हैं। इसीलिए कभी भी अधिकारों की कोई ऐसी सूची नहीं बनाई जा सकती है जो आने वाले समय के अनुरूप भी सही बैठे। अधिकारों तथा शक्तियों को अलग-अलग समझना होगा। प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ शक्तियां प्रदान की हुई हैं। शक्ति एक भौतिक पैमाना है; केवल शक्ति के आधार पर अधिकारों की प्रणाली नहीं बनाई जा सकती है। अगर किसी इंसान के पास शक्ति है तो इसका यह मतलब नहीं कि उसके पास अधिकार भी हैं। किसी भी इंसान के पास, स्त्री हो या पुरुष अधिकार होते हैं क्योंकि वह समाज का एक अंग है एक सामाजिक व्यक्ति है। एक व्यक्ति जो अकेला है, किसी समाज का अंग नहीं है, उसके पास कोई अधिकार नहीं है, परंतु उसके पास शक्ति, शारीरिक बल तथा कार्यक्षमता है। एक इंसान के तौर पर हमारे पास शारीरिक बल तथा शक्तियां हैं, परंतु एक सामाजिक व्यक्ति के तौर पर हमारे पास अधिकार होते हैं। उसी तरह से एक अकेले मनुष्य के तौर पर हमारे पास कोई अधिकार नहीं है तथा एक सामाजिक व्यक्ति के तौर पर हमारे पास वह शक्ति नहीं है – कुछ कहने के लिए तथा कुछ करने के लिए जो हम करना चाहते हो, कोई अधिकार नहीं है।

हम जो कुछ करते हैं, अधिकार उसकी प्रतिक्रिया हैं। अधिकारों का स्वभाव पारितोषिक तथा प्राप्ति का होता है। ये हमें तब दिए जाते हैं जब हम समाज अथवा दूसरों को भी वही अधिकार देते हैं जो हमारे पास हो। अधिकार केवल हमारे कर्तव्यों के परिणाम नहीं हैं, परंतु इस पर भी निर्भर करते हैं कि हम अपना कार्य कैसे कर रहे हैं। हम दूसरों के लिए जो अच्छे कार्य करते हैं उसके पारितोषिक के तौर पर भी हमें अधिकारों की प्राप्ति होती है, अधिकार पूर्ण रूप से निरंकुश नहीं होते हैं। समाज के एक सदस्य के रूप में व्यक्ति का कल्याण काफी हद तक निर्भर करता है वह अपने अधिकारों का समाज के हित के साथ कितना समन्वय बनाकर चलता है। अधिकारों की सूची को यह अवश्य संज्ञान में रखना चाहिए कि ऐसी कोई भी वस्तु निरंकुश और अनियंत्रित नहीं हो सकती, क्योंकि इससे समाज में अराजकता और अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है।

6.2.3 विभिन्न अधिकार

अधिकार, व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए एक आवश्यक परिस्थिति हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसे कितने अधिकार उपलब्ध हैं। विभिन्न राजव्यवस्थाएं विभिन्न अधिकारों को मान्यता देती हैं। एक अमेरिकी को उपलब्ध अधिकार एक भारतीय को उपलब्ध अधिकारों से भिन्न होंगे। एक उदारवादी लोकतान्त्रिक समाज एक समाजवादी समाज की अपेक्षा विभिन्न अधिकारों को अधिक प्राथमिकता देगा। इस कारण से हमारे पास अधिकारों का एक वर्गीकरण हैः नैतिक, विधिक, नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक। वह अधिकार जिन्हें किसी देश के संविधान में

सम्मिलित किया जाता है वे मूलभूत अधिकार होते हैं। अधिकार चूँकि एक व्यक्ति के संपूर्ण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं, इसलिए प्रत्येक राज्य को अपने नागरिकों को कुछ अधिकार देने ही होंगे। मानवाधिकारों की सार्वजनीन उदघोषणा सभी राज्यों के लिए अधिकारों को अपने नागरिकों हेतु मान्यता प्रदान करने और बनाये रखने के लिए एक प्रेरणा स्त्रोत तथा एक कार्य-सूची की तरह कार्य करती हैं।

लोगों को उपलब्ध मुख्य अधिकारों के सामान्य ढांचे को निम्न रूप में संक्षेपित किया जा सकता हैः

जीवन का अधिकार एक मूलभूत अधिकार है, जिसके बिना अन्य अधिकारों का कोई महत्व नहीं रह जाता है। इस अधिकार का मतलब यह है कि राज्य लोगों के जीवन की रक्षा करने की जिम्मेदारी लेता है, किसी तरह की चोट के विरुद्ध भी संरक्षण, यहां तक कि आत्महत्या को भी एक अपराध माना गया है। समानता के अधिकार के कई पहलू हैंः 'कानून के समक्ष समानता' तथा 'कानून के द्वारा एक समान संरक्षण', किसी भी तरह के भेदभाव का निषेधः सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक, संरक्षण के उद्देश्य से किया गया भेदभाव जो भारतीय संविधान में प्रदान किया गया है समानता के अधिकार का अविभाज्य अंग है। समानता के अधिकार की ही भांति स्वतंत्रता के अधिकार के भी कई पहलू हैंः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समूह बनाने की स्वतंत्रता, संघ बनाने की स्वतंत्रता, घूमने-फिरने की स्वतंत्रता, कहीं भी निवास करने की स्वतंत्रता, कोई भी कार्य करने की स्वतंत्रता, भारतीय समाज में जहाँ एक तरफ नागरिकों को यह अधिकार प्रदान किए गए हैं वहीं दूसरी तरफ उनको प्रयोग करते समय कुछ उचित प्रतिबंध भी प्रदान किए गए हैं। भारतीय संविधान धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार भी देता है। शिक्षा का अधिकार एक दूसरा अत्यंत ही महत्वपूर्ण तथा प्रमुख अधिकार है जिसके बिना एक व्यक्ति अपने चरित्र का संपूर्ण विकास करने में सक्षम नहीं होगा। अशिक्षित व्यक्ति एक अर्थ पूर्ण जीवन जीने में सक्षम नहीं हो सकता है। अशिक्षा एक सामाजिक अभिशाप है जिसको समाज से हटाना ही चाहिए। एक राज्य को शिक्षा का विस्तार करने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए, कुछ आर्थिक अधिकारों में आजीविका के लिए कार्य करने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, मनोरंजन का अधिकार तथा आराम करने का अधिकार शामिल है। कार्य करना तथा आर्थिक सुरक्षा के अधिकार के बिना एक व्यक्ति दूसरे अधिकारों का आनंद नहीं ले पाता है। संपत्ति रखने का अधिकार भी एक आर्थिक अधिकार है जिसका मतलब है किसी संपत्ति को अपने पास हमेशा के लिए रखना, उस पर हक जताना, तथा उसे अपनी आने वाली पीढ़ियों को देना। संपत्ति के अधिकार को एक उदार लोकतन्त्र में एक आवश्यक अधिकार माना गया है। एक व्यक्ति के पास कुछ राजनैतिक अधिकार भी होते हैं, ये वो अधिकार हैं जो एक व्यक्ति को पूर्ण नागरिक बनाते हैं, ऐसे अधिकारों में चुनाव में खड़े होने का अधिकार, राजनीतिक दल बनाने का अधिकार, आदि शामिल हैं।

भारत का संविधान अपने नागरिकों के लिए अधिकारों की एक सूची प्रदान करता है। इनको मूलभूत अधिकार कहा गया है और ये इस तरह से हैंः समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार। अंतिम अधिकार एक बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार है क्योंकि यह अधिकार दूसरे सभी अधिकारों के मिलने का दायित्व लेता है। एक उदार प्रजातांत्रिक प्रणाली में राजनीतिक अधिकारों को सामाजिक अधिकारों के ऊपर तथा सामाजिक अधिकारों को आर्थिक अधिकारों के ऊपर महत्ता दी जाती है, एक समाजवादी समाज में इससे बिल्कुल विपरीत किया जाता है, वहां पर सर्वप्रथम आर्थिक फिर सामाजिक तथा उसके पश्चात राजनीतिक अधिकार आते हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) दावों तथा अधिकारों के बीच का अंतर बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

6.3 अधिकारों के सिद्धांत

उत्पत्ति, अर्थ और प्रकृति की व्याख्या के सन्दर्भ में अधिकारों के अनेकों सिद्धांत हैं । प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत अधिकारों को मनुष्य की प्रकृति में निहित मानता है; विधिक अधिकारों का सिद्धांत अधिकारों की पहचान विधि रूप में करता है; अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धांत अधिकारों की उत्पत्ति रीतियों और परम्पराओं से मानते हैं। सामाजिक-कल्याण सिद्धांत के अनुसार अधिकारों का प्रयोग व्यक्ति और समाज दोनों के हित में किया जाता है। अधिकार अपने विकास-क्रम में इस प्रकार से हमारे सामने आये; जैसे– सम्विदावादियों के साथ नागरिक अधिकार, इतिहासविदों के लिए यह परम्पराओं का प्रतिउत्पाद हैं; न्यायविदों के लिए न्याय विधि द्वारा प्रदत्त हैं, लोकतंत्रवादियों के लिए ये राजनीतिक अधिकार हैं, समाजशास्त्री और बहुलवादी इसे सामाजिक अधिकार के रूप में मानते हैं, समाजवादी और मार्क्सवादी इसे सामाजिक-आर्थिक अधिकार के रूप में देखते हैं, जबकि संयुक्तराष्ट्र के समर्थक इसे मानव-अधिकार के रूप में देखते हैं। इस व्याख्या के माध्यम से हम जान सकते हैं कि अधिकार क्या हैं और ये हम तक कैसे आये हैं।

6.3.1 प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत

प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत का समर्थन मुख्य रूप से थॉमस हॉब्स (लेवियाथन 1651), जॉन लॉक (टू ट्रिटीज ऑन गवर्नमेंट 1690) और जे. जे. रूसो (द सोशल कॉन्ट्रैक्ट 1762) ने किया। इन समझौतावादियों ने सामाजिक-समझौता सिद्धांत के प्रतिपादन के दौरान यह विचार दिया कि प्राकृतिक-अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के पास प्राकृतिक अधिकार थे और ये अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को इंसान होने की वजह से दिए गये थे। इसलिए समझौतावादियों ने यह घोषित किया कि ये अधिकार अविच्छेद्य, अगोचर और अपरिहार्य हैं। प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत की विभिन्न आधारों पर आलोचना की जाती है। अधिकार केवल इस आधार पर प्राकृतिक नहीं हो सकते कि वे प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों को प्राप्त थे। समाज की उत्पत्ति के पूर्व वे कभी भी अधिकार नहीं हो सकते। समाजपूर्व अवस्था में अधिकारों कि उपस्थिति की अवधारणा अपने आप में विरोधाभाषी है। यदि प्राकृतिक-अवस्था में कुछ भी उपस्थित था तो वह था शारीरिक-बल, न कि अधिकार। कुछ प्राधिकारियों के द्वारा अधिकारों की रक्षा के लिए उन्हें पूर्वानुमानित कर लिया गया है। प्राकृतिक-अवस्था में राज्य उपस्थित नहीं था और राज्य की अनुपस्थिति में कैसे कोई व्यक्ति अधिकारों की उपस्थिति की कल्पना कर सकता था। आखिर प्राकृतिक-अवस्था में लोगों के अधिकारों की रक्षा कौन करेगा ? समझौतावादियों के पास इसका कोई जवाब नहीं है। यह अवधारणा कि

प्राकृतिक-अवस्था में अधिकारों की उपस्थिति थी, अधिकारों को समाज के नियंत्रण से बाहर और निरपेक्ष बना देती है। बेन्थम के अनुसार, प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत 'शब्दाडम्बरपूर्ण बकवास' हैं। लास्की ने भी प्राकृतिक अधिकारों के सम्पूर्ण विचार को अस्वीकार कर दिया है। प्राकृतिक अधिकार के रूप में अधिकारों की अवधारणा झूठी मान्यताओं पर आधारित है।

बर्क ने अधिक अर्थपूर्ण बात की ओर इशारा किया है कि हम एक ही समय में अधिकारों के नागरिक और गैरनागरिक स्वरूप का लाभ नहीं ले सकते हैं। तात्विक रूप में प्राकृतिक अधिकार जितने उत्तम हैं, अभ्यास के रूप में इन्हें पहचानना उतना ही कठिन है। अधिकार इस अर्थ में प्राकृतिक हैं कि वे एक ऐसी परिस्थिति हैं जिनमें व्यक्ति को स्वयं को अहसास करने की आवश्यकता होती है। लास्की के द्वारा अधिकारों के महत्व की अनुभूति का पता तब चलता है जब वह कहता है कि 'अधिकार इस अर्थ में प्राकृतिक नहीं हैं कि उन्हें स्थायी और अपरिवर्तनीय सूची में संकलित किया जा सकता है, बल्कि वे इस अर्थ में प्राकृतिक हैं कि नागरिक जीवन की सीमितताओं में तथ्य अपनी मान्यता की मांग करते हैं।

6.3.2 विधिक अधिकारों का सिद्धांत

विधिक अधिकारों का सिद्धांत और अधिकारों का विधिक सिद्धांत दोनों का अर्थ एक ही है। अधिकारों का आदर्शवादी सिद्धांत जो कि अधिकारों को राज्य की उत्पत्ति के रूप में मानता है, कम या अधिक रूप में विधिक अधिकारों के दूसरे रूप में माना जा सकता है। इन सिद्धांतों के समर्थकों में लास्की, बेन्थम, हीगल और ऑस्टिन का नाम लिया जा सकता है। इस सिद्धांत के महत्वपूर्ण लक्षण निम्न हैं:

i) राज्य अधिकार को परिभाषित करता है और अधिकारों पर बिल लेकर आता है। अधिकार न तो राज्य से पूर्व आते हैं और न ही पूर्वकालिक हैं। क्योंकि कि राज्य ही अधिकारों का स्रोत है।

ii) राज्य ही अधिकारों के कानूनी स्वरूप का निर्धारण करता है, अधिकारों की गारंटी देता है और राज्य ही अधिकारों के उपभोग को लागू करता है।

iii) कानून ही अधिकारों का निर्माण करते हैं और उन्हें बनाये रखते हैं, इसलिए जब कानून की सामग्री में परिवर्तन होता है तो अधिकारों के तत्व भी बदल जाते हैं।

हेरोल्ड लास्की (1893-1950, अंग्रेज लेबर पार्टी और एक राजनीतिक सिद्धान्तकार) के पास अधिकारों की व्यवस्था को लेकर एक निर्धारित दृष्टिकोण है जिसकी व्याख्या उन्होंने अपनी पुस्तक 'ए ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स' (प्रथम प्रकाशन 1925 में आया और उसके बाद उसका परिशोधित संस्करण हर वर्ष में दो बार आती रही) में प्रस्तुत है। अधिकारों की प्रकृति के सन्दर्भ में लास्की के विचार निम्नलिखित हैं:

i) अधिकार वे सामाजिक परिस्थितियां हैं जो एक व्यक्ति को समाज के सदस्य के रूप में प्रदान की जाती हैं।

ii) वे व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहयोगी होते हैं। या फिर कहा जा सकता है कि वे सामाजिक परिस्थितियां जिनके बिना कोई भी व्यक्ति अपने सर्वोत्तम स्वरूप को नहीं पा सकता।

iii) वे सामाजिक इसलिए हैं कि वे कभी सामाजिक कल्याण के विरुद्ध नहीं हो सकतीं। समाज की उत्पत्ति के पूर्व इनका कोई अस्तित्व नहीं था।

iv) राज्य इन्हें बनाये रखते हुए, इन्हें पहचान देता है और इनकी रक्षा करता है।

v) अधिकार कभी निरपेक्ष नहीं होते। निरपेक्ष अधिकार विरोधाभाषी शब्द हैं।

vi) ये प्रकृति से परिवर्तनशील हैं, अतः समय, काल और परिस्थिति के अनुरूप उनमें परिवर्तन होता रहता है।

vii) ये कर्तव्यों के सहगामी हैं; असल में कर्त्तव्य अधिकारों से पूर्व आते हैं; अधिकारों के प्रयोग का तात्पर्य है, कर्तव्यों का प्रयोग। यदि लास्की अधिकारों के प्रदाता होते तो वे किसी व्यक्ति को अधिकार इस क्रम में देतेः काम का अधिकार, पर्याप्त मजदूरी का अधिकार, काम के उचित घंटे का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अपने शासक को चुनने का अधिकार और इनके बाद अन्य अधिकार।

लास्की का तर्क यह है कि आर्थिक अधिकारों को पहले दिए बिना कोई व्यक्ति अपने राजनीतिक अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता। आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक समानता निरर्थक है। 'जहाँ घोर असमानता है, वहां व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध दास और स्वामी का है। इसी के सामान महत्वपूर्ण परन्तु इसके निचले क्रम में स्थित है शिक्षा का अधिकार। शिक्षा किसी व्यक्ति को उसके अधिकारों के सदुपयोग करने में सहायता प्रदान करती है। एक बार आर्थिक और सामाजिक (शैक्षिक) अधिकारों से निबटान के बाद इसकी अत्यधिक संभावना हो जाती है कि व्यक्ति अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग ईमानदारी के साथ करेगा। आलोचकों का मत है कि राज्य निश्चित रूप से अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करता है। लेकिन वह अधिकारों का निर्माण नहीं करता, जैसा कि इस सिद्धांत के समर्थक हमारा विश्वास बनाने की कोशिश करते हैं। यदि हम मान भी लेते हैं कि अधिकारों को राज्य ने बनाया है, तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि जिस प्रकार राज्य ने हमें अधिकार दिए हैं, वैसे ही वह हमसे ये अधिकार छीन भी सकता है। निश्चित तौर पर यह विचार राज्य को निरंकुश बना देगा और ऐसी परिस्थिति में हमारे पास सिर्फ वे अधिकार होंगे जो राज्य हमें देना चाहेगा ।

6.3.3 अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धांत

अधिकारों के ऐतिहासिक सिद्धांत को निदेशात्मक सिद्धांत भी कहा जाता है, इस बात को मानकर चलता है कि राज्य एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। इसकी मान्यता है कि अधिकारों की उत्पत्ति रीतियों और परम्पराओं से हुई है। रुढ़िवादी बर्क का मानना है कि लोगों के पास अन्य सभी चीजों से ऊपर एक अधिकार होता है, जिसका प्रयोग वे समय की लम्बी यात्रा के बावजूद अबाध्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। इसलिए माना जाता है कि प्रत्येक अधिकार एक लम्बे परिक्षण की प्रक्रिया पर आधारित होते हैं। रीतियों और परम्पराओं के माध्यम से लम्बे समय तक और लगातार प्रयोग में आने से ये स्थायी हो जाते हैं और अधिकारों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। अठारहवीं शताब्दी में एडमंड बर्क की लेखनी के मध्य से इस सिद्धांत का उद्‌भव हुआ और बाद के काल में इसे समाजशास्त्रियों द्वारा स्वीकार कर लिया गया। ऐतिहासिक सिद्धांत का इस अर्थ में अत्यधिक महत्व है कि यह अधिकारों के विधिक सिद्धांत की आलोचना करता है। ऐतिहासिक सिद्धांत के समर्थकों का तर्क है कि जो लम्बे समय तक प्रयोग में होते हैं राज्य द्वारा उन्हें ही अधिकारों के रूप में मान्यता दे दी जाती है। ऐतिहासिक सिद्धांत की भी अपनी सीमाएं हैं क्योंकि हमारी सभी परम्पराएँ अधिकार का स्वरूप धारण नहीं कर सकतीं । सती-प्रथा और भ्रूणहत्या जैसी रीतियाँ अधिकार का हिस्सा नहीं हो सकतीं। हमारे सभी अधिकारों का उद्‌भव परम्पराओं के रूप में नहीं हुआ है। उदाहरण स्वरूप सामाजिक सुरक्षा का सिद्धांत किसी भी रीति या परंपरा का हिस्सा नहीं रहा है।

6.3.4 अधिकारों का समाज-कल्याण सिद्धांत

समाज-कल्याण सिद्धांत का मानना है कि अधिकार समाज-कल्याण की परिस्थिति होते हैं। इस सिद्धांत का तर्क है कि राज्य को केवल उन्हीं अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए जो समाज-कल्याण को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करते हैं। समाज-कल्याण सिद्धांत के आधुनिक समर्थकों में रोस्को पौण्ड और चाफी का नाम लिया जा सकता है, जबकि बेन्थम को अठारहवीं शताब्दी के समर्थकों में गिना जा सकता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि समाज द्वारा उतने ही अधिकारों का निर्माण किया जाता है जितना कि समाज-कल्याण के अंतर्गत शामिल किया जाता है। अधिकार सामाजिक-हित की परिस्थितियां हैं, अर्थात् ऐसे दावे जो सामान्य-हित से नहीं जुड़े हैं और इस कारण समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं हैं, वे अधिकारों का स्वरूप धारण नहीं कर सकते। समाज-कल्याण सिद्धांत भी दोषमुक्त नहीं है। यह समाज-कल्याण को शामिल करता है जो कि अत्यंत ही अस्पष्ट अवधारणा है। बेन्थमवादी सिद्धांत 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' अलग-अलग लोगों में भिन्नता लिए हुए है। जब अंततः राज्य ही निर्णयकर्ता हो जाता है कि किसे समाज-कल्याण मानना है, तो फिर इसमें और अधिकारों के विधिक सिद्धांत में कोई भिन्नता नहीं रह जाती है। वाइल्ड जैसे आलोचकों का मानना है कि यदि अधिकार सामाजिक-लाभ को ध्यान में रखकर ही बनाये गए हैं, तो एक अक्षम और असहाय व्यक्ति आततायी इच्छा पर निर्भर हो जाएगा।

6.3.5 अधिकारों का मार्क्सवादी सिद्धांत

अधिकारों के मार्क्सवादी सिद्धांत ने इतिहास के विशेष काल को आर्थिक-व्यवस्था के सन्दर्भ में समझा। एक विशेष सामाजिक-आर्थिक संरचना में विशेष प्रकार के अधिकारों की व्यवस्था होती है। राज्य, जोकि समाज के संपन्न लोगों के हाथ का उपकरण है, एक वर्गीय उपकरण है और यह जो कानून बनाता है वह भी वर्गीय हितों से प्रेरित होते हैं। इसलिए सामंती-राज्य सामंती कानूनों, अधिकारों की व्यवस्था की रक्षा (उदाहरण–विशेषाधिकार) के माध्यम से सामंती-व्यवस्था का पक्ष लेता है। इसी तरह पूंजीवादी राज्य पूंजीवादी कानूनी अधिकारों की व्यवस्था की रक्षा के माध्यम से पूंजीवादी व्यवस्था का पक्ष लेता है। मार्क्स के अनुसार जो वर्ग समाज की आर्थिक-संरचना को नियंत्रित करता है वह राजनीतिक-शक्ति पर भी नियंत्रण रखता है, और यह वर्ग इस राजनीतिक शक्ति का प्रयोग सर्व-समाज के हित में करने के बजाय अपने हितों की रक्षा करने और उसे बढ़ाने में करता है। जब पूंजीवादी समाज समाजवादी समाज में परिवर्तित हो जाता है, तो समाजवादी राज्य सर्वहारा कानूनों के माध्यम से मजदूर-वर्ग के अधिकारों/हितों की रक्षा और वृद्धि करता है। समाजवादी समाज, पूंजीवादी समाज की तरह न होकर एक वर्गविहीन समाज होता है। इसका राज्य और कानून किसी वर्ग विशेष के अधिकारों की रक्षा नहीं करता बल्कि वर्गविहीन समाज में रहने वाले सभी लोगों के अधिकारों की रक्षा करता है। मार्क्सवादी कहते हैं कि राज्य जोकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन का उपकरण है, समाजवाद की स्थापना करेगा, जो कि 'सभी से उसकी योग्यता के अनुसार और सभी को उनके कार्य के अनुसार' के सिद्धांत पर आधारित है। सभी के लिए अधिकारों की व्यवस्था इस स्वरूप का अनुपालन करेगीः पहले आर्थिक अधिकार (कार्य, सामाजिक सुरक्षा), उसके बाद सामाजिक अधिकार (शिक्षा) और राजनीतिक अधिकार (मताधिकार)। अधिकारों का मार्क्सवादी सिद्धांत आर्थिक कारकों पर ज्यादा जोर देता है। आर्थिक कारक अकेले समाज को आधार प्रदान नहीं करते हैं और न ही अधिरचना केवल आर्थिक आधार का प्रतिरूप होती है। गैर-आर्थिक शक्तियां भी अधिरचना के निर्माण में निर्धारक भूमिका का निर्वहन करती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अधिकारों की संकल्पना को मार्क्सवादी किस रूप में देखते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 मानवाधिकार

एस. रामफल ने बिलकुल सही कहा है कि मानवाधिकारों का जन्म मनुष्य के लिए नहीं बल्कि मनुष्य के साथ हुआ है। ये संयुक्तराष्ट्र के प्रयासों के उतने अधिक प्रतिफल नहीं हैं जितने कि आधारभूत मानव गौरव के उद्‌भव के। ये मानवाधिकार इसलिए हैं क्योंकि ये मनुष्य को इसलिए प्राप्त हैं क्योंकि वह मनुष्य है। सामान्य तौर पर मानवाधिकार उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किये जाते हैं जो हमारी प्रकृति में अंतर्भूत हैं और जिनके बिना हम मनुष्य के रूप में जीवित नहीं रह सकते। ये आवश्यक हैं क्योंकि ये हमारी मन की शक्ति, प्रतिभा और बुद्धिमत्ता को प्रयोग करने और विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं। जीवन के सन्दर्भ में मानवता की बढती मांग को ये आधार प्रदान करते हैं, जिसके अंतर्गत प्रत्येक मनुष्य में अंतर्भूत गौरव को न सिर्फ सुरक्षा मिलेगी और सम्मान भी प्राप्त होगा।

मानवाधिकार सभी संगठनों के मूल में अवस्थित होते है। वे संयुक्तराष्ट्र के सम्पूर्ण चार्टर में स्थित हैं। संयुक्तराष्ट्र चार्टर के प्रस्तावना में मूल मानवाधिकारों जैसे मानव के गौरव और मूल्य, स्त्री और पुरुष के समान अधिकार तथा छोटे या बड़े सभी राष्ट्रों के प्रति भी समानता का अधिकार आदि के प्रति आस्था का वचन-संकल्प लिया गया है। चार्टर में मानवाधिकारों के सार्वभौमिक विस्तार के सन्दर्भ में कुछ अनुच्छेद हैं यथा– 13, 55, 62, 68 और 76। 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्तराष्ट्र की महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वजनिक उद्‌घोषणा को अनुमोदित किया तथा 10 दिसंबर को मानवाधिकार-दिवस के रूप में मनाया जाता है। मानवाधिकारों की उद्‌घोषणा के अंतर्गत अनुच्छेद 30 हैं जिसके अंतर्गत् अनुच्छेद 3 से 15 तक पारंपरिक अधिकारों की सूची है। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार, मनमानी गिरफ्तारी से मुक्ति, निष्पक्ष जाँच, विधि द्वारा समान संरक्षण, घूमने की आजादी, राष्ट्रीयता और आश्रय मांगने का अधिकार इत्यादि शामिल हैं। कुछ अन्य अधिकार

अनुच्छेद 16 से 21 के बीच शामिल हैं। इसके अंतर्गत् स्त्री-पुरुष के बीच समानता, विवाह करने और परिवार रखने का अधिकार, कुछ मूलभूत आजादी जैसे कि विचार और अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण सम्मलेन करने और संगठन बनाने का अधिकार, अपने देश में सरकार में शामिल होने का अधिकार इत्यादि शामिल हैं। अनुच्छेद 22 से 27 के अंतर्गत आर्थिक अधिकारों का प्रावधान है, जिसमें काम का अधिकार, बेरोजगारी के विरुद्ध प्रदर्शन, न्यायपूर्ण पारिश्रमिक, श्रमिक-संघ बनाने का अधिकार, विश्राम और अवकांश का अधिकार, जीवन के उचित मानक, शिक्षा और देश के सांस्कृतिक जीवन में सहभागिता आदि हैं। अनुच्छेद 28, 29, और 30 सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को सुनिश्चित करता है, जिसके अंतर्गत् समुदाय के प्रति दायित्व एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को मुक्त और सम्पूर्ण विकास को संभव बनाता है और इन अधिकारों की क्रमशः गारंटी देता है। मानवाधिकारों की सार्वजनीन उद्घोषणा असल में मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय-प्रपत्र का प्रथम भाग है। इसके पश्चात् आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर प्रतिज्ञापत्र एवं वैकल्पिक मसविदे आते हैं– इन सभी को 1966 में स्वीकार किया गया।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) अधिकारों की संकल्पना पर लास्की के क्या विचार हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मानवाधिकारों पर संयुक्तराष्ट्र की उद्घोषणा में शामिल विभिन्न अधिकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 सारांश

अधिकार एक मानव के व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक सामाजिक दावे हैं । ये व्यक्तियों से सम्बंधित हैं, जो व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास में मद्द करते हैं। ये सामाजिक हैं जो समाज द्वारा प्रदत्त और राज्य द्वारा सुरक्षित हैं। यहाँ तक कि राज्य भी इन्हें व्यक्ति से दूर नहीं कर सकते। ये किसी भी समाज के विकास के एक विशेष स्तर को प्रदर्षित करते हैं। समाज के परिवर्तन के अनुरूप अधिकारों के चरित्र और तत्व में परिवर्तन होता रहता है। अधिकारों से सम्बंधित सिद्धांत इनके अर्थ, उद्भव और प्रकृति के आंशिक उपचार को प्रदर्षित करते हैं। प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत वहीं तक सही हैं जहाँ तक ये इस

बात पर जोर देते हैं कि अधिकार प्राकृतिक हैं, क्योंकि ये सामाजिक दावों की प्रकृति के रूप में हैं। इसी प्रकार विधिक अधिकारों के सिद्धांत वही तक सही बोलते हैं, जहाँ तक राज्य हमें अधिकारों की गारंटी देता है। अधिकारों के विभिन्न प्रकार हैं। वे अधिकार जो मानव को उपलब्ध हैं, उनमें शामिल हैं– जीवन, समानता, व्यक्ति और संपत्ति की सुरक्षा, स्वतंत्रता, शिक्षा, कार्य धार्मिक आजादी, मतदान और सार्वजानिक कार्यालयों में पद धारण करने का अधिकार । उदारवादी-लोकतान्त्रिक समाजों में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की अपेक्षा व्यक्तिगत और राजनीतिक अधिकारों पर अधिक जोर दिया जाता है। समाजवादी समाजों में अधिकारों को इसके उलट व्यवस्थापन का समर्थन किया जाता है। मानवाधिकारों की सार्वजनीन उद्घोषणा एक मनुष्य को मनुष्य के रूप में मानवाधिकारों की एक सूची उपलब्ध कराती है।

6.6 सन्दर्भ

बेलामी, रिचर्ड और मेसन, एंड्रू (2003). *पॉलिटिकल कॉन्सेप्ट्स*, मेनचेस्टरः मेनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस.

भार्गव, राजीव और अशोक आचार्य. (2008). *राजनीतिक सिद्धांतः एक परिचय.* नोएडा, पिअरसन.

लास्की, एच. (1925). *ए ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स.* ओक्सोन, रूटलेज.

स्क्रूटन, रॉजर. (2007). *द पल्ग्रेव मैकमिलन डिक्सनरी ऑफ पॉलिटिकल थॉट.* हैम्पशायरः पल्ग्रेव मैकमिलन.

विनोद, एम जे और एम देशपांडे. (2013). *कन्टेमपररी पॉलिटिकल थ्योरी.* नई दिल्लीः पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको उत्तर में यह व्याख्यायित करना है कि सभी दावे अधिकार नहीं होते।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर का जोर इस बात पर होना चाहिए कि वे सभी अधिकार जो मनुष्य में अन्तर्निहित हैं प्राकृतिक अधिकार होते हैं।

2) इस बात को स्पष्ट करना कि अधिकार एक वर्गीय संकल्पना है और राजनीतिक अधिकारों पर सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) आपका उत्तर लास्की के *ए ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स* में दिए क्रम और विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिए।

2) संयुक्तराष्ट्र की उदघोषणा को देखें।

खंड 3
अवधारणाएँ

खंड 3 अवधारणाएँ

खंड 3 में चार इकाइयाँ इस प्रकार है– लोकतंत्र, जेडर, नागकिता और नागरिक समाज। **इकाई 7**, लोकतंत्र के विचार एवं इसके विभिन्न प्रकारों जैसे कि शास्त्रीय, कुलीनवादी, लोकप्रिय तथा ई-लोकतंत्र के बारे में सामान्य समझ देती है। **इकाई 8**, पितृसत्ता एवं उसके सिद्धांतों, जेंडर मुख्यधारा तथा जेंडर और राजनीति के बीच संबंधों जैसी विषय-वस्तुओं के माध्यम् से जेंडर की अवधारणा पर चर्चा करती है। **इकाई 9**, नागरिकता, इसका एक अवधारणा के रूप में विकास, विभिन्न सिद्धांतों जैसे उदारवाद, गणतंत्रवाद, नारीवाद आदि एवं वैश्विक नागरिकता के विचारों पर प्रकाश डालती है। **इकाई 10**, नागरिक समाज एवं राज्य की संकल्पना तथा साथ ही उनके संबंधों के बारे में भी वर्णन करती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 लोकतंत्र*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय : लोकतंत्र का अर्थ

7.2 प्रक्रियात्मक/न्यूनवादी और वास्तविक लोकतंत्र/अधिकतावादी आयाम

7.3 लोकतंत्र के प्रकार

- 7.3.1 शास्त्रीय लोकतंत्र
- 7.3.2 कुलीनवादी सिद्धांत
- 7.3.3 बहुलवादी सिद्धांत
- 7.3.4 सहभागी लोकतंत्र
- 7.3.5 विमर्शी लोकतंत्र
- 7.3.6 जनवादी लोकतंत्र लोकतंत्र
- 7.3.7 समाजवादी लोकतंत्र
- 7.3.8 ई-लोकतंत्र

7.4 भारतीय लोकतंत्र पर एक नजर

7.5 सारांश

7.6 सन्दर्भ

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आप शासन की एक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र के सन्दर्भ में समझ विकसित करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप इस योग्य होंगे कि :

- लोकतंत्र के अर्थ और विकास को स्पष्ट कर सकें;
- लोकतंत्र के विभिन्न प्रकारों को समझ सकें;
- भारतीय लोकतंत्र की विशेषताओं को समझ सकें; तथा
- भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियों को जान सकेंगे।

7.1 परिचय : लोकतंत्र का अर्थ

लोकतंत्र का उदय यूनान में हुआ, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि 500 ई.पू. के आस-पास यूनान में पहली लोकतान्त्रिक सरकार बनी थी। 'डेमोक्रेसी' शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'डेमोक्राटिया' (Demokratia) से हुआ है। जो कि दो यूनानी शब्दों 'demos' अर्थात् 'लोग' और 'kratos' अर्थात् 'शक्ति' से मिलकर बना है। इस प्रकार लोकतंत्र का मतलब 'लोगों के द्वारा शासन' होता है जो कि सरकार को सच्चे अर्थों में वैद्यानिकता प्रदान करता है। इसी कारण हम आज लोकतंत्र के विभिन्न स्वरूप देखते हैं यथा–उत्तर कोरिया में अधिनायकवादी लोकतंत्र, पाकिस्तान और तुर्की में इस्लामिक लोकतंत्र, अमेरिका में अध्यक्षीय लोकतंत्र और भारत में संसदात्मक लोकतंत्र। लोकतंत्र से जुड़े हुए दो मुद्दे

*डॉ. राज कुमार शर्मा, अकादमिक एसोसिएट, राजनीति विज्ञान विभाग, इग्नू

स्वतंत्रता और समानता में एक अन्तर्निहित तनाव देखने को मिलता है जिससे सभी प्रकार के लोकतंत्रों को जूझना पड़ता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रसारित करने पर समानता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार समानता को प्रसारित करने पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को हानि पहुंचती है। एक अन्य मुद्दा अल्पसंख्यक हितों का है, जैसा कि मान्यता है कि लोकतंत्र अल्पसंख्यक हितों से समझौता करके बहुसंख्यक हितों पर आधारित शासन प्रणाली है यह प्रवृति वहाँ कम देखने को मिलेगी जहाँ पर लोकतंत्र के अंतर्गत मतदाता अधिक परिपक्व और शिक्षित हैं। स्वतंत्र मीडिया भी इसमें मदद कर सकता है, क्योंकि इसके माध्यम से बिना किसी का पक्ष लिए स्वतंत्र और संतुलित लिया जा सकता है। एक जानकार और जागरूक मतदाता और स्वतंत्र मीडिया सरकार के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करते हैं; जो कि लोकतंत्र का मूल तत्व है।

इसके बावजूद, अनेक ऐसे कारण हैं कि अन्य प्रकार की शासन-प्रणालियों की अपेक्षा लोकतंत्र को बेहतर माना जाता है। मिल ने अपनी पुस्तक *'कंसीडरेशन ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट'* 1861 में लोकतान्त्रिक निर्णय-निर्माण के तीन लाभ बताये हैं। पहला, रणनीतिक तौर पर लोकतंत्र नीति-निर्माताओं को बाध्य करता है कि वे लोगों के अधिकारों, मतों और हितों के प्रति उत्तरदायी बने रहें, जैसा कि कुलीनतंत्र या अधिकनायतंत्र में नहीं होता है। दूसरा, ज्ञानमीमांसा के तौर पर लोकतंत्र में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों कि उपस्थिति होती है, जिससे नीति-निर्माताओं को उनमें से सर्वोत्तम को चुनने का मौका मिलता है। तीसरा, लोकतंत्र तार्किकता, स्वायतता और स्वतंत्रता जैसे विचारों को समाहित कर नागरिकों के चरित्र निर्माण में सहयोग प्रदान करता है। यह लोकमत का दबाव बनाता है और राजनेताओं द्वारा सत्ता में बने रहने के लिए इसे नजरअंदाज करना संभव नहीं हो पाता। इस सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने लोकतंत्र और अकाल के बीच सम्बन्ध को प्रस्तुत किया है, उनका तर्क है कि एक कार्यरत लोकतंत्र में कभी अकाल नहीं आया है। क्योंकि लोकतंत्र में नेता लोगों के प्रति उत्तरदायी होते हैं और वे लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को अनदेखा नहीं कर सकते। आधुनिक लोकतंत्र का जन्म ब्रिटेन और फ्रांस में हुआ और वहीं से अन्य देशों में इसका प्रसार हुआ। लोकतंत्र के विस्तार में अनेक कारण उत्तरदायी हैं – भ्रष्टाचार और अक्षमता, शक्तियों का दुरूपयोग, उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति और दैवीय शक्तियों की संकल्पना पर आधारित राजाओं का अन्यायपूर्ण शासन।

व्यापक सन्दर्भ में, लोकतंत्र राज्य और सरकार की एक शासन-प्रणाली ही नहीं समाज की एक अवस्था भी है। एक लोकतान्त्रिक समाज वह है जहाँ सामाजिक और आर्थिक समानता देखने को मिलती है, जबकि एक लोकतान्त्रिक राज्य वह है जिसमें नागरिकों को सुलभ और न्यायपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो। लोकतंत्र के अर्थ को समझने के लिए कुछ शब्द बार-बार प्रयोग किये जाते हैं, जो निम्न हैं :

- गरीब और हीनतम लोगों के द्वारा शासन।
- समान अवसर पर आधारित समाज और श्रेणी तथा विशेषाधिकार के स्थान पर व्यक्तिगत गुणों पर आधारित समाज।
- सामाजिक असमानता को कम करने हेतु कल्याणकार्य और पुनर्वितरण।
- बहुमत के शासन पर आधारित निर्णय-निर्माण।
- बहुमत के शासन कि बाधाओं को हटाते हुए अल्पसंख्यक-अधिकारों की रक्षा।
- लोकप्रिय मतदान हेतु सार्वजनिक-कार्यालयों को मतदान के माध्यम से भरा जाना।

व्यापक सन्दर्भ में, लोकतंत्र के अतर्गत बहुत सी विशेषताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। लिखित संविधान, विधि का शासन, मानव अधिकार, स्वतंत्र पत्रकारिता और न्यायालय कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का विभाजन इत्यादि को लोकतंत्र के आधारभूत लक्षणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अपने प्रारंभिक स्वरूप में लोकतंत्र का विचार यूनान से आया, जो कि समावेशी स्वरूप में नहीं था। लोकतंत्र का यूनानी मॉडल महिलाओं, दासों और प्रवासियों को समाहित नहीं करता, इस अर्थ में यह खुद को अलोकतांत्रिक बना देता है। आधुनिक लोकतन्त्रों में भी इस तरह के तत्व विद्यमान रहे हैं, जैसे कि फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि में भी कुछ वर्ग को मतदान से वंचित रखा गया था, जबकि मताधिकार सम्पत्तिशाली लोगों को दिया गया था। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में लोकप्रिय संप्रभुता के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की बात की गयी। यद्यपि उस समय महिलाओं को मतदान का अधिकार नहीं मिला और फ्रांस में 1944 में जाकर सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू किया गया। ब्रिटेन में महिलाओं को मतदान का अधिकार 1928 में मिला, जबकि अमेरिका में 1920 में। इसके बावजूद अमेरिका में रंगों के आधार पर भेदभाव विद्यमान रहा और 1965 में जाकर अफ्रीकी-अमेरिकी पुरुषों और महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इस सन्दर्भ में पश्चिमी लोकतन्त्रों से तुलना किया जाए तो भारत अधिक प्रगतिशील रहा है क्योंकि भारत में सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार 1950 अर्थात् संविधान लागू होने की तिथि से ही प्रभाव में है। इस प्रकार भारत दुनिया में शायद पहला ऐसा लोकतान्त्रिक देश है जहाँ संविधान लागू होने की प्रारंभिक तिथि से ही सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू है। सऊदी अरब महिलाओं को मताधिकार देने वाला नवीनतम देश है, जहाँ 2015 के नगर-पंचायत के चुनावों में प्रथम बार महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया।

मोटे तौर पर, लोगों के मताधिकार के शासन करने के आधार पर लोकतंत्र को प्रत्यक्ष और प्रतिनिधि लोकतंत्र के रूप में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र शासन में प्रत्यक्ष और अमध्यवर्ती नागरिक सहभागिता पर आधारित होता है सभी व्यस्क नागरिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया में यह सुनिश्चित करने के लिए भाग लेते हैं कि सभी दृष्टिकोणों पर चर्चा हो चुकी है और सर्वोत्तर संभव निर्णय लिया गया है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र शासक और शासित तथा राज्य और नागरिक समाज के बीच के अंतर को मिटा देता है। प्राचीन यूनानी नगर राज्य का स्वरूप प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक उदाहरण है। समकालीन समय में प्रत्यक्ष लोकतंत्र स्विसकैंटन में पाया जा सकता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र अधिक वैद्यता सुनिश्चित करता है क्योंकि लोग ऐसे निर्णयों का पालन करना अधिक पसंद करते हैं जो उन्हीं के द्वारा लिया गया है। आधुनिक राज्य की बड़ी जनसंख्या व भौगोलिक स्थिति की वजह से प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संकल्पना कठिन हो जाती है। इस समस्या के समाधान के रूप में प्रतिनिधि लोकतंत्र का विकास हुआ, जो कि सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में उत्तरी यूरोप में प्रयोग में आया। प्रतिनिधि लोकतंत्र, लोकतंत्र का एक सीमित और अप्रत्यक्ष स्वरूप है। यह सीमित है क्योंकि मतदान के माध्यम से नीति निर्माण में लोकप्रिय सहभागिता अत्यंत कम होती है, जबकि यह अप्रत्यक्ष इसलिए है कि लोग अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से नहीं करते बल्कि अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से करते हैं। दुनिया में अध्यक्षात्मक और संसदात्मक लोकतंत्र के रूप में दो मुख्य प्रकार के प्रतिनिधि लोकतंत्र पाए जाते हैं। अध्यक्षात्मक लोकतंत्र की अपेक्षा संसदात्मक लोकतंत्र अधिक प्रतिनिधित्यात्मक होता है, लेकिन साथ ही कम स्थिर होता है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं? शासन की अन्य पद्धतियों की अपेक्षा लोकतंत्र की क्या विशेषताएं हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रतिनिधि लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.2 प्रक्रियात्मक/न्यूनतम और वास्तविक/अधिकतम आयाम

लोकतंत्र को दो भिन्न आयामों से ठीक तरीके से समझा जा सकता है– प्रक्रियात्मक (न्यूनवादी) और वास्तविक (अधिकतावादी)। प्रक्रियात्मक आयाम अपना ध्यान केवल लोकतंत्र प्राप्ति की प्रक्रिया अथवा साधनों पर केन्द्रित करता है। इसका तर्क है कि सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित नियमित प्रतिस्पर्धी चुनाव और बहुत राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से लोकतान्त्रिक रूप से चयनित सरकार बनती है। जोसफ स्चुम्पेटर ने 1942 में अपनी पुस्तक *'कैपिटलिज्म, सोशलिज्म और डेमोक्रेसी'* में कहा है कि लोकतंत्र राजनीतिक निर्णयों तक पहुँचने का एक संस्थात्मक व्यवस्थापन है जिसमें व्यक्ति प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष के माध्यम से लोगों के मत प्राप्त कर निर्णय करने की शक्ति प्राप्त करता है। हंटिगटन ने भी इसी तरह के विचारों को प्रतिबिंबित किया है, ''लोकतंत्र की केंद्रीय प्रक्रिया उन लोगों द्वारा प्रतिस्पर्धी चुनाव के माध्यम से नेताओं का चयन है, जो शासित होते हैं।'' हालांकि, न्यूनवादी विचार में चुनावी भागीदारी के अलावा लोगों को निष्क्रिय माना जाता है और इस प्रकार से वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासित होते हैं। इस दृष्टिकोण का जोर इस बात पर है कि कैसे एक लोकतांत्रिक सरकार का चुनाव करें, नाकि स्वतंत्रता और आजादी पर । व्यवस्था में 'नियंत्रण और संतुलन' के अभाव में निर्वाचित नेता अपने लाभ के लिए प्रक्रियाओं और शक्तियों में हेर-फेर कर अधिनायकवादी बन सकते हैं। एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में ऐसी सरकार जो लोगों की शक्ति अपने पास रखती है जो आधारभूत अधिकार अपने पास रखती है, वह कुलीन लोगों के लिए कार्य कर सकती है। इस तरह की घटनाओं का अस्तित्व 1980 और 1990 के बीच अर्जेंटीना और ब्राजील में देखने को मिला। यद्यपि वहाँ समय-समय पर चुनाव होते रहते हैं परन्तु शक्तियों के एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होने के कारण मध्य एशियाई देशों की सरकारों को भी प्रक्रियात्मक लोकतन्त्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। टेरी कार्ल का कहना है कि एक ऐसी परिस्थिति जहाँ चुनावी प्रक्रिया को

लोकतंत्र के अन्य आयामों से प्राथमिकता दी जाती हो, न्यूनवादी दृष्टिकोण 'चुनाववाद में दोष' का कारण हो सकता है। फरीद जकारिया इसे 'अनुदारवादी लोकतंत्र' कहते हैं क्योंकि ऐसे मामलों में सरकारें लोकतान्त्रिक पद्धति से निर्वाचित होती हैं लेकिन संविधान में वर्णित उनकी शक्तियों की सीमाओं का नजरअंदाज करते हैं और अपने नागरिकों के मूलभूत अधिकारों और स्वतंत्रताओं से वंचित रखते हैं।

वास्तविक लोकतंत्र प्रक्रियात्मक लोकतंत्र की कमी को दूर करने का प्रयास करता है, इसका मानना है कि सामाजिक ओर आर्थिक असमानता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में जनसहभागिता में बाधा हो सकती है। शासन करने के बजाय, वास्तविक अर्थों में यह अपना ध्यान सामाजिक समानता जैसे परिणामों पर केन्द्रित करता है। एक अर्थ में, यह सीमित लोगों के हित के बजाय सामान्य-हित की बात करता है। पुनर्वितरणात्मक न्याय के माध्यम से वांछित वर्ग यथा-महिलाओं और गरीबों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है और ऐसी परिस्थिति का निर्माण राज्य द्वारा हस्तक्षेप के माध्यम से ऐसे वर्गों की राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करके की जा सकती है। विभिन्न राजनीतिक विज्ञानी यथा जॉन लॉक, जीन जैक्स रूसो, इमैनुअल कांट, जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस दृष्टिकोण के विकास में अपना योगदान दिया है। स्कम्पेटर का विश्वास है कि लोकतंत्र की ऐसी संकल्पना जो समानता के महत्वकांक्षी स्वरूप को अपना लक्ष्य मानती है खतरनाक है। इसके विपरित रूसो का तर्क है कि लोकतंत्र का औपचारिक प्रकार दास-प्रथा के समान है और केवल समतावादी लोकतंत्र ही राजनीतिक वैधता को प्राप्त है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) प्रक्रियात्मक लोकतंत्र और वास्तविक लोकतंत्र में अंतर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 लोकतंत्र के प्रकार

7.3.1 शास्त्रीय लोकतंत्र

शास्त्रीय लोकतंत्र का आधार प्राचीन यूनानी नगर-राज्यों में विकसित एक ऐसी शासन प्रणाली से था जो कि सम से बड़े और शक्तिशाली नगर-राज्यों में जनसमूहों की बैठक पर आधारित था। इस स्वरूप का महत्वपूर्ण स्वरूप यह था कि लोग राजनीतिक रूप से अत्यधिक सक्रिय थे। सभा की बैठकों के अतिरिक्त नागरिक निर्णय-निर्माण और सार्वजनिक कार्यालयों में अपना योगदान देते थे। हालाँकि इसमें महिलाओं, दासों और प्रवासियों को नागरिकता से वंचित रखा गया था। दासों और महिलाओं के काम करने की वजह से एथेंसवासी पुरुषों को राजनीतिक मामलों में भाग लेने का मौका मिलता था। इस वजह से यह दूर्भाग्यपूर्ण और अलोकतांत्रिक था कि उन्हें नागरिकता से बाहर रखा गया। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'द रिपब्लिक' में एथेंस के लोकतंत्र की यह कहकर आलोचना की कि लोग

स्वयं पर शासन करने के लिए बौद्धिक रूप से योग्य नहीं थे, उन्हें दार्शनिक राजा और अभिभावकों से शासित होने की आवश्यकता है क्योंकि यही उनके अनुकूल है।

7.3.2 कुलीनवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन विल्फ्रेडो पैरेटो, जी. मोस्का, रॉवर्ट मिशेल्स और जोसेफ शुम्पीटर ने किया था। इस सिद्धांत का विकास समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में हुआ था लेकिन इसका महत्वपूर्ण निहितार्थ राजनीति शास्त्र के साथ भी है। मिशेल्स ने 'अल्पतंत्र का लौह नियम' दिया, जिसके अंतर्गत उन्होंने तर्क दिया कि अपने वास्तविक लक्ष्य से इतर प्रत्येक संगठन अल्पतंत्र के रूप में सीमित होकर 'कुछ लोगों के शासन' के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मोस्का का कहना है कि लोगों को दो श्रेणियों शासक और शासित के रूप में विभाजित किया जा सकता है। चाहे कोई भी शासन-प्रणाली हो अधिकांश शक्ति, प्रतिष्ठा असैर सपंत्ति शासक वर्ग के हाथों में होती है। शासक के पास यदि नेतृत्व का गुण नहीं होता है तो वह कुलीनों का अनुसरण करने लगता है। यह सिद्धांत लोकतंत्र के समक्ष एक गंभीर प्रश्न खड़ा करता है और यह सलाह देता है कि यदि कुलीन शक्ति और संपत्ति और निर्णय-निर्माण का नियंत्रण करेंगे तो लोकतंत्र व्यवहारिक धरातल पर नहीं आ सकता।

7.3.3 बहुलवादी सिद्धांत

कुलीन सिद्धांत के विपरीत बहुलवादी विश्वास करते हैं कि नीति-निर्माण एक विकेद्रीकृत प्रक्रिया है, जहाँ विभिन्न समूह अपने विचारों को स्वीकृति दिलाने के लिए मोल-तोल करते हैं। यह विभिन्न समूहों के बीच आपसी बातचीत का परिणाम होता है ना कि कुछ कुलीनों के। इस सिद्धांत के प्रतिपादकों में कार्ल मैंनहाईम, रेमंड आरों, रॉबर्ट, डह्ल, चार्ल्स लिंडब्लोम हैं। डह्ल और लिंडब्लोम ने 'बहुतंत्र' की संकल्पना दी, जिसका मतलब था सभी नागरिकों के शासन के बजाए बहुत से लोगों का शासन। संक्षेप में, वे कहते हैं कि यद्यपि राजनीतिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और आर्थिक रूप से शक्तिशाली वर्ग सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक प्रभाव रखते हैं, फिर भी कोई भी संभ्रांत व्यक्ति राजनीतिक-प्रक्रिया में सदैव हावी रहने योग्य नहीं होता है।

7.3.4 सहभागी लोकतंत्र

इस सन्दर्भ में सभी लोकतंत्र सहभागी होते हैं कि वे लोकप्रिय सहमति पर आधारित होते हैं, जोकि इसके सहभागी प्रकृति को सुनिश्चित करता है। हालाँकि लोकतंत्र में यह संभावना रहती है कि लोगों की भूमिका मतदान तक ही समिति रह जाए। ऐसे जटिल लोकतंत्रों में निर्वाचित प्रतिनिधि और नागरिकों की बीच दूरी बढ़ जाती है जहाँ लोग जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्र आदि आधारों पर विभाजित होते हैं। कुलीनतंत्रीय और बहुलवादी सिद्धांत के विपरीत सहभागी लोकतंत्र सामान्य-हित को प्रोत्साहित करने के लिए नीति-निर्माण में नागरिकों की सहभागिता का समर्थन करता है, साथ ही यह सरकार की नागरितों के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाता है। रूसो, जे.एस.मिल और सी.बी.मैकफर्सन ने सहभादी लोकतंत्र के विचार को समर्थन दिया। रूसो का कहना है कि लोकप्रिय संप्रभूता लोगों के हाथों में स्थित सर्वाधिक, महत्वपूर्ण शक्ति है, जोकि उनका अहस्तान्तरणीय अधिकार है और सभी नागरिकों को राज्य के मामले में शामिल होना चाहिए। मिल का कहना है कि जो सरकार अपने नागरिकों के नैतिक, बौद्धिक और सक्रिय गुणों को प्रोत्साहित करे, वह सबसे अच्छी सरकार होती है।

7.3.5 विमर्शी लोकतंत्र

विमर्शी लोकतंत्र का तर्क है कि राजनीतिक-निर्णय नागरिकों के बीच न्यायपूर्ण और तर्कसंगत विमर्श के माध्यम से होना चाहिए। सर्वहित की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम की प्राप्ति हो सके। जॉन राल्स और जे. हैबरमास ने विमर्शी लोकतंत्र के पक्ष में तर्क दिया है। राल्स का मत है कि एक न्यायपूर्ण राजनीतिक समाज की प्राप्ति के लिए विवेक के माध्यम से हम स्वार्थ पर नियंत्रण पा सकते हैं। हैबरमास का मत है कि न्यायपूर्ण प्रक्रिया और स्पष्ट संचार के माध्यम से निर्णयों पर सहमति बनाई जा सकती है तथा वैद्यता प्राप्त किया जा सकता है।

7.3.6 जनवादी लोकतंत्र

जनवादी लोकतंत्र का आशय लोकतंत्र के उस मॉडल से है जिसका निर्माण साम्यवादी परंपरा के अंतर्गत किया गया है। मार्क्सवादियों की अभिरुचि सामाजिक समानता में रही है इस कारण लोकतंत्र का उनका अपना मॉडल है जोकि पश्चिमी मॉडल के विरुद्ध है; क्योंकि पश्चिमी मॉडल के अंतर्गत राजनीतिक समानता स्थापित करने की बात की जाती है। जनवादी लोकतंत्र की स्थापना सर्वहारा-क्रांति के बाद हुई जब सर्वहारा-वर्ग ने राजनीतिक-निर्णयों में अपनी भूमिका निभाना शुरू कर दिया। कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा के शासन की बात की, वहीं लेनिन ने इस अवधारणा को बदलते हुए सर्वहारा के अगुआ के रूप में एक दल की भूमिका से अवगत कराया। हालाँकि लेनिन ने ऐसे किसी तंत्र की स्थापना नहीं की जो कि दल की शक्ति का परिक्षण करता रहे और यह सुनिश्चित करे कि शक्तिशाली नेता सर्वहारा के प्रति जवाबदेह बने रहेंगे। ऐसे में, अंततः जनवादी लोकतंत्र के माध्यम से साम्यवाद को आत्मनियंत्रण का रास्ता मिला है।

7.3.7 समाजवादी लोकतंत्र

समाजवादी लोकतंत्र मार्क्सवादी चिंतन में आधारतभूत परिवर्तन की बात करता है। यद्यपि दोनों के लक्ष्यों में समानता है, परन्तु समाजवादी लोकतंत्र क्रांति के बजाय उत्पादन के साधनों पर राज्य के नियंत्रण के माध्यम से इसे प्राप्त करना चाहते हैं। समाजवादी लोकतंत्रवादी लोकतंत्र की इस मार्क्सवादी समालोचना में विश्वास नहीं रखते क्योंकि इसमें वर्गीय-शासन के लिए बुर्जुआ ताकतें मुखौटा पहने रखती हैं। इसके बजाए समाजवादी लोकतंत्रवादी लोकतंत्र को समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। इस कारण वे नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए व्यापार और उद्योग में राज्य के नियंत्रण की बात करते हैं।

7.3.8 ई-लोकतंत्र

यह तुलनात्मक रूप से नयी संकल्पना है, लेकिन यह पूर्व के सिद्धान्तकारों द्वारा किये गये कार्यों पर ही आधारित है। प्रतिनिधि लोकतंत्र को और अधिक बेहतर बनाने या इसे प्रतिस्थापित करने के लिए सूचना और प्रौद्योगिकी को प्रयोग ही इलेक्ट्रानिक लोकतंत्र या ई-लोकतंत्र कहलाता है। सभी लोकतंत्रों में उभयनिष्ठ समस्याएँ यथा–मापन का मुद्दा, समय का अभाव? सामुदायिक मूल्यों में गिरावट, नीतियों पर विमर्श के लिए अवसरों का अभाव आदि को डिजिटल संचार के माध्यम से ही निबटा जा सकता है। ई. लोकतंत्र के समर्थकों ने नीति-निर्माण में सक्रिय नागरिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सहभागी-लोकतंत्र के विचार का निर्माण किया है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जनवादी लोकतंत्र की कमियां क्या-क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) ई-लोकतंत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 भारतीय लोकतंत्र पर एक नजर

भारत जो कि 1947 ई. में ब्रिटिश शासन से आजाद हुआ, 80 करोड़ से ज्यादा मतदाताओं के साथ भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता है। भारत, ब्रिटिश, द्वारा थोपे गये संविधान को नहीं मानना चाहता था, इस कारण संविधान निर्माण के लिए अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए लोगों द्वारा संविधान सभा का निर्माण किया गया। यद्यपि यह बात उल्लेखनीय है कि एक ऐसी संविधान सभा जो लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं चुनी गयी थी, उसने सार्वजनीन व्यक्त मताधिकार की संकल्पना को स्वीकार किया। संविधान सभा में चर्चा के द्वौरान जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, भीमराव अम्बेडकर और एन वी गाडगिल ने भारत के लिए लोकतंत्रीय शासन-प्रणाली को अपनाने की बात की, क्योंकि उनका मानना था कि भारत ब्रिटिश काल से ही इस व्यवस्था से परिचित था। जबकि आर एन सिंह, लोकनाथ मिश्र और ब्रजेश्वर प्रसाद जैसे लोगों ने संसदीय व्यवस्था का विरोध किया। आर.एन.सिंह ने कहा था कि ईमानदार मंत्रियों, उपमंत्रियों और संसदीय सचिवों की फौज का मिलना मुश्किल है। उन्होंने तर्क दिया कि अध्यक्षीय शासन प्रणाली के अंतर्गत एक ईमानदार राष्ट्रपति को पाना तुलनात्मक रूप से आसान है। भारत के पूर्व के अनुभव को आधार मानते हुए संविधान सभा ने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया। कुछ विद्वानों का मानना है कि लोकतंत्र पश्चिमी संकल्पना थी और इसे भारत के लोगों पर थोपा गया जबकि भारतीयों के पास इसका कोई अनुभव नहीं था। फिर भी आधुनिक राजनीति में जिस राज्य के स्वरूप की शुरुआत 19वीं सदी के मध्य में भारत में हुई थी, उसने सार्वजानिक मुद्दों पर लोगों को एकत्रित करने और राज्य के समक्ष अपनी मांगों को रखने की शुरुआत की। पूना सार्वजनिक सभा जैसे संगठन का निर्माण मध्य वर्ग और पारंपरिक कुलीनों ने किया , जिसने भारत में लोकतंत्र की नींव रखी गयी। ब्रिटिश काल में लोकतंत्र का निर्माण केंद्रीय और प्रांतीय विधायी परिषदों के विकास के माध्यम से हुआ। आजादी के पश्चात् सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित सामयिक चुनाव ने भारतीय राजनीति में लोकतान्त्रिक संस्थाओं की

जड़ों को जमाया। भारत में राजनीतिक दलों की सामाजिक संरचना बदल रही है जिसकी वजह से विधान सभाओं, संसद तथा मंत्रालय भी पहले की तुलना में ज्यादा प्रतिनिधित्यात्मक हो गए हैं। भारत में लोकतंत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :

- भारतीय संविधान का प्रस्तावना भारत को एक 'संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य' के रूप में वर्णित करता है। भारत एक संसदीय लोकतंत्र है जो 'एक व्यक्ति–एक वोट' की संकल्पना पर आधारित है।
- संसद और राज्यों की विधान सभाओं में होने वाले स्वतंत्र और निष्पक्ष सामयिक चुनाव सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित हैं।
- विधि का शासन यह सुनिश्चित करता है कि भारत का लिखित संविधान सर्वोच्च है, जिसकी व्याख्या और रक्षा करने का अधिकार स्वतंत्र न्यायपालिका को है।
- कार्यपालिका, विधायिक और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण पाया जाता है।
- भारत का संविधान अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है – समानता का अधिकार (अनु. 14-18), स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 19-22), शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनु. 23-24) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 25-28), शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार (अनु. 29-30), संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु. 32)।
- भारत में बहुदलीय प्रणाली का अस्तित्व है जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पार्टियाँ राजनीति में समान रूप से जगह बनाने के लिए प्रयासरत हैं, जिस कारण से लोकतंत्र गतिशील और जीवंत बना हुआ है। सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता सदन में नेता प्रतिपक्ष की भूमिका निभाता हैं, लेकिन भारतीय संविधान के अनुसार इसके लिए उस दल को सदन की कुल सीटों की संख्या का न्यूनतम दस प्रतिशत सीट लाना अनिवार्य होता है।
- भारत में मीडिया राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त है, जो कि सरकार द्वारा क्रियान्वित नीतियों को लेकर जनमत बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बहुत सी ऐसी उपलब्धियां हैं जिनके लिए भारत में लोकतंत्र को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि भारतीय लोकतान्त्रिक अनुभव ने उनके संशयों को गलत सिद्ध किया है जो यह कहते हैं कि भारत में जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति और क्षेत्र के सन्दर्भ विविधता के कारण यहाँ लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता। पड़ोसियों से भिन्न, भारत में लोकतंत्र अच्छे से कार्य कर रहा है, जो कि भारत की लोकतान्त्रिक संस्थाओं और अभ्यासों के लचीलेपन को दर्शाता है। भारत अपनी साक्षरता दर में वृद्धि और गरीबी में कमी करने में सफल रहा है और साथ ही समाज के कमजोर तबकों को लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के मध्यम से मुख्यधारा में लाने में भी सफलता प्राप्त की है। बिना किसी हिंसा और लोकतान्त्रिक माध्यमों से शक्ति का हस्तांतरण समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों और जातियों से पिछड़ी जातियों और वर्गों को हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, भारत धीरे-धीरे सहायता प्राप्त करने वाले देशों से सहायता देने वाले देशों की ओर रूख कर रहा है, भारत ने दक्षिण एशिया के अनेक देशों को आर्थिक सहायता प्रदान की है।

इसके बावजूद कुछ ऐसी चुनौतियाँ भी है जो अभी भी भारतीय लोकतंत्र पर प्रश्न खड़ा करती है। राजनीतिक हिंसा उनमें से एक प्रमुख मुद्दा है जिसका समुचित समाधान किये जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए नक्सलवाद और उत्तर-पूर्व में विद्रोह को प्रायः लोकतंत्र के ऊपर धब्बा के रूप में उद्धरित किया जाता है। यहाँ डॉ. भीमराव अम्बेडकर के उन कथनों को बार-बार दुहराए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने राजनीतिक समानता को

अपर्याप्त मानते हुए सामाजिक और आर्थिक समानता का तर्क दिया था। उन्होंने कहा था कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की दीर्घावधिक असमानता राजनीतिक लोकतंत्र के लिए खतरा सिद्ध होगी, क्योंकि जो भुगत रहे हैं वे राजनीतिक संरचना को झटका दे सकते हैं। मतदान के दौरान फर्जी वोट, धनबल और बाहुबल की भूमिका जैसे मुद्दों से निबटने के लिए तत्काल चुनाव-सुधार की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दे भारत में कार्यरत लोकतंत्र और विधि के शासन को कमजोर करने में निर्धारक भूमिका निभा रहे हैं। लोगों द्वारा मतदान का प्रतिशत कम होने के कारण प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता भी देखने को मिलती है। इस पूरे विश्लेषण में, यह आसानी से विश्लेषित नहीं किया जा सकता कि भारत लोकतंत्र सफल है या असफल। प्रक्रियात्मक लोकतंत्र को और अधिक मजबूत किये जाने की आवश्यकता है और अधिक प्रतिनिध्यात्मक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता है, जो सही अर्थों में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना होगी।

बोध प्रश्न 4

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) भारत में लोकतंत्र की विशेषताएँ

.....

.....

.....

.....

.....

7.5 सारांश

लोकतंत्र की संकल्पना का विकास वर्षों में हुआ है और इस दौरान यह अधिक समावेशी होता गया है। राजनीति विज्ञान के सबसे विवादित विषयों में से लोकतंत्र एक है। इसके अर्थ को लेकर सहमत हैं परन्तु इस बात को लेकर सहमत नहीं हैं कि इसे प्राप्त कैसे किया जाय। प्रत्यक्ष से लेकर अप्रत्यक्ष तक लोकतंत्र के विभिन्न प्रकार हैं। इतनी विविधता होने के बावजूद भारत में लोकतंत्र सफल हो सका है, क्योंकि यहाँ विभिन्न वर्गों को राजनीतिक परिचर्चा में सहभाग करने और विभिन्न दावों को सामने रखने का अवसर दिया गया है। भारत को अपने लोकतंत्र को अधिक प्रतिनिधिमूलक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने की आवश्यकता है, तभी वंचित वर्गों हेतु वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना हो पाएगी।

7.6 सन्दर्भ

अब्बास, होयेदा और कुमार, रंजय कुमार, (2012) *पोलिटिकल थ्योरी,* नई दिल्ली : पीअरसन

भारत में लोकतंत्र संवैधानिक सरकार, URL :http://vle.du.ac.in/mod/book/view.php?id=11805&chapterid=23271

डह्ल, रॉबर्ट (1989), *डेमोक्रेसी एंड इट्स क्रिटिक्स,* येल यूनिवर्सिटी प्रेस : सीटी, न्यू हवेन,

डह्लरॉबर्ट, 2018, Encyclopeida Britannica URL:https://www.britannica.com/topic/democracy

हेवुड, एंड्रू, पॉलिटिक्स, हैम्पशायर : पल्ग्रेव मैकमिलन स्टैनफोर्ड इंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ फिलोसोफी, URL : https://plato.stanford.edu/entries/democracy/

वोरो, राजेन्द्र और सुहास पल्शिकर (2004), इंडियन डेमोक्रेसी : मीनिंट एंड प्रैक्टिस, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड 2004

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्न बिंदु शामिल होने चाहिएः
   - शब्दों के यूनानी मूल।
   - प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में अंतर।
   - जनता के द्वारा शासन।
   - लोकतंत्र के लाभ को लेकर मिल का दृष्टिकोण।
2) प्रतिनिधि लोकतंत्र के सीमित और प्रत्यक्ष रूप का वर्णन।

बोध प्रश्न 2

1) आपका उत्तर लोकतंत्र के तंत्र और वास्तविक अभ्यास के बीच अंतर पर केन्द्रित होना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1) राजनीतिक दलों और शक्तिशाली नेताओं पर कोई नियंत्रण नहीं है।
2) लोकतंत्र के विकास और प्रसार में सूचना और तकनीकि का प्रयोग।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित बिन्दुओं को प्रकाशित करें।
   - संविधान की प्रस्तावना भारत को एक लोकतान्त्रिक देश के रूप में वर्णित करती है।
   - सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार पर आधारित स्वतंत्र और निष्पक्ष सामयिक चुनाव।
   - मौलिक अधिकार
   - बहुदलीय प्रणाली का अस्तित्व।
   - राज्य के नियंत्रण से मुक्त मीडिया।

इकाई 8 जेंडर*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जेंडर का अर्थ

8.3 जेंडर और राजनीति

8.3.1 एक लक्ष्य के रूप में जेंडर समानता, सामरिक के रूप में मुख्यधारा में जेंडर

8.3.2 जेंडर सम्बन्धी मुद्दे अैर प्रवृत्तियाँ

8.4 पितृसत्ताः जेंडर असमानता की समझ

8.5 पितृसत्ता की उत्पत्ति के सिद्धान्त

8.5.1 परम्परावादी विचारधारा

8.5.2 परिवर्तनकारी नारीवादी विचारधारा

8.5.3 समाजवादी विचारधारा

8.6 जेंडरः संकल्पना और सिद्धान्त

8.6.1 नारीवादी सिद्धान्त

8.6.2 उदारवादी नारीवाद

8.7 सारांश

8.8 संदर्भ

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य जेंडर के अर्थ की समझ और इस संकल्पना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक मुद्दों की छानबीन करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- जेंडर की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे;
- जेंडर और राजनीति के बीच सम्बन्धों को समझ सकेंगे; और
- पितृसत्ता की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जब तक नारीवादी सिद्धान्त को शैक्षिक रूप के परिप्रेक्ष्य के स्वरूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी, तब तक समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त व्यापक रूप से जेंडर-मध्यस्थ था। इस मान्यता की अब व्यापक आलोचना की गई है। राजनीतिक सिद्धान्त में जो जेंडर विषय को स्पष्ट करने में लगे हुए थे, वे वहीं लोग थे जो नारीवादी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए प्रयासरत थे और वे स्वयं भी नारीवादी विचारधारा के विद्वान लोग थे। ये नारीवादी ही थे जोकि इस भ्रम के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थे जो पुरुषों को व्यक्तियों और पुरुषत्व को तटस्थ से जोड़ा जाता है। इसलिए, यहाँ नारीवादी राजनीतिक सिद्धान्त ने हाल ही के समय

*डॉ. रचना सुचिन्मयी, मगध विश्वविद्यालय, पटना

में जेंडर पर विस्तृत सिद्धान्तीकरण किया है। यह पूर्णतया संभव है कि राजनीतिक सिद्धान्त में जेंडर नारीवाद से विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से समझा जाएँ। इसलिए, उदाहरण के लिए क्रमतर बढ़ता साहित्य है जोकि मनुष्य और पुरुषत्व पर ध्यान देता है और जो द्धजक द्धद में जेंडर की चिंताओं पर प्रकाश डाल सकता है और जोकि विस्तृत नारीवादी साहित्य से भिन्न है। फिर भी, वर्तमान समय तक राजनीति की अत्यधिक विस्तारित पुरुषत्व प्रकृति हो रही है, यह नारीवादी रहे हैं जिनका कि सबसे सशक्त राजनीतिक प्रोत्साहन रहा है तथा बौद्धिक महत्वाकांक्षा राजनीतिक सिद्धान्त में जेंडर के सिद्धान्त को विकसित करना।

जेंडर हमारे राजनीतिक और सामाजिक भूदृश्य और हमारे व्यक्तिगत पारस्परिक क्रियाकलापों को आकार प्रदान करता है। जेंडर समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टि है, कि न जो केवल मुख्यधाराओं के सिद्धान्तों को अपनाने के लिए उनकी सीमाओं और आकांक्षाओं को समझने की शक्ति देता है, बल्कि यह एक नए वाद-विवाद पर प्रकाश भी डालता है। जेंडर हमारी संस्थाओं, हमारे कार्यों, हमारे विश्वास और हमारी आकांक्षाओं में इतनी व्यापकता से गुंथा हुआ है कि यह हमें पूरी तरह से प्राकृतिक दिखाई देता हैं। राजनीति एक वास्तविक विश्व की परिघटना के रूप में और राजनीतिक विज्ञान एक शैक्षणिक विषय के रूप में जेंडर प्रभावित हैं। राजनीति का अध्ययन आज अपना व्यापक रूप स्थापित कर चुका है और यह अब केवल एक राजनीतिक पद धारण करने और वितरण की राजनीति तक सीमित नहीं रहा है। अब यह अपना व्यापक रूप धारण कर चुका है, इसलिए हमें इसकी सीमाओं को छोटा नहीं करना चाहिए। यह अब अनेक नए समूहों को अपने में समाहित कर चुका है जैसे कि "जेंडर संकट" (अन्तरकक्षीय या वर्गीय, यौन क्रियाएँ तथा पश्च-संरचनात्मकतावाद) तथा इसी प्रकार से पुरुषत्व तथा नारीत्व के विषयों की सीमाओं के बाहर विस्तारित हो चुका है। इसके लिए नए विचार इस सम्बन्ध में अपना आकार स्थापित कर चुके हैं जैसे कि आवास से घर तक और फिर यहाँ से संसद तक। अभी जेंडर और राजनीति की लहर फैल चुकी है तथा जेंडर सक्रियतावाद का एक लम्बा इतिहास रहा है। फिर भी जेंडर अभी तक शैक्षणिक राजनीतिक विज्ञान में अत्यधिक उपेक्षित रहा है। परम्परागत ध्यान राजनीति पर रहा है जैसे कि सरकार के अध्ययन के रूप में और चुनावी राजनीति पर संगठनों अथवा राजनीतिक भद्रलोक और औपचारिक संस्थाओं पर महिलाएँ और जेंडर दोनों ही अदृश्य रहे हैं, जबकि कल्याणकारी राज्य के निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण आधारिक भागीदारी रही है और औपनिवेशिक युग के बाद राष्ट्र निर्माण में सहयोग रहा है। यहाँ तक कि युद्ध और आतंकवाद से निपटने और इससे अधिक सामान्यतः सामाजिक तथा आर्थिक सुविधाओं के वितरण या निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। इन प्रमुख आकांक्षाओं के स्रोतों के सम्बन्ध में एंग्लो-अमरीकन परम्परा में राजनीति की स्थापना के इतिहास की खोज खबर के लिए हमें जॉन लॉक जैसे विद्वान के राजनीतिक सिद्धान्तकार के रूप में किए गए कार्यों पर अपना ध्यान देना होगा, जिन्होंने सार्वजनिक निजी क्षेत्र की भिन्नता को अपने विचारों का आधार बनाया है। एंग्लो-अमरीकन विषयों ने निजी-सार्वजनिक भेद की परासांस्कृतिक तथा सार्वभौमिक पराऐतिहासिकता को व्यापकता से स्वीकार किया है जैसे कि नागरिक या परिवार का मुखिया है जो सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रियता से कार्य करता है। इस धारणा के अंतर्गत महिलाएँ घरेलू कार्यों में सम्मिलित हैं अथवा निजी क्षेत्र के अंतर्गत वह एक परिवार का हिस्सा है, जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति अपने घर का मालिक है और यही उसका किला है और यहाँ पर व्यक्ति बिना किसी राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त है और अपनी इच्छा से सब कुछ अपनी परिधि में करने के लिए स्वतंत्र हैं। यह जो विश्लेषण किया गया है, इसमें यानी सार्वजनिक क्षेत्र से महिलाओं को अलग कर दिया गया है। इस राजनीतिक रचना क्षेत्र में से महिला को निकाल कर पुरुष सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया गया और महिलाओं की विधिकता को राजनीतिक विषयों से बाहर कर दिया गया। इसके फलस्वरूप जब महिलाओं को स्पष्ट रूप से सामने आना

होता है, तो निजी क्षेत्र को राजनीतिक सीमाओं से बाहर रख दिया जाता है और इसलिए विषय के वैधानिक विषय मामलों के हिस्सों में उन्हें सम्मिलित नहीं किया गया। परंतु महिलाओं से सम्बन्धित नियम-विनियमों तक की उनकी पहुँच जैसे कि गर्भपात, यौनिकता का भेदभाव और पुरुषों द्वारा की जाने वाली महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, उनके पारिवारिक रिश्तेदारों के विरुद्ध, ये सब तब और अब भी सरकारों के कार्य क्षेत्र में जाते हैं। यह सब अलग-अलग क्षेत्रों की विचारधारा में असंगतता और जेंडर-पूर्वाग्रह दर्शाते हैं।

8.2 जेंडर का अर्थ

जेंडर शब्द समाजशास्त्रीय रूप से अथवा एक संकल्पनात्मक श्रेणी के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसका अर्थ बहुत ही विशिष्ट है। अपने नए रूप में जेंडर शब्द का पुरुष और महिलाओं की सामाजिक-सांस्कृतिक परिभाषा के रूप में प्रयोग नया जन्म किया जाता है। कैसे समाज इनको पुरुषों और महिलाओं के नाम से अलग करता है और इसी आधार पर इनको सामाजिक भूमिका निभाने का कार्य प्रदत्त करता है। इसका प्रयोग महिलाओं और पुरुषों की सामाजिक वास्तविकताओं को समझने के लिए किया जाता है। लिंग और जेंडर के बीच अंतर उस सामान्य प्रवृत्ति को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया जो महिलाओं की अधीनता को उनके शारीरिक रचनातंत्र से जोड़ता है। यह युगों से विश्वास किया जाता रहा है कि इनकी विशेषताएँ, भूमिका और स्तर का निर्धारण जैविक आधार पर किया जाता है जोकि एक प्राकृतिक सत्य है तथा इसलिए, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। प्रत्येक संस्कृति में बालिकाओं और बालकों के मूल्यांकन का अपना एक मार्ग है, और इनको अलग-अलग भूमिका प्रतिक्रिया और लक्षण प्रदान करने का। सभी सामाजिक और सांस्कृतिक "पैकेजिंग", जोकि बालिकाओं और बालकों के जन्म से ही आरंभ हो जाती है, उसे जेंडर संबद्ध (gendering) कहते हैं। एन्न ओकले जो कि प्रथम कुछेक नारीवादी विद्वानों में से एक हैं जिन्होंने इस संकल्पना का पहली बार प्रयोग किया था, कहती हैं कि "जेंडर एक संस्कृति का मामला है, जो कि पुरुष और महिला के सामाजिक वर्गीकरण को पुरुषत्व और नारीत्व के रूप में संदर्भित करता है।" लोग सामान्यतः जैनिक साक्ष्यों के आधार पर निर्धारित करते हैं कि कौन पुरुष या महिला है। इसके साथ यह भी है कि वे इसी ही प्रकार से पुरुषत्व या नारीत्व का निर्धारण नहीं कर सकते हैं : क्योंकि इसका पता लगाने के लिए आधार सांस्कृतिक और समय तथा स्थान का विभेद हो सकता है। इसके साथ ही लिंग की स्थिरता की स्वीकृति है, परन्तु जेंडर का विभेद हो सकता है। जेंडर की उत्पत्ति जैविक नहीं होती है और लिंग तथा जेंडर के बीच सम्बन्ध प्राकृतिक भी नहीं होता है।

जेंडर सम्बन्धों के ढाँचे में स्थित होता है जोकि समय के साथ विकसित होते हैं और पुरुष और महिला को परिभाषित करते हैं और पुरुषत्व और नारीत्व को भी। साथ ही साथ व्यक्तियों के समाज के साथ सम्बन्धों को आकार प्रदान करते हैं और विनियमित करते हैं। यह समाज के प्रत्येक पक्ष में गहराई से जुड़ा है, जैसे कि हमारी संस्थाओं में, सार्वजनिक स्थानों, कलाओं में, वस्त्रों में और गतिविधियों में जेंडर सरकारी कार्यालयों से लेकर गलियों के खेलों तक से जुड़ा हुआ होता है। यह परिवार, आसपड़ोस, चर्च, विद्यालय, मीडिया, गली में आना-जाना, रेस्ताओं में भोजन करना, आराम कक्षों में जाना इत्यादि सभी में समाहित होता है। और ये सभी स्थापनाएँ तथा स्थितियाँ एक-दूसरे से एक संगठित प्रकार से जुड़ी हैं। यह विकास से सम्बन्धित वर्तमान के आख्यानों और क्रियाओं की सफलता का परिणाम है कि "महिला" और "जेंडर" की इनमें महत्वपूर्ण स्थिति है। जेंडर की संकल्पना को एक क्रॉस-कटिंग (cross-cutting) सामाजिक-सांस्कृतिक कारक के रूप में समझने की आवश्यकता है। वह एक ओवरआर्किंग (overarching) कारक है इस अर्थ में कि जेंडर का प्रयोग अन्य समस्त क्रॉस-कटिंग (cross-cutting) कारकों जैसे कि नस्ल, वर्ग, अवस्था, नृजातीय समूहों

के संदर्भ में भी किया जा सकता है। जेंडर व्यवस्था में विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में स्थापित की गई हैं जोकि यह निश्चित करते हैं कि एक महिला/पुरुष तथा बालिका/बालक से क्या आकांक्षा, अनुमति और मूल्य हो। जेंडर की भूमिकाओं को सामाजीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से जाना जा सकता है; यह निश्चित नहीं बल्कि परिवर्तनशील हैं। जेंडर व्यवस्थाओं को शिक्षा व्यवस्था, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था, कानून तथा संस्कृति और परम्पराओं के माध्यम से संस्थापित किया जाता है। जहाँ तक इसके प्रयोग का सम्बन्ध हैं, जेंडर दृष्टिकोण एकल, महिलाओं और पुरुषों पर ध्यान डालता है, बल्कि उस व्यवस्था पर ध्यान देता है जिसमें जेंडर की भूमिका/उत्तरदायित्व, पहुँच तथा संसाधनों पर नियंत्रण, एवं संभावित निर्णय लेने की निर्धारण होता है।

यहाँ पर यह बल देना भी बहुत ही महत्वपूर्ण है कि जेंडर की संकल्पना महिलाओं के साथ अन्तरपरिवर्तनीय नहीं है। जेंडर का अर्थ दोनों महिला और पुरुष हैं और उनके सम्बन्ध। जेंडर समानता को उन्नत करने के सम्बन्ध में पुरुषों के साथ महिलाओं को भी संबद्ध करना चाहिए। हाल के वर्षों में जेंडर परिप्रेक्ष्य पर अनुसंधानों में पुरुषों को अधिकता से सम्मिलित किया गया है। पुरुषों पर प्रकाश डालने में वृद्धि करने की दिशा में तीन प्रमुख दृष्टिकोणों को अपनाया गया है। प्रथमतः पुरुषों की पहचान जेंडर समानता के समर्थकों के रूप में और इस कार्य में उनकी और अधिक सक्रियता। द्वितीय, यह मान्यता कि जेंडर समानता तब तक संभव नहीं है जब तक पुरुष अनेक क्षेत्रों में अपनी प्रवृत्तियों और व्यवहारों में परिवर्तन नहीं करते हैं; उदाहरण के लिए, जनन अधिकार और स्वास्थ्य का अधिकार। तृतीय, यह है कि जेंडर व्यवस्था अनेक स्थानों, अनेक संदर्भों में पुरुषों और महिलाओं, दोनों के लिए नकारात्मक मानी गई है – पुरुषों पर अप्रासंगिक माँगों और संकुचित परिभाषित तरीकों से व्यवहार करने का दबाव होता है। दिलचस्प अनुसंधान किए जा रहे हैं, दोनों महिलाओं और पुरुषों द्वारा पुरुषों की पहचान और पुरुषोत्व पर। इस तरह से पुरुषों पर प्रकाश डालने की प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई है जोकि विकास में जेंडर परिप्रेक्ष्य के साथ कार्य करने के लिए भविष्य की कार्यनीतियों पर प्रभाव डालेगा। समानता का अर्थ आजीविका के संसाधनों, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों में पहुँच के लिए समान अवसरों की उपलब्धि, और इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में बिना भेदभाव के भागीदारी को निश्चित करना है। जेंडर की समानता शक्ति और प्राधिकारिता, वर्ग-जाति, पदानुक्रम तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं, रिवाजों और मानकों से उपजती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जेंडर शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.3 जेंडर और राजनीति

अधिकतर आधुनिक लोकतान्त्रिक देशों में पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता का मुद्दा मुख्यधारा के राजनीतिक आख्यानों में प्रमुख आदर्श बन गया है। पुरुषों और महिलाओं को प्राकृतिक रूप से समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए और किसी को भी राजनीतिक जीवन से अलग या वंचित नहीं किया जाना चाहिए। फिर भी विभिन्न देशों तथा विभिन्न राजनीतिक क्षेत्रों में भेद है इस तथ्य को लेकर कि कितनी असमानता है और कैसी। इसके अनेक कारण हैं कि क्यों कुछ देशों अथवा कुछ नीति क्षेत्रों में अधिक जेंडर समानता है। और शासनतंत्र तथा संस्थात्मक विशेषताओं से लेकर सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग किया गया है, यह व्याख्या करने के लिए कि क्यों अभी तक सामान्यतः पुरुष राजनीतिज्ञों द्वारा अपना आधिपात्य स्थापित किया हुआ है। राजनीति में जेंडर विषय पर व्यापक साहित्य लिखा गया है। राजनीति में जेंडर असमानता के क्रियाकलाप विविध प्रकार के हैं। जैसे कि मतदान, अभियान करना और नेतृत्व में और इसी प्रकार से राजनीतिक ज्ञान, समाजीकरण, प्रवृत्तियाँ और राजनीतिक सिद्धान्त में महिलाओं का स्थान। जेंडर और राजनीति से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में दृष्टिकोणों की विविधताएँ इसमें सम्मिलित हैं :

- प्रथम, महिलाएँ विदित हैं राजनीति विज्ञान की श्रेणियों और विश्लेषणों में और इस कारण विश्लेषण की क्लासिकी इकाइयों में जैसे कि नागरिक, मतदाता, विधायिक, पार्टियों, विधायक, राज्यों ओर राष्ट्रों का जेंडीकरण होता है।
- द्वितीय, महिलाओं के संदर्भ में उन राजनीतिक गतिविधियों का परीक्षण किया गया है जोकि परम्परागत राजनीतिक विज्ञान से बाहर रही हैं।
- तृतीय, जेंडर को सामाजिक संगठन की संरचना के रूप में देखा गया।
- अंतिम, व्यापक नारीवादी आन्दोलन, वाली महिलाएँ (हाशिये पर पड़ी नस्लों और नष्जातियता की महिलाएँ), विकासशील विश्व में महिलाएँ, औपनिवेशिक शासन के बाद की नारीवादी तथा एल.जी.बी.टी.क्यू. विद्वान जो जेंडर राजनीति के अध्ययन में स्थान प्राप्त करने के लिए दबाव बनाने के प्रयास में रत रहे, कभी-कभी उन्हें सहमति प्राप्त हुई और कभी कुंठा।

राजनीति और जेंडर के बीच विशम और विरोधाभासी सम्बन्ध है। एक ओर, जेंडर सम्बन्धी मुद्दे स्पष्ट रूप से राजनीति की समझ के केन्द्र में स्थित होते हैं। दोनों व्यवहार में तथा राजनीति का अध्ययन लम्बे समय तक कुख्यात पुरुषवादी प्रयास रहे हैं। अत्यधिक व्यवहार में देखा गया है कि अनेक वृत्ताकारों ने तर्क दिए हैं कि राजनीति ऐतिहासिक रूप से सबसे अधिक पुरुषत्व वाली वाली गतिविधि रही है। यह विशेष रूप से पुरुषों तक सीमित रही है तथा किसी भी अन्य सामाजिक व्यवहार से अधिक पुरुषत्व वाली गतिविधि रही है। राजनीति का संस्थागत अविर्भाव जो कि सरकार में निहित है, वह महिलाओं के हितों और परिप्रेक्ष्यों का विरोधी रहा है। महिलाओं को सामान्यतः पारंपरिक राजनीतिक गतिविधियों से जानबूझ कर दूर रखा जाता है और राजनीतिक कार्यकर्त्ता या नेता के रूप में अपनी गतिविधियों को प्रदर्शित करने पर उन्हें हतोत्साहित किया जाता है, उनकी अनदेखी की जाती है। इस अर्थ में जेंडर के जो मुद्दे हैं वह राजनीति की परिभाषा और इसके संचालन का बहुत पहले से हिस्सा रहे हैं। दूसरी ओर, जेंडर के मुद्दे को राजनीतिक के लिए सामान्यतः अप्रासंगिक माना जाता है। यदि जेंडर को महिलाओं के साथ समानार्थी समझा जाता है, तो महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में अनुपस्थिति के चलते हम यह कह सकते हैं कि जेंडर का मुद्दा राजनीति में प्रासंगिक नहीं है।

8.3.1 एक लक्ष्य के रूप में जेंडर समानता, सामरिक के रूप में मुख्यधारा में जेंडर

जेंडर समानता की शब्दावली को संयुक्त राष्ट्र में प्रमुखता दी गई है, न कि जेंडर समानता (Equity) को। जेंडर समानता सामाजिक न्याय से सम्बन्ध रखती है और जोकि प्रायः परम्परा, रिवाज़, धर्म या संस्कृति पर आधारित होता है और प्रायः महिलाओं के विरोध में होता है। इस प्रकार से महिलाओं की उन्नति के सम्बन्ध में समानता का प्रयोग करना स्वीकार्य नहीं है। सन् 1995 में बीजिंग में आयोजित महिला सम्मेलन में सबकी यह सहमति बन गई थी कि समानता के शब्द का प्रयोग किया जाएगा। समानता का अर्थ यह है कि व्यक्ति के अधिकार, जिम्मेदारियाँ, और अवसरों की उपलब्धता इस विषय पर निर्भर नहीं करेगी कि क्या वे महिला या पुरुष पैदा हुए हैं। समानता का अर्थ यह भी नहीं है कि "एक" – जेंडर समानता का यह अर्थ भी नहीं है कि महिलाएँ और पुरुष एक समान बन जाएँगे। महिला और पुरुषों के बीच जो समानता है, यह गुणात्मक और मात्रात्मक, दो पक्षों पर आधारित है। मात्रात्मक पक्ष का अर्थ है महिलाओं का समानतापूर्ण (equitable) प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की आकांक्षा प्रदर्शित करना जिसमें संतुलन और समानता शामिल हैं। जबकि गुणात्मक पक्ष का अर्थ है महिलाओं और पुरुषों के लिए विकास की प्राथमिकताओं और परिणामों पर समानतापूर्ण प्रभावों को स्थापित करना। समानता यह निश्चित करने में समाहित है कि प्रत्यक्ष स्वीकार्यता, हित, आवश्यकताएँ और महिलाओं तथा पुरुषों की प्राथमिकताएँ (जोकि महिलाओं और पुरुषों की विभिन्न भूमिकाएँ और जिम्मेदारियों के कारण बहुत ही भिन्न हो सकती हैं) को योजना और निर्णय करने के स्तर पर समान रूप से महत्व दिया जाएगा।

जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए दो तर्क हैं। यह निम्न प्रकार हैं:

- प्रथम, महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता-समान अधिकार, अवसर और जिम्मेदारियाँ – यह मामला मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय का है।
- द्वितीय, महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता, एक पूर्व शर्त और प्रभावी संकेतक एक महत्वपूर्ण भी है। सतत् जन-केन्द्रित विकास के लिए महिलाओं और पुरुषों, दोनों की प्रत्यक्ष स्वीकार्यता, हितों, आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को न केवल सामाजिक न्याय के मामले के तौर पर देखना चाहिए, अपितु ये विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए भी नितांत आवश्यक हैं।

जेंडर समानता एक लक्ष्य है जिसको कि सरकारों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने एकमत से स्वीकार किया है। इसको अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और प्रतिबद्धताओं में सम्मलित कर लिया गया है। हालाँकि, पूरे विश्व में एक वैश्विक ढाँचा बना हुआ है। असमानता का जोकि महिलाओं के प्रति हिंसा, महिलाओं की राजनीति में भागीदारी तथा निर्णय निर्धारण ढाँचों में उनके प्रतिनिधित्व में प्रदर्शित होता है। महिलाओं के लिए भिन्न और विभेदकारी आर्थिक अवसर होते हैं, उनका क्रय–विक्रय और देह व्यापार होता है। इन मुद्दों के उत्तर में यही हो सकता है कि जेंडर समानता को उन्नत करने के प्रयासों की अत्यंत आवश्यकता है। इस तरह से अधिक समानता को प्राप्त करने के लिए महिलाओं और पुरुषों के लिए अनेकों स्तर पर परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी, जिसमें प्रवृत्तियों और आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन, संस्थानों और कानूनी ढाँचों में परिवर्तन, आर्थिक संस्थानों में परिवर्तन और राजनीतिक निर्णय-निर्धारण करने वाली संरचनाओं में परिवर्तन करना होगा।

जेंडर मुख्यधारा करण (Gender Mainstreaming) एक संगठनात्मक सामरिक नीति है, एक संस्थान की नीतियों तथा गतिविधियों के सभी पक्षों में जेंडर परिप्रेक्ष्य में जेंडर उन्नत

करने के लिए एक संगठनात्मक कार्य नीति के निर्माण की अत्यंत आवश्यकता है। सन् 1970 के दशक में महिलाओं के विकास के लिए महिला एकीकृत कार्य नीति बनाई गई थी इसमें महिलाओं की एक अलग से इकाई या कार्यक्रमों की स्थापना की थी जो राज्य के अंतर्गत विकास संस्थानों की स्थापना करने योजना थी। जिसकी सन् 1980 के दशक तक गति बहुत ही धीमी रही। इसलिए, इसको ध्यान में रखते हुए यह माना गया कि संस्थागत व्यापक परिवर्तन किए जाएं, यदि सर्वव्याप्त पुरुष श्रेष्ठता को चुनौती देनी है। महिलाओं की विशिष्ट परियोजनाओं को हाशिया पर जोड़ना अब समुचित उपाय नहीं था। अधिकतर प्रमुख विकास संगठनों तथा अनेक सरकारों ने अब जेंडर समानता की दिशा में कार्य करने के लिए जेंडर मुख्यधाराकरण की नीति को अपनाया है। जेंडर मुख्यधाराकरण अपने आप में एक साध्य नहीं है, बल्कि साधनों का एक साध्य है। आर्थिक और सामाजिक परिषद सहमत निष्कर्ष (Economic and Social Council – ESCSOC Agreed Conclusions) (1997/2) में जेंडर मुख्यधाराकरण को विकसित करने के लिए आह्वान किया था। इस सम्मेलन में यह सहमति बनी की संयुक्त राष्ट्र में जेंडर संतुलन की वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जेंडर परिप्रेक्ष्य पर और संयुक्त राष्ट्र के कार्यों में जेंडर समानता के लक्ष्य को पूरा करने पर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। जेंडर मुख्यधाराकरण के कार्यों के कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं की परियोजनाओं को अलग से शामिल करने की आवश्यकता नहीं है अथवा वर्तमान क्रियाकलापों के तहत महिलाओं के घटकों को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि यह अत्यंत आवश्यक है कि सभी कार्यक्रमों में जेंडर परिप्रेक्ष्य को एक एकीकृत हिस्सा मान कर उनकी भागीदारी को निश्चित किया जाए। इसमें समाहित हैं जेंडर परिप्रेक्ष्यों – महिला और पुरुष क्या करते हैं और संसाधनों तथा निर्णय-निर्धारण प्रक्रिया में उनकी कहाँ तक पहुँच है – को सभी नीतियों के विकास, अनुसंधान, सलाह-मशविरा, विकास, कार्यान्वयन और मानकों की निगरानी, स्तर व नियोजन, कार्यान्वयन और परियोजनाओं को केन्द्र में लाना।

जेंडर मुख्यधाराकरण की स्थापना एक अन्तरसरकारी अधिदेश के रूप में सन् 1995 में बीजिंग घोषणा और प्लेटफार्म फॉर ऐक्शन में निर्धारित की गई थी और फिर इसके बाद सन् 1997 में आर्थिक और सामाजिक परिषद सहमत निष्कर्ष में इसी विषय को सार रूप में सहमति मिली। जेंडर मुख्यधाराकरण के अधिदेश को ताकत मिली थी बीजिंग सम्मेलन (जून 2000) के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की महासभा के विशेष सत्र में। जेंडर मुख्यधाराकरण को संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्व की सरकारों पर थोपा नहीं गया है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्य सन् 1990 के दशक के मध्य से जेंडर मुख्यधाराकरण के सम्बन्ध में अन्तरसरकारी परिचर्चाओं में सतत् सम्मिलित रहे हैं और उनमें यह सहमति रही है कि जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए एक महत्वपूर्ण वैश्विक कार्यनीति को अपनाने और उसको क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। मुख्यधाराकरण की कार्यनीति का यह अर्थ नहीं है कि महिलाओं को प्रोत्साहित करने वाली विशिष्ट नीतियों की आवश्यकता नहीं है। ऐसी गतिविधियाँ इस प्रकार के क्रियाकलाप महिलाओं की प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं को लक्षित करती हैं विधि निर्माण, नीतियों का विकास, अनुसंधान तथा मूल धरातल पर परियोजना/कार्यक्रमों के माध्यम से। महिलाओं की विशिष्ट परियोजनाएँ जेंडर समानता के क्षेत्र में लगातार कार्य करती रहेंगी। उन्हें इसकी अभी भी आवश्यकता है, क्योंकि जेंडर समानता अभी तक पूरी नहीं हुई है और जेंडर मुख्यधाराकरण की प्रक्रिया पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है। लक्षित प्रयास जोकि विशेष रूप से महिलाओं या जेंडर समानता को उन्नत करने की दिशा में ध्यान देते हैं। महत्वपूर्ण है वर्तमान असमानताओं को कम करने में और जेंडर समानता को उन्नत करने के लिए उत्प्रेरक के रूप में उनको अपनाना है और मुख्यधारा के परिवर्तन के लिए एक क्षेत्र का निर्माण करना है। महिलाओं पर केन्द्रित विशिष्ट पहले उनके लिए एक

सक्षमतीकरण का स्थान पैदा कर सकती हैं तथा अपने विचारों और कार्यनीतियों के लिए महत्वपूर्ण कार्य करने में सक्षम हो सकती हैं। तब जाकर जेंडर मुख्यधारा के हस्तक्षेप में परिवर्तन करना संभव हो सकता है। पुरुष पर केन्द्रित पहलें जेंडर समता को उन्नत करती हैं, पुरुषों के सहयोगियों को पैदा कर। इसकी निम्नलिखित दो कार्यनीतियाँ हैं – जेंडर मुख्यधाराकरण और महिला सशक्तीकरण – ये एक-दूसरे से प्रतियोगिता में नहीं है। किसी एक संगठन के अन्दर जेंडर मुख्यधाराकरण को जोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि लक्षित क्रियाकलापों की अधिक समय तक आवश्यकता नहीं होगी। ये दोनों कार्यनीतियाँ वास्तव में एक-दूसरे की पूरक हैं और जेंडर मुख्यधाराकरण को महिलाओं को सशक्त करने का प्रयोग ऐसे होना चाहिए कि महिलाएँ सक्षम हों।

8.3.2 जेंडर सम्बन्धी मुद्दे और प्रवृत्तियाँ

जेंडर एक मुद्दा है क्योंकि महिलाओं और पुरुषों के बीच मूल रूप से अन्तर और असमानताएँ हैं। यह अन्तर और असमानताएँ विभिन्न तरीकों से अपने आपमें कार्यवृत्त हो सकते हैं, विशिष्ट देशों अथवा क्षेत्रों में, परंतु कुछ व्यापक ढाँचों में प्रश्नों के बिन्दु हैं जिनको हमेशा ही निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है। निम्न कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जो कि कैसे और क्यों जेंडर विभेद हैं और विशिष्ट स्थितियों में असमानता क्यों प्रासंगिक हो सकती है, यह दर्शाते हैं:

- **राजनीतिक शक्ति में असमानता (निर्णय निर्धारण, प्रतिनिधित्व में पहुँच):** महिलाओं का संपूर्ण विश्व की राजनीतिक प्रक्रिया में बहुत कम प्रतिनिधित्व है। इसे बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से देखना और समझना है कि औपचारिक निर्णय-निर्धारण संरचना शक्ति में जेंडर विभेद या अन्तर बहुत है (जैसे कि सरकारों, सामुदायिक परिषदों और नीति निर्धारण संस्थानों में) महिलाओं का अल्प प्रतिनिधित्व हैं और महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में यह बहुत कम दिखाई देता है। वास्तव में तथ्य यह है कि महिलाओं की प्राथमिकताएँ, आवश्यकताएँ और हित या दिलचस्पी पुरुषों से बिल्कुल अलग होती हैं। पुरुष प्रायः इनमें शामिल नहीं होते हैं अथवा दिखाई नहीं देते हैं। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या उपक्षेत्रीय प्राथमिकताएँ अथवा समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताएँ और प्राथमिकताएँ प्रायः बिना महिलाओं के प्रतिफल के परिभाषित की जाती हैं।

- **परिवार के अन्दर असमानताएँ:** परिवारों में आपसी समझौतों और निर्णय निर्धारण और संसाधनों तक पहुँच में असमानता देखी गई है। इससे अनुसंधानों और नीति दोनों के बारे में प्रश्न पैदा हुए हैं जो इस संकल्पना पर आधारित हैं कि परिवार के कार्य एक इकाई के रूप में पूरे होते हैं और यहाँ प्रत्येक सदस्य को समान रूप से लाभ प्राप्त होते हैं। परिवार के स्तर पर भिन्नताओं और असमानताओं की जाँच कई मुद्दों की समझ के लिए प्रासंगिक है। इन मुद्दों में शामिल हैं महिला और पुरुषों की योग्यता या आर्थिक प्रोत्साहन के प्रति प्रतिक्रिया, एच.आई.वी./एड्स की रोकथाम तथा समुचित और समानतापूर्ण सामाजिक सुरक्षा नीतियों के कार्यान्वयन को शामिल करके समझा जा सकता है।

- **कानूनी स्तर और हकों में भिन्नताएँ :** राष्ट्रीय संविधानों और अन्तर्राष्ट्रीय उपायों द्वारा घोषित करने के बावजूद कि महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त हैं, ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जिनमें व्यक्तिगत स्तर या स्थिति, सुरक्षा, भूमि, वंशागत विरासत और रोज़गार के अवसरों को कानून और व्यवहार के द्वारा महिलाओं को समान अधिकारों से वंचित किया जाता है। एक साध्य के रूप में महिलाओं के लिए दबावों जनित चिन्ता पर ध्यान देना आवश्यक है। परन्तु यह इसके लिए भी महत्वपूर्ण

है कि आर्थिक उत्पादकता और संवर्धन, गरीबी को कम करने और सतत् संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक प्रभावी राष्ट्रीय कार्यनीति की रचना हो। महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित करना या रखना केवल महिला कार्यकर्त्ताओं के लघु समूहों की चिन्ता का विषय नहीं है, बल्कि इनके अलावा सम्पूर्ण विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की जिम्मेदारी है कि महिलाओं को उनको समुचित अधिकार प्राप्त हों और वे सुरक्षित रहें।

- **अर्थव्यवस्था के अन्दर श्रम का विभाजनः** अधिकतर देशों में महिला और पुरुषों को विभिन्न प्रकार से वितरित किया गया है। उत्पादन सम्बन्धी क्षेत्रों, औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों, कृषि के और विभिन्न कार्यक्षेत्रों में इन दोनों को विभाजित किया हुआ है। अधिकान्त कम भुगतान वाले कार्यों और "बिना स्तर" के कार्यों में महिलाएँ पाई जाती हैं (अंशकालिक, अस्थायी, घरेलू कार्य) साथ ही उत्पादक संसाधन जैसे कि शिक्षा, कौशलों, सम्पत्ति और लेन-देन में महिलाओं की पहुँच पुरुषों से कम है। इन प्रारूपों का अर्थ है कि आर्थिक प्रवृत्तियों और आर्थिक नीतियाँ के महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग निहितार्थ हैं। उदाहरण के लिए व्यापार उदारीकरण का क्षेत्रवार असंतुलित प्रभाव पड़ा है, इसके जेंडर समानता और आर्थिक संवर्धन दोनों के लिए परिणाम रहे हैं जोकि केवल हाल के दिनों में जाँच का विषय बने हैं।

- **घरेलू/बिना भुगतान के क्षेत्र में असमानताएँः** अधिकतर देशों में महिलाएँ ही हैं जिनके कंधों पर घर की देखभाल और पालनपोषण की जिम्मेदारी होती है। यह घरेलू कार्य महिलाओं के कार्य भार को ओर बढ़ाते हैं जिसके कारण राजनीतिक क्रियाकलापों को करने में बाधा आती है और आर्थिक गतिविधियों को विस्तारित करने में असमर्थता रहती है। हाल के अनुसंधानों ने अर्थव्यवस्था के "जननीय कार्य" और "आर्थिक उत्पादकता" क्षेत्र के बीच के सम्बन्धों को प्रदर्शित किया है विशेष रूप से सभी उत्पादक गतिविधियों की निर्भरता एक स्वस्थ श्रमिक ताकत के जन्म और स्थायित्व में और किस प्रकार जननीय क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है उन आर्थिक नीतियों का जोकि व्यापार, व्यय और नागरिक व्यय से सम्बन्धित है। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है, आर्थिक नीतियों ने जेंडर के संदर्भ में कल्याण को कैसे प्रभावित किया है पर से ध्यान अब जेंडर–कैसे इन्हीं आर्थिक नीतियों के परिणाम को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

- **महिलाओं के विरुद्ध हिंसाः** जेंडर असमानता में जेंडर हिंसा भी प्रदर्शित होती है, यह चाहे महिला के अंतरंग मित्र (घरेलू हिंसा) द्वारा की गई हिंसा हो अथवा एक दुश्मन सेना के द्वारा "नृजातीयता सफाया" अथवा उनका यौन शोषण, जैसे युवतियों और महिलाओं का देह व्यापार।

- **विभेदकारी प्रवृत्तियाँ :** जेंडर समानता केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं होती है, परंतु यह और अन्य तरीकों से भी की जाती है जिनको मापा नहीं जा सकता, जिनका उपाय नहीं किया जा सकता और उनमें परिवर्तन भी नहीं किया जा सकता है। समुचित व्यवहार, स्वतंत्रता और सहज योग्यता सम्बन्धी विचार प्रायः जेंडर सम्बन्धी घिसी पिटी धारणाओं या आधारों पर टिकी होती हैं और महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग होती हैं। विचार और व्यवहार एक दूसरे को अन्त प्रभावित करते हैं और बलाघात (reinforce) करते हैं। एक दूसरे के लिए तर्क प्रदान करते हैं जोकि परिवर्तन की जटिलताओं की वृद्धि में योगदान देते हैं।

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जेंडर समानता को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 पितृसत्ता : जेंडर असमानता की समझ

पितृसत्ता वह व्यवस्थित सामाजिक संरचनाएँ हैं जोकि पुरुषवादी भौतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्तियों को महिलाओं के ऊपर लागू करती हैं। कुछ नारीवादी पितृसत्ता की महिलाओं के बृहद और स्थानिक संरचनाओं द्वारा व्यवस्थित अधीनता की व्याख्या के लिए करते हैं। ये संरचनाएँ अवरोधों, महिलाओं के जीवन की पसंदगी और अवसरों पर प्रतिबंध लगाकर पुरुषों को लाभ पहुँचाने का कार्य करते हैं। पितृसत्ता की विभिन्न प्रकारों से व्याख्या की गई है। हालाँकि, पितृसत्ता का स्रोत प्रायः महिलाओं की जनन करने की भूमिका तथा यौनिक हिंसा में है जो पूँजीवाद के शोषण की प्रक्रिया से गुंथी हुई है। पितृसत्ता के दमन के मुख्य स्थलों की पहचान कर ली गई है जैसे कि घरेलू कार्य, भुगतान कार्य, राज्य, संस्कृति, यौनिकता और हिंसा इत्यादि। व्यवहार जोकि महिलाओं के विरुद्ध हैं उनके जेंडर के कारण, उनको पितृसत्ता व्यवहार के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए कार्य या काम धन्धों में पृथक्करण और असमान वेतनमान।

पितृसत्ता की संकल्पना का जेंडर और विकास सिद्धान्तिकरण में प्रयोग किया गया है। यह इसलिए ताकि न केवल असमान जेंडर सम्बन्ध अपितु असमान पूँजीवादी सम्बन्धों को चुनौती दी जा सके क्योंकि ये सम्बन्ध पितृसत्ता को सहारा देने या उसकी नींव को मजबूत करने का कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। उनको भी चुनौती देने का कार्य है। नारीवादी जो जेंडर असमानता को प्रायः पितृसत्ता की शब्दावली में व्याख्या करते हैं, वे पुरुष-पूर्वाग्रह-सामाजिक संरचना और व्यवहार को अस्वीकार करते हैं तथा महिलाओं की स्वायत्तता को प्रस्तावित करते हैं अथवा कार्यनीति के अनुसार अलगाववाद का भी समर्थन करते हैं। कुछ विचारों के तहत महिलाएँ पुरुष के साथ पितृसत्ता लेन-देन के समझौतों द्वारा विपरीत पितृसत्ता व्यवस्था के अंतर्गत कुशल कार्य साधन युक्ति के रूप में इस्तेमाल करती हैं। इसमें समाहित हैं महिलाओं की स्वायत्तता तथा पुरुषों की अपनी पत्नियों और बच्चों को पालने पोषण की जिम्मेदारी के मध्य एक समझौता। पुरुष शक्ति की एक बृहद सिद्धान्त जेंडर असमानता को विस्तारित कर सकता है। परंतु उसकी जटिलता को समझने में असफल है। यह बताने का प्रयास करती है कि जेंडर शोषण समय और स्थान की सीमाओं से परे सार्वभौमिक है। अभी हाल के चिंतन में ऐसी सार्वभौमिक अवधारण को अस्वीकार कर दिया गया है और जेंडर आधारित शोषण को समझने के लिए विस्तृत ऐतिहासिकता और सांस्कृतिक विश्लेषण पर बल दिया गया है। महिलाएँ पहचान के रूप में कभी भी एक समरूप वर्ग नहीं रही हैं। जेंडर असमानताएँ अन्य सामाजिक असमानताओं के आर-पार बनी हुई हैं जैसे कि वर्ग, जाति, नृजातीयता और नस्ल, और कुछ संदर्भों में जेंडर की

प्राथमिकताओं से यह ऊपर हो सकती हैं। पितृसत्ता की कठोर और सार्वजनिक संकल्पना परिवर्तन के लिए अवरोध और कार्यनीतियों के लिए महिलाओं को उनका स्थान देने के लिए तैयार नहीं हैं। एक गहन विश्लेषण करने की आवश्यकता है जो भिन्नताओं और जटिलताओं को ध्यान में रखकर अध्ययन कार्य करें तथा एक महिलाओं के अभिकरण की स्थापना की माँग करती है।

8.5 पितृसत्ता की उत्पत्ति के सिद्धान्त

पितृसत्ता की उत्पत्ति का प्रमुख सिद्धान्त जैविकी और सामाजिक कारकों को एक साथ मिश्रित करता है यह व्याख्या करने के लिए कि किस प्रकार से पितृसत्ता ने जेंडर भिन्नता को प्रतिपादित किया है।

8.5.1 परम्परावादी विचारधारा

परम्परावादियों का विचार है कि पितृसत्ता व्यवस्था एक जैविक निर्धारण है। पुरुष और महिलाएँ भिन्न तरह से उत्पन्न हुए हैं तथा इसी के परिणामस्वरूप उनकी अलग-अलग भूमिकाएँ और कार्य निर्धारित किए गए हैं। उन दोनों के जैविकी कार्यों में विशेष प्रकार का अन्तर है। इसलिए पुरुष और महिलाओं के "प्राकृतिक" रूप से विभिन्न सामाजिक भूमिकाएँ और कार्य हैं। परम्परावादियों के तर्कों के अनुसार महिलाएँ बच्चों को जन्म देती हैं, इसलिए, उनका मुख्य लक्ष्य जीवन में माँ बनना है और उनका मुख्य कार्य बच्चों को रखना और उनको पालना है। व्याख्याएँ जो जैविकी रूप से पुरुष को श्रेष्ठ मानती हैं और परिवार को चलाने वाले, उनको अस्वीकार किया गया है hunting gathering समाजों पर अनुसंधान के आधार पर। ऐसे समाजों में पुरुषों और महिलाओं के मध्य समुचित मात्रा में एक दूसरे की पूरकता (complementarity) थी। अनेक आदिवासी समाजों में हमें पता लगता है कि यहाँ पर समतावादी विचारधारा का चलन था जिसमें महिलाओं की कमान को आदर से देखा जाता था और उनका समान स्तर था। पुरुष के श्रेष्ठ होने के परम्परावादी सिद्धान्त को अनेकों ने चुनौती दी हैं क्योंकि इसका कोई ऐतिहासिक और न ही वैज्ञानिक साक्ष्य है। यह जैविकी निर्धारण पुरुष की श्रेष्ठता का आधार नहीं बनाया जा सकता है। अब यह सिद्ध हो गया है कि पितृसत्ता सिद्धान्त पुरुष ने बनाया है और इसको ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने की है। पितृसत्ता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण व्याख्या फ्रेडेरिक एन्जेल्स ने सन् 1884 में अपनी पुस्तक *"ओरिजिन्स ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एंड स्टेट"* में दिया है। एन्जेल्स का कहना है कि महिलाओं की अधीनता का आरंभ निजी सम्पत्ति के साथ आरंभ हुआ जब विश्व में महिला जेंडर की ऐतिहासिक रूप से मात हुई। वर्गों का विभाजन और महिलाओं की अधीनता, दोनों ही ऐतिहासिक रूप से हुए हैं।

8.5.2 परिवर्तनकारी नारीवादी विचारधारा

परिवर्तनकारी नारीवादी विचारों के अनुसार पितृसत्ता निज़ी सम्पत्ति से पूर्व आई। ये विश्वास करते हैं कि मूल विरोधाभास लिंगों के बीच है, न कि वर्गों के। परिवर्तनकारी नारीवादी यह मानते हैं कि सभी महिलाएँ एक वर्ग हैं और यह विश्वास नहीं करते हैं कि पितृसत्ता व्यवस्था प्राकृतिक है। हालाँकि वे यह भी कहते हैं कि जेंडर असमानता को पुरुषों और महिलाओं के मध्य जैविकी अथवा मनोवैज्ञानिक भेदों के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं। शुलामिथ फायरस्टोन का विश्वास है कि महिलाओं के दमन का मूल आधार महिलाओं की जनन क्षमता के आधार पर है अभी तक पुरुष इस पर नियंत्रण बनाए हुए हैं। कुछ परिवर्तनकारी नारीवादी विद्वानों के अनुसार, सामाजिक वर्गों की व्यवस्था दो प्रकार की है जो निम्नलिखित हैं:

1) आर्थिक वर्ग व्यवस्था जोकि उत्पादनों के सम्बन्धों पर आधारित है; और

2) यौनिक वर्ग व्यवस्था जोकि जनन प्रक्रिया पर आधारित है।

यह व्यवस्था जोकि यौन पर आधारित है महिलाओं की अधीनता के लिए उत्तरदायित्व है। पितृसत्ता की संकल्पना इस द्वितीय वर्गों की व्यवस्था वर्गों की वर्ग व्यवस्था दूसरे वर्ग की संदर्भित करती है जिसमें पुरुषों द्वारा महिलाओं पर शासन किया जाता है और इसका आधार पुरुषों द्वारा महिलाओं की जनन क्षमता का स्वामित्व और नियंत्रण होता है। इसके परिणामस्वरूप महिलाएँ शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हो गई हैं। यह नारीवादी यह भी कहते हैं कि यह अपने आप में महिलाओं की जैविकी नहीं है, बल्कि पुरुष के जो मूल्य इन पर लागू हैं और जो शक्ति उनको इस जैविकी पर नियंत्रण से प्राप्त होती है, वह दमनकारी है।

8.5.3 समाजवादी विचारधारा

समाजवादी नारीवादी मार्क्सवादी और परिवर्तनकारी नारीवादी मत को एक साथ जोड़ते हैं। ये ऐसा महसूस करते हैं कि दोनों उठाए गए बिन्दु एक-दूसरे को कुछ योगदान करते हैं, परन्तु दोनों में से कोई स्वयं में समुचित नहीं हैं। पितृसत्ता व्यवस्था उनके लिए सार्वभौमिक नहीं और न ही अपरिवर्तनीय है। इनका विचार है कि महिलाओं और पुरुषों के बीच जो संघर्ष है यह उत्पादन की प्रणालियों में परिवर्तन के साथ ऐतिहासिक रूप से परिवर्तित हो जाएँगे। उनके अनुसार पितृसत्ता आर्थिक व्यवस्था के साथ सम्बन्धित हैं जिसका सम्बन्ध उत्पादन की प्रक्रिया की प्रकृति से जुड़ा है, परंतु यह आकस्मिक रूप से संबन्धित नहीं है। कई अनेक कारक पितृसत्ता को बलपूर्वक प्रभावित करते हैं जैसे कि विचारधारा। चूँकि पितृसत्ता व्यवस्था केवल निजी सम्पत्ति के विकास के परिणामस्वरूप नहीं है, अतः यह तब भी अदृश्य नहीं होगी जब निजी सम्पत्ति की व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। वे अपने विश्लेषणों में उत्पादन तथा जनन प्रक्रिया के सम्बन्धों यानी दोनों को देखते हैं। मार्क्सवादी विद्वान जनन प्रक्रिया, परिवार तथा घरेलू श्रम के सभी क्षेत्रों को नकारते हैं। समाजवादी महिलावादियों में प्रमुख विद्वान हैं हाइडी हार्टमैन, मारिया माइस और जेरडा हार्नर शामिल हैं।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) पितृसत्ता की उत्पत्ति पर परिवर्तनकारी महिलावादियों के क्या विचार हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 जेंडर : संकल्पना और सिद्धान्त

जेंडर की संकल्पना सन् 1970 के दशक के आरंभ में सामान्य बोलचाल भाषा में हमारे सामने आईं। इसका प्रयोग एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के तौर पर हुआ था जोकि जैविकी यौन और वे तरीके जिनसे यह व्यवहार तथा विभिन्न योग्यताओं को निर्धारित करती हैं,

उनके मध्य विभाजन की रेखा खींचती हैं। तदुपरांत, इन व्यवहारों और योग्यताओं को "पुरुषवादी" अथवा "नारीवादी" माना गया। लिंग/जेंडर में अन्तर करने के लिए यह तर्क दिया जाता था कि जैविक अन्तर का शारीरिक या मानसिक प्रभाव बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया था पितृसत्ता व्यवस्था को बनाए रखने के लिए महिलाओं में यह भावना जागृत करने के लिए कि ये "घरेलू" भूमिका को निभाने के लिए प्राकृतिक रूप से उपयुक्त हैं। एन्न ऑकले की पुस्तक *टेक्सट, सेक्स, जेंडर एंड सोसाइटी* (1972) में उन्होंने जेंडर के निर्माण के आगे विस्तार के लिए आधारशिला रखी थी। उन्होंने टिप्पणी की है कि पश्चिमी संस्कृतियाँ जेंडर भिन्नताओं को अतिशयोक्ति पूर्ण उजागर करती हैं तथा तर्क रखती है कि हमारी वर्तमान जेंडर भूमिका की सामाजिक दक्षता महिलाओं की घरेलू महिला और माँ के रूप में केन्द्रित है। यह पहली बार नहीं हुआ था जब ऐसा विभेद किया गया – वास्तव में वे मानव विज्ञान (Anthropology), मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मेडिकल शोध का तत्वी रहे हैं, महत्वपूर्ण रूप से नारीवाद के लिए। सीमोन द बीबोआर ने इस अन्तर को अपनी पुस्तक *सेकण्ड सेक्स* में दो दशक पूर्व उजागर किया था जब उन्होंने कहा था कि "कोई पैदा नहीं अपितु महिला बनती है।"

8.6.1 नारीवादी सिद्धान्त

नारीवादी सिद्धान्त का उद्देश्य जेंडर असमानता को समझाना और जेंडर राजनीति, शक्ति सम्बन्ध तथा यौनिकता पर प्रकाश डालना है। जबकि इन सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों की आलोचना उपलब्ध कराते हैं, नारीवादी सिद्धान्त महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों पर प्रकाश डालता है। नारीवादी सिद्धान्त में जिन विषयों को समाहित किया जाता है उनमें भेदभाव या शोषण, रूढ़िबद्ध या घिसा-पिटा विवरण, विषय निर्माण (विशेषकर यौनिक विषयकरण करना) दमन और पितृसत्ता शामिल हैं। नारीवाद पुरुष और महिलाओं की सामाजिक समानता का समर्थन करता है तथा यौनवाद और पितृसत्तावाद के विरूद्ध हैं। नारीवादी शब्द का प्रयोग एक ऐसे राजनीतिक, सांस्कृतिक या आर्थिक आन्दोलन के लिए किया जा सकता है जिसका उद्देश्य महिलाओं के लिए समान अधिकार और कानूनी संरक्षण कराना है। नारीवाद में राजनीतिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सम्मिलित हैं और वे दर्शन जोकि जेंडर विभेद और एक ऐसे आन्दोलन इसी प्रकार से आन्दोलन से सम्बन्धित हैं जोकि महिलाओं के लिए जेंडर समानता का समर्थन करते हैं और महिलाओं के अधिकारों और उनके हितों के लिए अभियानों का आयोजन करते हैं। "नारीवाद" तथा "नारीवादी" शब्दों का सन् 1970 के दशक तक विस्तृत प्रयोग नहीं हुआ था। सन् 1840 के दशक में पहली बार नारीवाद के चिन्ह नज़र आए थे जब महिलाओं की पीड़ा का विरोध हुआ और अफ्रीकी स्रोत अमरीकियों के लोग इन विरोधों के अन्त में सन् 1920 में वे मताधिकार प्राप्त करने में विजयी हुए, परन्तु समाज में जेंडर समानता में अभी तक दोषपूर्ण स्थिति बनी हुई है। नारीवादी समाज में अनेक मुद्दों के विरूद्ध हैं, हालाँकि वे मुख्य/पाँच विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। ये निम्न प्रकार हैं:

- समाज में समानता की वृद्धि करने के लिए कार्य करना;
- समाज में लोगों के विकल्पों के लिए व्यापक क्षेत्रों का निर्माण करना; उनका सुझाव है कि मानवता का पुनःएकीकरण किया जाए;
- जेंडर स्तर विन्यास को नष्ट करना;
- यौनिक हिंसा को समाप्त करना;
- यौनिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना।

नारीवाद के इतिहास को तीन लहरों में विभाजित किया जा सकता है। नारीवाद की प्रथम लहर उन्नीसवीं और आरम्भिक बीसवीं शताब्दी में आई थी और दूसरी लहर सन् 1960 के दशक से सन् 1970 के दशक तक थी और तीसरी लहर सन् 1990 के दशक से लेकर वर्तमान तक पहुँच चुकी है। प्रथम लहर मुख्य रूप से उन्नीसवीं और आरंभिक बीसवीं शताब्दी की रही है, जिसमें महिलाओं के लिए मताधिकार की माँग करने के लिए आन्दोलन चलाए थे (मुख्य रूप से महिलाओं को मताधिकार देने से सम्बन्धित थी)। दूसरी लहर सन् 1960 के दशक में आरंभ में हुईं जो मुख्य रूप से महिलाओं की स्वतंत्रता के आन्दोलन के साथ विचारों तथा कार्यों के एक साथ जोड़ने से सम्बन्धित थी (जब महिलाओं के लिए कानूनी एवं सामाजिक अधिकारों के लिए अभियान चलाए गए थे)। तीसरी लहर का संदर्भ है, दूसरी लहर की विफलताओं का जारी रहना और इन विफलताओं के प्रति प्रतिक्रिया जिसका आरंभ सन् 1990 के दशक में हुआ। नारीवाद ने पश्चिमी समाज में एक व्यापक क्षेत्र को समाहित करते हुए पूर्व अधीनस्थ परिप्रेक्ष्य को परिवर्तित किया। इसकी सीमाएँ संस्कृति से कानून तक पहुँच गई थी। नारीवादी कार्यकर्त्ताओं ने महिलाओं के कानूनी अधिकारों के लिए अभियानों का संचालन कर रहे थे (संविदा, सम्पत्ति का अधिकार, मत देने का अधिकारों)। महिलाओं की शारीरिक स्वायत्तता और अस्मिता का अधिकार, गर्भपात कराने का अधिकार तथा प्रजनन सम्बन्धी अधिकार (इसमें गर्भनिरोधक तथा प्रसवपूर्व देखभाल की गुणवत्ता की पहुँच को सम्मिलित किया था)। महिलाओं और बालिकाओं या लड़कियों को घरेलू हिंसा से बचाने के लिए संरक्षण देना, यौनिक उत्पीड़न और बलात्कार को रोकना, कार्य स्थल के अधिकार जिसमें प्रसव अवकाश तथा समान वेतन, महिला द्विवेश एवं अन्य होने वाले भेदभाव जो कि जेंडर-विशिष्ट उत्पीड़न स्वरूपों के विरूद्ध आन्दोलन चलाए गए।

8.6.2 उदारवादी नारीवाद

उदारवाद नारीवाद राजनीतिक और कानूनी सुधारों के माध्यम से पुरुषों और महिलाओं की समानता के अधिकारों को दिलाने के लिए प्रयास करता है। यह नारीवाद का जोकि महिलाओं की अपने कार्यों और विकल्पों के माध्यम से एक समानता हासिल करने की क्षमता पर ध्यान देता है। उदारवादी नारीवादी पुरुषों और महिलाओं के बीच अन्तर्क्रिया को उस स्थान (बिन्दु) के तौर पर इस्तेमाल करते हैं, जहाँ से समाज को बदला जा सकता है। उदारवादी नारीवादियों के अनुसार सभी महिलाएँ समानता को प्राप्त करने की योग्यता रखती हैं और वे इसके लिए पूरी तरह से सक्षम हैं; इसलिए समाज की संरचना को बदलने की आवश्यकता नहीं है। उदारवादी नारीवादियों के लिए कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनमें प्रजनन और गर्भपात अधिकार, यौन सम्बन्धी उत्पीड़न, मतदान, शिक्षा, "समान कार्य के लिए समान वेतन", सामर्थ्य अनुसार स्वास्थ्य देखभाल और महिलाओं के विरूद्ध होने वाली यौनिक और घरेलू हिंसा के विरूद्ध मामलों को लगातार लोगों के सामने लाने के प्रयासरत रहना है।

8.7 सारांश

जेंडर की संकल्पना की उत्पत्ति महिलाओं के हाशिएकरण के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में हुई, जो हाशियाकरण वर्तमान आलोचनात्मक संदर्भों में था और इसने ठोस संदर्भों और इन विषयों के ज्ञान के दार्शनिक सिद्धान्त को बदलने का प्रयास किया। समाज विज्ञान में सहजभाव से जाति, वर्ग और नस्ल की शब्दावली में विश्लेषण करने की परम्परा है, किन्तु यह समुचित पर्याप्त नहीं हुआ है क्योंकि इसमें पुरुषों और महिलाओं के बीच जो असामंजस्य था उसे नकारा गया। इस शब्दावली की उत्पत्ति नई श्रेणियों को चुनौती देने और समझ के नए तरीकों का पता लगाने में हुई ताकि पुरुष-महिलाओं के सम्बन्धों की प्रकृति एवं उनके

संगठनों की जानकारी प्राप्त की सके और इसकी भी कि व्यापक शक्ति सम्बन्धों के संदर्भ में कैसे एक दूसरे से घुले मिले हैं। अतः जेंडर से सम्बन्धित महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अनेक अध्ययन किए गए हैं परन्तु इनका वर्तमान विश्लेषण प्रतिमान से अंतःसम्बन्ध इसके एक जटिल मुद्दा है। आज, यद्यपि जेंडर एक प्रमुख विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में उभरा हुआ है, यह एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से चिह्नित हैं। केवल कुछ ही प्रश्न थोड़े से तरीकों से उठाए जा सकते हैं। एक ऐसा उदाहरण है जेंडर का असमानता के साथ सार्वभौमिक सम्बन्ध जहाँ जेंडर को दोनों लिंगों का एक coterminus द्वंद्व माना गया है और पितृसत्ता से आगे। जेंडर के समाजशास्त्र का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है, यह सामाजिकता से संबद्ध हैं, यह स्थापित करना कि असमानता को चुनौती दी जा सकती है क्योंकि वह समाज प्रक्रिया का परिणाम है, न कि "प्राकृतिक" शारीरिक भिन्नता। नारीवाद और समाज विज्ञान विद्वानों में बीसवीं शताब्दी के अन्त में प्रवृत्ति उन्होंने थी कि उनकी "प्राकृतिक शारीरिक जैविक रचना है पर सांस्कृतिक जेंडर अर्थ को स्थापित किया। इसके पश्चात्, विशेषकर मिशेल फूको के प्रभाव में यह जागरूकता सांस्कृतिक अर्थ तथा व्यवहार वास्तव में विशेष प्रकारों से शरीर उत्पन्न करते हैं।

8.8 संदर्भ

बकिंगहम, हार्टफील्ड, सूज़न (2000), *जेंडर एंड एनवायरमेंट,* न्यूयॉर्कः रूटलैज

डेली, मेरी (1978), *जिन इकोलॉजी : द मेटाएथिक्स ऑफ रैडिकल फेमिनिज़्म,* बोस्ट प्रेस

डैनहीमैन, आईरिन (2010), *जेण्डर एंड क्लाइमेंट चेंजः एन इंट्रोडक्शन,* न्यूयॉर्कः रूटलैज।

द बोबाओयर एस. (1949) *द सेकण्ड सेक्स,* जैग्गर, एलीसन एम. एवं सूज़न आर. बोर्डो, (संपा.), (1899) *जेण्डर बॉडी नॉलेज, फेमिनिस्ट रिकंस्ट्रक्शन्स ऑफ बीईंग एंड नोविंग,* न्यू ब्रस्विक, एन.जे.: रूटजर्स यूनिवर्सिटी प्रेस।

जैग्गर, एलीसन एम. एवं सूज़न आर. बोर्डो, (संपा.), (1899) *जेण्डर बॉडी नॉलेज, फेमिनिस्ट रिकंस्ट्रक्शन्स ऑफ बीईंग एंड नोविंग,* न्यू ब्रस्विक, एन.जे.: रूटजर्स यूनिवर्सिटी प्रेस।

जैग्गर, एलीसन एम. (संपा.), (2014) *जेण्डर एंड ग्लोबल जस्टिस, माल्डेन, एस. ए. :* पॉलिटी प्रेस।

ज़ाक्केत, जेन एस. एवं गेल सम्भरफील्ड (संपा.), (2006), *विमिन एंड जेण्डर इक्विटी इन डेवलेपमेंट थ्योरी एंड प्रैक्टिसः इंस्टीट्यूशंस, रिसोर्सेज एंड मोबिलाइज़ेशन,* डूर्हम एंड लंदनः ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।

केल्लर, एवीलिन फौक्स (1995), *रिफ्लेक्शन्स ऑन जेण्डर एंड साईन्स,* न्यू हेवन, कौन्नः येल यूनिवर्सिटी प्रेस।

क्रिजनेन, टौन्नी, वैन बानबेल, सोफी (2015), *जेण्डर एंड मीडिया : रिप्रेजेंटिंग, प्रोडयूसिंग, कंज्यूमिंग,* न्यूयॉर्कः रूटलेज।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम और ऐन्न ऑक्ले द्वारा दी गई परिभाषा को सम्मिलित कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) प्रकाश डालिए कि जेंडर असमानता का अर्थ है कि अधिकार, जिम्मेदारियाँ और व्यक्ति के अवसर की उपलब्धता इस पर निर्भर नहीं करेगी की वह पुरुष अथवा महिला पैदा हुआ है।

बोध प्रश्न 3

1) परिवर्तनकारी नारीवादी यह विश्वास नहीं करते हैं कि पितृसत्ता प्राकृतिक नहीं है और जेंडर असमानता की पुरुष और महिलाओं के बीच जैविकी तथा मनोवैज्ञानिक के भेदों के संदर्भ में व्याख्या की जा सकती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 नागरिकता*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 नागरिकता की अवधारणा

9.2.1 निर्धारक तत्त्व

9.3 नागरिकता की अवधारणा का विकास

9.4 नागरिकता के सिद्धांत

9.4.1 उदारवादी सिद्धांत

9.4.2 गणतंत्रतावादी सिद्धांत

9.4.3 मुक्तिवादी सिद्धांत

9.4.4 समुदायवादी सिद्धांत

9.4.5 मार्क्सवादी सिद्धांत

9.4.6 बहुलतावादी सिद्धांत

9.4.7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य

9.4.8 गांधी के विचार

9.5 वैश्विक नागरिकता का विचार

9.6 सारांश

9.7 संदर्भ

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य नागरिकता के अर्थ को समझना और इस अवधारणा से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक मुद्दों को संबोधित करना है। जैसे जैसे आप इस इकाई में आगे बढ़ेंगे, आप निम्न को समझने में सक्षम होंगे:

- नागरिकता की अवधारणा की व्याख्या;
- नागरिकता के कुछ मूल सिद्धांतों पर चर्चा; तथा
- नागरिकता से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या।

9.1 परिचय

सामान्य शब्दों में, नागरिकता एक व्यक्ति और राज्य के बीच का संबंध है। इसे पूरक अधिकारों और जिम्मेदारियों के संदर्भ में देखा जाता है। टी एच मार्शल के अनुसार, 'नागरिकता एक राजनीतिक समुदाय में 'पूर्ण और समान सदस्यता है।' नागरिकता के शुरुआती रूप प्रकृति में सीमित और बहिष्कृत थे, क्योंकि जिनके पास संपत्ति थी, उन्हें ही नागरिकता के अधिकार दिए गए थे। महिलाओं और दासों को इन अधिकारों से बाहर रखा

* डॉ. सुरिन्दर कौर शुक्ला, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

गया था। यह आधुनिक उदार राज्यों के आगमन के साथ था कि समानता की मांग ने गति पकड़ी और हाशिए के वर्गों के सामाजिक-आर्थिक समावेश के लिए, नागरिकता के अधिकार उन्हें प्रदान किए गए। एक लोकतंत्र में सुधार के लिए, नागरिकों को शासन में सक्रिय भाग लेना चाहिए जो जवाबदेही सुनिश्चित करता है। निष्क्रिय नागरिकता किसी भी लोकतंत्र में गतिरोध पैदा कर सकती है और प्रतिनिधियों में नागरिकों के प्रति जवाबदेही न होने के कारण 'पराया' होने का एहसास लाती है। वैश्वीकरण के कारण पश्चिम में कल्याणकारी नीतियों, रक्षा बजटों में वृद्धि, राज्य द्वारा डिजिटल निगरानी बढ़ाने, कमजोर वर्गों के हाशिए पर जाने, पर्यावरण संबंधी चिंताओं और बहुसांस्कृतिक दबाव जैसे कई कारकों ने नागरिकता की अवधारणा के आसपास बहस को गरमा दिया है।

9.2 नागरिकता की अवधारणा

नागरिकता किसी व्यक्ति या संप्रभु राज्य के कानूनी सदस्य या राष्ट्र के अंग के रूप में मान्यता प्राप्त व्यक्ति या कानून के तहत मान्यता प्राप्त व्यक्ति की स्थिति है। एक व्यक्ति के पास कई नागरिकताएं हो सकती हैं और एक व्यक्ति जिसके पास किसी भी राज्य की नागरिकता नहीं है, को राज्यविहीन कहा जाता है। 'नागरिक' शब्द को संकीर्ण या व्यापक अर्थों में समझा जा सकता है। संकीर्ण अर्थ में, इसका अर्थ है एक शहर का निवासी या वह व्यक्ति जो किसी शहर में रहने का विशेषाधिकार प्राप्त करता है। जबकि एक व्यापक अर्थ में, नागरिक का अर्थ है एक व्यक्ति जो राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर रहता है। नागरिकता और राष्ट्रीयता कानूनी अर्थों में एक समान हैं। वैचारिक रूप से, नागरिकता राज्य के आंतरिक राजनीतिक जीवन पर केंद्रित है और राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार का विषय है। आधुनिक युग में, पूर्ण नागरिकता की अवधारणा न केवल सक्रिय राजनीतिक अधिकारों, बल्कि पूर्ण नागरिक और सामाजिक अधिकारों को शामिल करती है। ऐतिहासिक रूप से, एक राष्ट्रीय और एक नागरिक के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि नागरिक को निर्वाचित अधिकारियों को वोट देने और निर्वाचित होने का अधिकार है। पूर्ण नागरिकता और अन्य छोटे संबंधों के बीच यह अंतर, प्राचीन काल में वापस ले जाता है। 19वीं और 20वीं शताब्दी तक, यह केवल उन लोगों के एक छोटे प्रतिशत के लिए विशिष्ट था जो किसी शहर या राज्य के पूर्ण नागरिक होने से संबंधित थे। अतीत में, अधिकांश लोगों को लिंग, वर्ग, जातीयता, धर्म या अन्य कारकों के आधार पर नागरिकता से बाहर रखा गया था।

नागरिकता से जुड़े तीन प्रकार के अधिकार हैं– नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक। नागरिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे स्वतंत्रता, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि से संबंधित हैं। इन अधिकारों को राज्य के खिलाफ शक्ति के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि वे लोकतंत्र में असंतोष को सुरक्षित रखते हैं। राजनीतिक आयाम में राजनीतिक अधिकार शामिल हैं जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अपने देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेता है, जैसे मतदान का अधिकार; किसी भी राजनीतिक दल के गठन या उससे जुड़ने का अधिकार आदि। ये अधिकार लोकतंत्र में संसदीय संस्थाओं से जुड़े हैं। सामाजिक आयाम सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत को साझा करने के अधिकार को संदर्भित करता है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद कल्याणकारी राज्य का विचार मजबूत हुआ और अपने नागरिकों के बीच असमानताओं को दूर करने के लिए न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देना राज्य का कर्तव्य माना गया है। नागरिक और सामाजिक अधिकारों के बीच एक तनाव का रिश्ता रहा है जहां नागरिक अधिकारों को सामाजिक अधिकारों से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है।

9.2.1 निर्धारक तत्त्व

प्रत्येक देश की अपनी नीतियां, नियम और मानदंड होते हैं जो उसकी नागरिकता के लिए जरूरी होते हैं। एक व्यक्ति को कई आधारों पर मान्यता या नागरिकता दी जा सकती है। आमतौर पर जन्म स्थान के आधार पर नागरिकता स्वचालित होती है; अन्य मामलों में एक आवेदन की आवश्यकता हो सकती है। नागरिक दो प्रकार के होते हैं: प्राकृतिक जन्म नागरिक और स्वाभाविक नागरिक। प्राकृतिक जन्म नागरिक वे होते हैं जो अपने जन्म या रक्त संबंधों के आधार पर किसी राज्य के नागरिक होते हैं। स्वाभाविक नागरिक वे विदेशी हैं जिन्हें संबंधित देश द्वारा निर्धारित कुछ शर्तों की पूर्ति करने पर देश की नागरिकता प्रदान की जाती है। एक व्यक्ति जो एक विदेशी देश का नागरिक बनने की इच्छा रखता है, उसे अपने मूल देश की नागरिकता छोड़नी होगी। कोई भी व्यक्ति इस उद्देश्य के लिए उस देश द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा करने के बाद किसी दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त कर सकता है।

- जन्मजात नागरिकता (Jus Sanguinis) – यदि किसी व्यक्ति के माता-पिता दोनों या उनमें से कोई एक पहले से सम्बंधित राज्य के नागरिक हैं, तो जन्म लेनेवाले व्यक्ति को उस राज्य का नागरिक होने का भी अधिकार है। राज्य आम तौर पर राज्य के बाहर पैदा होने वाली पीढ़ियों की एक निश्चित संख्या के आधार पर नागरिकता देते हैं। नागरिक कानून के देशों में नागरिकता का यह रूप आम नहीं है।

- एक देश के भीतर जन्में (Jus Soli)– कुछ लोग स्वतः रूप से उस राज्य के नागरिक होते हैं जिसमें वे पैदा होते हैं। नागरिकता का यह रूप इंग्लैंड में उत्पन्न हुआ, जहां जो लोग दायरे में पैदा हुए थे, वे सम्राट के नागरिक थे। आम कानून वाले देशों में इस प्रकार की नागरिकता आम हैं।

- विवाह द्वारा नागरिकता – एक नागरिक के लिए एक व्यक्ति के विवाह पर आधारित प्रक्रिया को स्वाभाविक बनाने के लिए कई देशों ने फास्ट ट्रैक की स्थापना की। जो देश इस प्रकार से नागरिकता देते हैं, वहाँ अक्सर झूठे विवाहों की शिकायतें मिलती हैं और उन्हें पकड़ने के लिए नियम बनाते हैं।

- प्राकृतिककरण– राज्य आम तौर पर उन लोगों को नागरिकता प्रदान करते हैं जिन्होंने कानूनी रूप से देश में प्रवेश किया है और उन्हें रहने के लिए अनुमति दी गई है, या राजनीतिक शरण दी गई है, और एक निर्दिष्ट अवधि के लिए वहां रहते हैं। कुछ देशों में, प्राकृतिककरण उन स्थितियों के अधीन होता है, जिनमें भाषा का सही ज्ञान या मेजबान देश के जीवन के तरीके, अच्छे आचरण और नैतिक चरित्र का प्रदर्शन करना शामिल हो सकता है, अपने नए राज्य या उसके शासक के प्रति निष्ठा की वकालत करना और उनकी पूर्व नागरिकता का त्याग प्राकृतिककरण में शामिल है। कुछ राज्य दोहरी नागरिकता की अनुमति देते हैं और किसी भी अन्य नागरिकता को औपचारिक रूप से त्यागने के लिए प्राकृतिक नागरिकों की आवश्यकता नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में, एक विदेशी और नागरिक के बीच एक विशिष्ट अंतर है। एक नागरिक अपने देश में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेता है। दूसरी ओर, एक विदेशी को, देश के राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेने के लिए विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, लेकिन केवल नागरिक अधिकारों जैसे जीवन और धर्म का अधिकार प्राप्त होता है।

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिकता से जुड़े अधिकारों के तीन प्रकार बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.3 नागरिकता की अवधारणा का विकास

नागरिकता की प्राचीन अवधारणा के लिए हमें ग्रीक शहर-राज्यों को समझना होगा, जहां आबादी को दो वर्गों में विभाजित किया गया था– नागरिक और दास। नागरिकों ने, दोनों ही, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लिया। उन्होंने राज्य के नागरिक और राजनीतिक जीवन के सभी कार्यों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। जबकि दासों ने इस तरह के किसी भी अधिकार का आनंद नहीं लिया और सभी प्रकार की राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित रहे। यहां तक कि महिलाओं को नागरिकता के अधिकार नहीं दिए गए थे, जो "केवल-मुक्त मूल-जन्में पुरुषों" के लिए आरक्षित थे। प्राचीन ग्रीस में इस तरह से, 'नागरिक' शब्द का इस्तेमाल संकीर्ण अर्थों में किया गया था। केवल वे जो नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेते थे और जिन्होंने लोगों के नागरिक और राजनीतिक जीवन के कार्यों में भाग लिया, उन्हें नागरिक माना गया। प्राचीन रोम में इसी तरह की प्रक्रिया का पालन किया गया था, जहां केवल अमीर वर्ग के लोग, जिन्हें पेट्रीशियन (अभिजात वर्ग सम्बन्धी) कहा जाता था, केवल उन्हें ही नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेने के लिए विशेषाधिकार प्राप्त थे। राज्य के नागरिक और राजनीतिक जीवन के कार्यों में केवल पैट्रिशियन ने भाग लिया। इस तरह के किसी भी अधिकार का आनंद लेने के लिए बाकी आबादी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थी। नागरिकों को नैतिक गुणों को विकसित करने की आवश्यकता थी, जो कि लैटिन शब्द 'सद्गुणों' (virtues) से लिया गया एक शब्द है, जिसका अर्थ है पुरुषार्थ जो कि सैन्य कर्तव्य, देशभक्ति, और कर्तव्य और कानून के प्रति समर्पण के अर्थ में लिया जाता है। मध्यकाल में, नागरिकता राज्य द्वारा सुरक्षा से जुड़ी हुई थी क्योंकि पूर्ण राज्य अपनी विविध जनसंख्या पर अपनी सत्ता को लागू करना चाहते थे। यह हॉब्स और लॉक जैसे सामाजिक अनुबंध सिद्धांतकारों के साथ जुड़ी परंपरा में था, जो मानते थे कि व्यक्तिगत जीवन और संपत्ति की रक्षा करना संप्रभु का मुख्य उद्देश्य है। यह नागरिकता की एक निष्क्रिय सोच थी क्योंकि व्यक्ति सुरक्षा के लिए राज्य पर निर्भर था। इस धारणा को 1789 में फ्रांसीसी क्रांति द्वारा चुनौती दी गई थी और 'मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' में, नागरिक को स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया था। नागरिकता की आधुनिक धारणा स्वतंत्रता और समानता के बीच संतुलन बनाने से सम्बंधित है। सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से समानता की स्थिति प्रदान करके जाति, वर्ग, लिंग आदि जैसी असमानताओं को समाप्त किया जा रहा है।

9.4 नागरिकता के सिद्धांत

निम्नलिखित सिद्धांतों को विभिन्न विद्वानों द्वारा नागरिकता पर प्रस्तुत किया गया है।

9.4.1 उदारवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार, नागरिक अधिकार नागरिकता की नींव स्थापित करते हैं और यह व्यक्तिवाद की धारणा के आसपास घूमता है। नागरिकता एक कानूनी स्थिति है, जो राज्य के हस्तक्षेप से उसे बचाने वाले व्यक्ति पर कुछ निश्चित अधिकार प्रदान करती है। टी. एच. मार्शल ने अपनी पुस्तक 'सिटिजनशिप एंड सोशल क्लास' में 1950 में प्रकाशित होने के बाद ब्रिटेन में नागरिकता के विकास का पता लगाया। उन्होंने नागरिकता को तीन तत्वों में विभाजित किया है – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक। स्वतंत्रता के लिए आवश्यक अधिकार नागरिक के अंतर्गत आते हैं, राजनीतिक तत्त्व राजनीति में भाग लेने का अधिकार में शामिल है जबकि सामाजिक अधिकार आर्थिक कल्याण और सुरक्षा के अधिकार को समाहित करते हैं। मार्शल का मानना था कि सामाजिक अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आधार हैं। उनका विकास विभिन्न अवधियों में हुआ है – सिविल (18वीं शताब्दी), राजनीतिक (19वीं शताब्दी) और 20वीं सदी में सामाजिक अधिकारों का विकास हुआ। उन्होंने तर्क दिया कि नागरिक अधिकार व्यक्तियों को 'समान नैतिक मूल्य' देते हैं, परन्तु वे निरर्थक होंगे जब तक उन्हें सामाजिक अधिकारों का समर्थन नहीं मिलता क्यूंकि सामाजिक अधिकार 'सामान सामाजिक मूल्य' का समर्थन करते हैं। उदाहरण के लिए, बोलने की स्वतंत्रता के अधिकार का बहुत कम मूल्य हो जाता है यदि किसी के पास शिक्षा की कमी के कारण कहने के लिए कुछ भी उचित नहीं है। नागरिकता समानता की बात करती है जबकि पूंजीवाद वर्ग असमानताओं को जन्म देता है। इसीलिए, मार्शल ने राज्य को कम से कम जीवन स्तर (सामाजिक सुरक्षा) सुनिश्चित करके जरूरतमंद लोगों की देखभाल के लिए कल्याणकारी कार्य सौंपे। सच्ची उदार परंपरा की तरह, मार्शल ने असमानता को खत्म करने की कोशिश नहीं की, बल्कि इसे कम करने की कोशिश की। जॉन रॉल्स ने भी समाज के कम से कम सुविधा वाले वर्गों को लाभ पहुंचाने के लिए वस्तुओं और सेवाओं के पुनर्वितरण के लिए तर्क देकर नागरिकता के उदार सिद्धांत में योगदान दिया। व्यवहार में, हालांकि, वास्तविक समानता अभी भी उदार नागरिकता में नहीं पाई जाती, हालांकि यह जाति, वर्ग, नस्ल, लिंग आदि के संदर्भ में अंतर के बावजूद औपचारिक कानूनी समानता की गारंटी ज़रूर देती है।

9.4.2 गणतंत्रवादी सिद्धान्त

रिपब्लिकन परंपरा नागरिकों की भागीदारी के माध्यम से नागरिक स्व-शासन पर केंद्रित है। रूसो ने सामाजिक अनुबंध में तर्क दिया कि सामान्य इच्छा के माध्यम से कानूनों का सह–लेखन नागरिकों को स्वतंत्र और कानूनों को वैध बनाता है। इसीलिए, विचार-विमर्श और गणराज्यों में सक्रिय भागीदारी नीति निर्धारण की वकालत करती है क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि व्यक्ति विषय नहीं, बल्कि नागरिक हों। उदारवादियों के विपरीत, जो नागरिकता को कानून द्वारा संरक्षित होने के रूप में देखते हैं, गणतंत्रवादी कानून के निर्माण में भागीदारी चाहते हैं। उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र चाहते हैं, जबकि गणतंत्रवादी विचारशील लोकतंत्र (deliberative democracy) को बढ़ावा देते हैं। गणतंत्रवादी आगे तर्क देते हैं कि नागरिकता को सामान्य नागरिक पहचान के रूप में देखा जाना चाहिए जो एक आम सार्वजनिक संस्कृति द्वारा बनाई गई है। नागरिक पहचान के रूप में, नागरिकता नागरिकों को एकजुट कर सकती है, जब तक कि यह पहचान उनकी अन्य पहचानों जैसे

धर्म, जातीयता आदि से अधिक मजबूत हो। गणतंत्रवादी कम्युनिस्टों की आलोचना करते हैं और साथ ही साथ वे स्थानीय पहचानों के प्रति आशंकित हैं, जिन्हें नागरिक लक्ष्यों से ऊपर रखा जा रहा है। हालांकि, आधुनिक राष्ट्र राज्यों के पैमाने और जटिलता को देखते हुए, नागरिक भागीदारी सुनिश्चित करना एक कठिन काम है।

9.4.3 मुक्तिवादी सिद्धांत

1979 में मार्गरेट थैचर के नेतृत्व वाली ब्रिटिश रूढ़िवादी सरकार में मुक्तिवादी नागरिकता का पता लगाया जा सकता है, जिसने सामाजिक अधिकारों के ऊपर बाजार के अधिकारों को अधिक महत्व दिया। यह माना जाता था कि सामाजिक अधिकार (कल्याणकारी नीतियां) राज्य के लिए अपरिहार्य बन रहे थे, उनका तर्क है कि लोग सार्वजनिक पुनर्वितरण के बजाय निजी गतिविधि के माध्यम से अपने मूल्यों और वरीयताओं को आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं। स्वतंत्रतावादियों का कहना है कि नागरिकता व्यक्तियों के बीच मुक्त विकल्प और अनुबंध का उत्पाद है। यह बाज़ार-समाज को अपना आधार और नागरिक जीवन का उपयुक्त मॉडल मानती है। रॉबर्ट नोजिक इस सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादक हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने मूल्यों, विश्वासों और वरीयताओं को महसूस करने के लिए निजी गतिविधि, बाजार विनिमय और संघ का सहारा लेते हैं। उदारवादी बाजार अधिकारों को प्राथमिकता देते हैं जिन्हें 'उद्यमशीलता की स्वतंत्रता' के रूप में देखा जाता है। वे अपनी सुरक्षा के साथ-साथ अपनी संपत्ति अर्जित करने की स्वतंत्रता चाहते हैं। तदनुसार, संपत्ति के अधिकार की सुरक्षा के लिए, सुरक्षात्मक संस्थानों की आवश्यकता होती है और राज्य सभी के लिए सबसे कुशल साबित होता है। आलोचकों का कहना है कि मुक्त बाजार आधारित व्यक्तिवाद सामाजिक एकजुटता की पर्याप्त नींव प्रदान नहीं करता है।

9.4.4 समुदायवादी सिद्धांत

समुदायवादियों का तर्क है कि व्यक्ति का अस्तित्व समुदाय से पहले का नहीं है। वे व्यक्तिगत रूप पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित करके व्यक्तियों की सामाजिक प्रकृति की अनदेखी के लिए उदारवादियों की आलोचना करते हैं। इसके अलावा, समुदायवादियों का यह भी तर्क है कि उदारवादियों ने समुदाय के प्रति कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को कोई महत्व नहीं दिया है क्योंकि उनका ध्यान एक व्यक्ति के अधिकारों पर है। स्किनर ने कहा कि सार्वजनिक सेवा के माध्यम से व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उच्चतम सीमा तक बढ़ाया जाता है और व्यक्तिगत हितों की तलाश में आम हितों को प्राथमिकता दी जाती है। यहाँ, नागरिक की कल्पना किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में की जाती है जो राजनीतिक बहस और निर्णय लेने के माध्यम से समाज की भावी दिशा को आकार देने में सक्रिय भूमिका निभाता है। इस सिद्धांत का मुख्य नियम यह है कि एक नागरिक को समुदाय के साथ खुद की पहचान करनी चाहिए, जिसमें से वह खुद एक सदस्य है, और अपने राजनीतिक जीवन में भाग लेता है और नागरिक गुणों की प्राप्ति में योगदान देता है जिसमें दूसरों के लिए सम्मान और सार्वजनिक सेवा का महत्व शामिल है। इसलिए, उदारवादियों के विपरीत, जो व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं, समुदायवादी नागरिकता सामूहिक अधिकारों को अधिक महत्व देती है। हालांकि, आलोचकों का तर्क है कि यह मॉडल सामान्य परंपराओं वाले छोटे, समरूप समाज के लिए ही उपयुक्त होगा।

यह नागरिकता और बहुसंस्कृतिवाद के बारे में बहस को सामने लाता है। चूँकि आधुनिक समाजों को तेजी से वैश्वीकरण के कारण बहुसांस्कृतिक के रूप में पहचाना जा रहा है, अब व्यक्ति पर केंद्रित नागरिकता के विचार की उदार समझ को चुनौती दी जा रही है। आलोचकों का कहना है कि विशिष्ट संदर्भ जैसे सांस्कृतिक, धार्मिक, जातीय, भाषाई आदि

नागरिकता के निर्धारण कारक होने चाहिए। नागरिकों के समान अधिकारों को समूह–अधिकारों और अल्पसंख्यक समूहों की संस्कृति के साथ विरोधाभास में देखा जाता है। अपनी 1995 की पुस्तक में विल किमलिका, "बहुसांस्कृतिक नागरिकताः अल्पसंख्यक अधिकारों का उदारवादी सिद्धांत" ने तर्क दिया है कि अल्पसंख्यक संस्कृतियों के लिए कुछ प्रकार के 'सामूहिक अधिकार' उदार लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप हैं। कुछ उदारवादियों को चिंता है कि राष्ट्रीय या जातीय समूहों को रियायतें देने से लोकतंत्र को नुकसान पहुंचता है, क्यूंकि उनके लिए लोकतंत्र में नागरिकता सभी के साथ एक जैसे व्यवहार पर निर्भर करती है। किमलिका का तर्क है कि सामंजस्य के लिए अनुरोध वास्तव में अल्पसंख्यकों की इस इच्छा को दर्शाता है कि वे एकता चाहते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका में रूढ़िवादी यहूदी सैन्य ड्रेस कोड से छूट चाहते हैं ताकि वे अपने यर्मुलक पहन सकें। वे यह छूट अलग होने के लिए नहीं, परन्तु इसलिए चाहते हैं ताकि वे आर्मी का हिस्सा बनकर बाकी सैनिकों जैसे हो सकें।

9.4.5 मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, नागरिकता से जुड़े अधिकार वर्ग संघर्ष के उप-उत्पाद हैं। कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की मौजूदगी एक चुनौती है। ये वर्ग आर्थिक रूप से शक्तिशाली वर्गों के प्रभुत्व के कारण अपने नागरिक अधिकारों का प्रयोग करने की स्थिति में नहीं हैं। मार्क्सवादियों का मानना है कि चूंकि राज्य क्रांति के बाद दूर हो जाएगा, इसलिए नागरिकता की अवधारणा ही अस्थायी है। चूंकि कम्युनिस्ट राज्य में कोई राजनीतिक संस्थान नहीं हैं, इसलिए नागरिकता की कोई आवश्यकता नहीं होगी। हालाँकि, व्यवहार में, मतभेद रहे हैं। लेनिन ने सोवियत संविधान में 'राज्य' और 'नागरिक' शब्दों को समाप्त कर दिया, लेकिन स्टालिन ने उन्हें 1936 में बहाल कर दिया। इस संविधान ने व्यक्तियों के लिए कई अधिकार और कर्तव्य सूचीबद्ध किए।

एंथनी गिडेंस ने तर्क दिया कि आधुनिक लोकतंत्र और नागरिकता का विकास 16वीं शताब्दी में शुरू हुआ, जब राज्य ने जनसंख्या की निगरानी और उनके बारे में आँकड़ा संग्रहीत करने के लिए अपनी प्रशासनिक शक्ति को बढ़ाना शुरू कर दिया। यह अकेले सैन्य बल की मदद से नहीं किया जा सकता था और राज्य को सहकारी सामाजिक संबंधों के रूप में नागरिकों से सहयोग की आवश्यकता थी। राज्य ने अधीनस्थ समूहों के लिए राज्य को प्रभावित करने हेतु और अधिक अवसर उत्पन्न किए, जिसे गिडेंस सत्ता के 'दो–तरफा' विस्तार के रूप में संदर्भित करता है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि समकालीन पूंजीवाद 19वीं शताब्दी के पूंजीवाद से अलग है, क्योंकि इसके निर्माण में श्रम आन्दोलनों ने भी योगदान दिया है। इससे कल्याणकारी पूंजीवाद पर ज़ोर बढ़ा है, जो श्रमिकों के नागरिक अधिकारों का ध्यान रखता है। उन्होंने नागरिकता पर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को संशोधित किया है और निष्कर्ष निकाला है कि उदारवादी ढांचे के भीतर नागरिकता के अधिकारों को बनाए रखा जा सकता है।

9.4.6 बहुलतावादी सिद्धांत

यह सिद्धांत नागरिकता के विकास को बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया के रूप में मानता है और नागरिकता की अवधारणा के विकास में विभिन्न कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका पर ज़ोर देता है। नागरिकता का अर्थ है व्यक्ति और समुदाय के बीच *पारस्परिक* संबंध, जैसा कि डेविड हेल्ड का भी मानना था। इस सिद्धांत के अनुसार, "व्यक्ति समुदाय के खिलाफ कुछ अधिकारों का हकदार है", तथा वह समुदाय के प्रति कुछ कर्तव्यों का भी पालन करता है,

और इसलिए, नागरिकता का सार समुदाय के जीवन में निहित है। बहुलवादी सिद्धांत लिंग, जाति, धर्म, संपत्ति, शिक्षा, व्यवसाय या उम्र के आधार पर, लोगों के ख़िलाफ़ सभी प्रकार के *भेदभावों* की समीक्षा पर ज़ोर देता है। समकालीन दुनिया में, विभिन्न प्रकार के सामाजिक भेदभावों के खिलाफ कई सामाजिक आंदोलन शुरू किए गए हैं। इनमें नारीवादी आंदोलन, अश्वेत आंदोलन, धार्मिक सुधार आंदोलन, श्रमिक आंदोलन, बाल अधिकार आंदोलन, दलित आंदोलन, और आदिवासी आंदोलन शामिल हैं। बहुलवादी सिद्धांत यह सिफ़ारिश करता है कि इन सभी आंदोलनों के संदर्भ में नागरिकता की समस्या का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

9.4.7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य

नारीवादियों का तर्क है कि जीवन के नागरिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व के कारण महिलाएं दूसरी श्रेणी की नागरिक हैं। यह सामान्य रुझानों से स्पष्ट है, जैसे महिलाओं की किसी भी देश में राजनीतिक भागीदारी का स्तर कम है, जबकि पुरुषों की तुलना में उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी कम है। उन्होंने सार्वजनिक (राजनीतिक भागीदारी) और निजी (घरेलू) क्षेत्रों के बीच अंतर पर भी सवाल उठाया है, जो महिलाओं के अधिकारों की कीमत पर पुरुष प्रभुत्व को बनाए रखने का एक उपकरण है। इसीलिए, 1970 के दशक में, महिलाओं के आंदोलन का मुख्य नारा था 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक है'। जे एस मिल ने सुविदित रूप से कहा था कि, एक निरंकुश परिवार की तुलना में एक सामंतवादी परिवार समान नागरिकता के ज़्यादा अवसर हैं। पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने के लिए, उदारवादियों का मानना है कि संवैधानिक सुधार होना चाहिए जिससे पुरुष घरेलू कार्यों में योगदान करेंगे। इसे नागरिक नारीवाद कहा जाता है। समाजवादी नारीवादी मुक्त जन्म नियंत्रण, गर्भपात, महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे क्षेत्रों में विस्तार और घरेलू श्रम की राज्य द्वारा मान्यता चाहती हैं। कट्टरपंथी नारीवादी चाहते हैं कि उन्हें सक्रिय नागरिक बनाने के लिए महिलाओं का सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश हो।

9.4.8 गांधी के विचार

नागरिकता पर गांधी के विचार सार्वजनिक कल्याण और सक्रिय नागरिकता के विचारों पर केंद्रित थे। गांधी के अनुसार, सभी राज्यों में नागरिकों पर अत्याचार करने के लिए अक्सर शक्तिशाली सत्ता का उपयोग किया जाता है। इसीलिए, उनका मानना था कि किसी राज्य में केंद्रीयकृत शक्ति नहीं होनी चाहिए। धर्म (नैतिक कानून और कर्तव्य), अहिंसा (विचार और कर्म में अहिंसा) और सत्य (सत्य और ईमानदारी) गांधी की नागरिकता के तीन केंद्रीय स्तंभ थे। उन्होंने आगे कहा, क्यूंकि राज्य के पास शक्तिशाली सत्ता होती है, राज्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता और वह राज्य के दबाव का विरोध करने के लिए व्यक्ति से अपेक्षा करते हैं। उनका मानना था कि राज्य एक केंद्रित रूप में दबाव, एकरूपता और हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है, यही कारण है कि उनका आदर्श राज्य एक अहिंसक राज्य था जो स्व-शासन और आत्मनिर्भर होगा जिसमें अल्पसंख्यक अधिकारों के लिए उचित सम्मान के साथ बहुमत का शासन होगा। उसके साथ साथ, गांधी का मानना था कि स्वतंत्रता अविभाज्य है –जब तक दूसरे गुलाम हैं, तब तक कोई स्वयं भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसीलिए, उन्होंने दुनिया के "नागरिकों की अवधारणा" की ओर संकेत किया, जहाँ पूरी दुनिया एक व्यक्ति की गतिविधि के लिए कार्यक्षेत्र है। यह उनके शब्दों में निहित है कि, "स्थानीय रूप से सोचें, विश्व स्तर पर कार्य करें"। दुनिया भर के विचारों से खुद को अवगत कराना चाहिए और स्वीकार करना चाहिए कि दुनिया में हर संघर्ष इंसान का अपना संघर्ष है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिकता पर टी एच मार्शल के विचार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नागरिकता के उदार और गणतंत्रात्मक अवधारणाओं के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3) नागरिकता पर नारीवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 वैश्विक नागरिकता का विचार

वैश्विक नागरिकता के विचार के समर्थकों का मानना है कि सभी लोगों के पास इस दुनिया का नागरिक होने के आधार पर कुछ अधिकार और जिम्मेदारियां हैं। वैश्वीकरण के तहत, नागरिकता के क्षेत्रीय सीमित विचार को प्रवसन, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसी गतिविधियों द्वारा चुनौती दी जा रही है। हना आरेण्ड्ट के अनुसार, वैश्विक नागरिकता का अर्थ है 'दुनिया के लिए एक नैतिक ज़िम्मेदारी'। अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन ऑक्सफ़ैम के अनुसार, "एक वैश्विक नागरिक वह है जो व्यापक दुनिया और उसमें अपनी जगह के बारे में जानता और समझता है। वे अपने समुदाय में सक्रिय भूमिका निभाते हैं, और दूसरों के साथ मिलकर हमारे ग्रह को अधिक समान, निष्पक्ष और टिकाऊ बनाने के लिए काम करते हैं।" इमैनुअल कांट की विश्व नागरिकता की अवधारणाएं आचरण के लिए व्यक्तिगत जिम्मेदारी को महत्व देती हैं। व्यक्तिगत गतिविधियों की वजह से पर्यावरण के लिए हानिकारक परिणाम हो सकते हैं, और वे दुनिया में कहीं भी लोगों के लिए सहानुभूति की अपेक्षा करती हैं। वे कार्यों के गुण पर जोर देते हैं, जो व्यापक समुदाय को लाभान्वित करते हैं और वे मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय समाज संयुक्त शासन में भागीदारी

के लिए सीमित अवसर प्रदान करता है क्योंकि विश्व सरकार का विचार अभी भी अस्पष्ट है। वैश्विक नागरिकता के विचार की आलोचना की जा सकती है, क्योंकि यह काफी हद तक दूसरों के प्रति कर्तव्यों और समुदायों के प्रति निष्ठा पर केंद्रित है जो सक्रिय नागरिकता के बजाय राष्ट्र-राज्य से अधिक व्यापक हैं। पारंपरिक उपागम तर्क देते हैं कि राष्ट्र-राज्य ही राजनीतिक समुदाय का प्रमुख रूप है। हालांकि, गैर-पारंपरिक सुरक्षा खतरों जैसे जलवायु परिवर्तन, खाद्य-जल-ऊर्जा सुरक्षा, आतंकवाद आदि के समय में वैश्विक नागरिकता के विचार को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। ऐसे खतरों से निपटने के लिए, राष्ट्र-राज्यों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए और इस सहयोग की समग्र रूपरेखा होनी चाहिए; इन मुद्दों से निपटने में हर व्यक्ति की भूमिका होती है। यह वैश्विक नागरिकता के समान है जहां लोग दूसरों के लिए भी बेहतर भविष्य के बारे में सोचते हैं, जो अपने देश का हिस्सा नहीं हैं, अर्थात दुनिया को सभी लोगों के लिए रहने के लिए बेहतर जगह बनाना है।

बोध प्रश्न 3

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) वैश्विक नागरिकता से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 सारांश

नागरिकता राज्य और व्यक्ति के बीच का संबंध है। नागरिकता से जुड़े तीन प्रकार के अधिकार हैं – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार। नागरिकता के शुरुआती संस्करणों को बहिष्कृत माना गया था क्योंकि दासों, महिलाओं और गैर-संपत्ति वर्ग जैसे समूहों को नागरिक अधिकार नहीं दिए गए थे। यह समय के साथ बदल गया है और देश आज सभी व्यक्तियों के लिए नागरिकता के अधिकारों का विस्तार करने का प्रयास कर रहे हैं। किसी देश की राजनीति में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी लोगों की इच्छा के अनुसार राजनीतिक स्थान को अनुकूल बनाती है, जो किसी भी लोकतंत्र की वास्तविक विशेषता है। नागरिकता का समकालीन ज्ञान उदार परंपरा के काफी नज़दीक है, जहां व्यक्तियों को राज्य के ख़िलाफ़ कुछ अधिकार मिले हैं। उसके साथ साथ, गांधीवादी, नारीवादी और वैश्विक जैसे अन्य दृष्टिकोण हैं जो लिंग और राष्ट्रीय बाधाओं को लांघकर नागरिकता की अवधारणा में नई अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करते हैं।

9.7 संदर्भ

आचार्य, अशोक, (2012), *'वैश्वीकरण की दुनिया में नागरिकता',* नई दिल्लीः पीयरसन

डॉन, ओलिवर और डेरेक, हीटर, (1994), *द फाउंडेशन ऑफ़ सिटिजनशिप,* न्यूयॉर्कः हार्वेस्टर व्हीटशिफ़

किमलिका, डब्ल्यू. (1995) *बहुसांस्कृतिक नागरिकता,* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

लाल, वी. (2008), गांधी, नागरिकता और अच्छे नागरिक समाज का विचार।

लिंकलैटर, एंड्रयू. (1998), *कॉस्मोपॉलिटन नागरिकता,* नागरिकता अध्ययन, 2: 1, 23-41

मार्शल, टी. एच. (1950), नागरिकता और सामाजिक वर्ग और अन्य निबंध, कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

पोकॉक, जे, 1995 (1992) "आदर्श नागरिकता के बाद से नागरिकता का आदर्श", नागरिकता के सिद्धांत में, आर. बीनर (सं.), अल्बानीः स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयॉर्क प्रेस, 29-53

यंग, आई. एम., (1989), "पॉलिटी एंड ग्रुप डिफरेंसः ए क्रिटिक ऑफ़ द आइडियल ऑफ़ यूनिवर्सल सिटिजनशिप", नीतिशास्त्र, 99 : 250-274

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में तीन प्रकार के अधिकारों का उल्लेख होना चाहिए – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक।

2) आपके उत्तर में तीन प्रकार के अधिकारों का उल्लेख होना चाहिए – नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक?

बोध प्रश्न 2

1) नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों पर प्रकाश डालें और विशिष्ट रूप से यह भी दर्शाइये कि सामाजिक अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए आधार बनाते हैं?

2) इस बिंदु पर प्रकाश डालिए कि उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र की मांग करते हैं लेकिन रिपब्लिकन नागरिकों की सक्रिय भागीदारी के साथ विचारशील लोकतंत्र को बढ़ावा देते हैं?

3) अधिकारों की नारीवादी अवधारणा का तर्क है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व के कारण महिलाएं दूसरी श्रेणी की नागरिक हैं; वे सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच अंतर पर भी सवाल उठाते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) वैश्विक नागरिकता हमारे समुदाय में व्यक्तियों की सक्रिय भूमिका और हमारे ग्रह को अधिक समान, निष्पक्ष और टिकाऊ बनाने के प्रयासों के लिए तर्क प्रस्तुत करती है।

इकाई 10 नागरिक समाज और राज्य*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राज्य के सिद्धान्त

- 10.2.1 पुरातन
- 10.2.2 उदार वैयक्तिक
- 10.2.3 मॉर्क्सवादी

10.3 नागरिक समाज की संकल्पना

10.4 राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने राजनीति शास्त्र के सबसे अधिक मूल और महत्वपूर्ण संकल्पना पर चर्चा की है जोकि राज्य है। इसके साथ ही नागरिक समाज की संकल्पना पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- राज्य क्या है, इसे समझ पाएँगे;
- नागरिक समाज क्या है और इसकी सैद्धान्तिक आधारशिला को जान सकेंगे; तथा
- राज्य और नागरिक समाज के बीच क्या सम्बन्ध है, इसकी समीक्षा कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान में राज्य का विचार केन्द्र में अपना स्थान रखता है। प्रो. गार्नर के अनुसार "राजनीति विज्ञान का आरंभ राज्य से होता है और इसका अन्त भी राज्य पर जाकर रूकता है।" राज्य की संकल्पना और इसके अनुक्रम बंधन समय बीतने के साथ विकसित होते चले गए। राज्य की प्राधिकारिता के विचार से इसका केन्द्र बिन्दु लोगों के कर्त्तव्य में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार से राजनीतिक सिद्धान्त में नागरिक समाज का उद्‌गम हुआ और यह सबसे अधिक वाद-विवाद की एक संकल्पना के रूप में उभर कर हमारे सामने आई है। इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि नागरिक समाज की संकल्पना अटूट रूप से आधुनिक राज्य से जुड़ी हुई है। राज्य और नागरिक समाज के बीच के सम्बन्धों के कारणों ने अनेक मुद्दे खड़े कर दिए गए हैं जैसे कि : राज्य और नागरिक समाज की क्या संकल्पना है? इनके बीच सम्बन्धों की क्या प्रकृति है, अथवा वे किस प्रकार के हैं? इन सब मुद्दों पर हम आगे आने वाले भागों में विस्तार से चर्चा करेंगे।

* डॉ. राज कुमार शर्मा, अकाद्‌मिक असोसिएट, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, एवं हमेलता गुना शेखरन, शोध विद्यार्थी, जवाहर लालनेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

10.2 राज्य के सिद्धान्त

राज्य की संकल्पना राजनीतिक सिद्धान्त में प्रमुख स्थान रखती है। इसमें राज्य को परिभाषित किया गया है तथा अनेक संगठन इसको परिभाषित व पुनः परिभाषित कई शताब्दियों से करते आए हैं। हमारे सामने प्राचीन काल से की गई परिभाषाओं के साक्ष्य इतिहास में मौजूद हैं। राज्य की अवधारणा प्लेटो और अरस्तू की नगर राज्य की उनके द्वारा की गई परिभाषा से आरंभ होती है। उन दोनों की दृष्टि और विचार में राज्य प्राकृतिक, आवश्यक और नैतिक संस्थान था। राज्य अथवा नगर राज्य नैतिक आचरण और अच्छे जीवन का सर्वोच्च स्तर माना गया था। समकालीन परिभाषा की उत्पत्ति प्रसिद्ध विद्वान *निक्कोलो मैकियावेल्ली* (Niccolo Machiavelli) से है जो अपने विचार व्यक्त करते हुए इसकी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं कि *"शक्ति जो कि मनुष्यों पर प्राधिकृत है।"* इसी परिभाषा को स्वीकार करते हुए मैक्स वेबर द्वारा भी राज्य का स्पष्टीकरण करते हुए इसकी परिभाषा प्रस्तुत की गयी है जो बहुत ही प्रसिद्ध है और स्वीकृत भी है। वेबर राज्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि *"मानव समुदाय जोकि (सफलतापूर्वक) दिए गए भूभाग या प्रदेश के अन्दर भौतिक बल का विधिवत् प्रयोग करने के एकाधिकार का दावा करता है।"*

10.2.1 पुरातन

प्लेटो ने अपने पूरे शोध कार्यों द्वारा *आदर्श राज्य* (*Ideal State*) की स्थापना की है। उनके अनुसार जिस राज्य पर दार्शनिक शासक शासन करेगा, वह राज्य आदर्श होगा यह राज्य किसी दिव्य संस्थान से कम नहीं होगा, जिसका सब अनुकरण करना चाहेंगे। उन्होंने अपने आदर्श राज्य का वर्णन कालातीत और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त पर आधारित बताया है। उन्होंने सुझाव दिया है कि एक आदर्श राज्य की मौजूदगी बुराइयों को समाप्त करके बीमार राजनीति में सुधार कर सकेगी और उसको एक अति सुन्दर रूप प्रदान कर सकेगी। प्लेटो का विश्वास था कि आदर्श राज्य के संचालन के लिए तीन अलग-अलग वर्गों के लोग सम्मिलित होंगे जैसे कि शासक, सेना और लोग या नागरिक। इसलिए आदर्श राज्य की चार प्रमुख योग्यताएँ होंगी – बुद्धिमत्ता, साहस, अनुशासन तथा न्याय। शासकों के पास बुद्धिमत्ता होगी, योद्धाओं के पास साहस होगा, अनुशासन इसलिए होगा क्योंकि समाज में इस बात पर सामान्य अनुबंध होगा कि शासन कौन करेगा, और न्याय इस बात का होगा कि प्रत्येक व्यक्ति वही कार्य करेगा, जो उसके स्वभाव के अनुरूप है। प्लेटो इस बात पर विशेष जोर देते थे कि एक अच्छा राजनीतिक समुदाय समान रूप से लोगों की भलाई के लिए और अपने सभी नागरिकों को समान रूप से उनका कल्याण व हितलाभ करने के लिए निरंतर प्रयास करता रहेगा। इस प्रकार के समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि समुदाय की भावना दृढ़ होगी जिस समुदाय के लोग सदस्य और भागीदार हैं। अपने खर्चों का भार किसी भी अन्य व्यक्ति पर नहीं होगा और सभी तरह के लाभों की हिस्सेदारी में सबको उचित लाभ प्राप्त होगा। दार्शनिक शासक एक अच्छे प्रकार का शासक होगा, क्योंकि वह सत्ता हथियाने या पैसे बनाने की तरफ सबसे कम ध्यान देगा।

अरस्तू ने राज्य को एक *समुदाय* के रूप में परिभाषित किया है, राज्य के अस्तित्व का लक्ष्य एक व्यक्ति की अधिकतम भलाई होना चाहिए। अरस्तू ने राज्य के विकास की तीन अवस्थाओं की पहचान की हैः प्रथम दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं जोकि लोगों को एक साथ लाने में उपकरण अथवा उपाय का काम करते थे। प्रजनन मूल प्रवृत्ति है जोकि पुरुषों और महिलाओं को संगठित या एकीकृत करता है और दूसरी प्रवृत्ति है स्वयं संरक्षण। इनमें से प्रथम विषय जो उभर कर आता है, वह है परिवार .... परिवार एक संस्था है जो व्यक्ति की प्रतिदिन की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए प्रकृति ने स्थापित की है। *परिवार* राज्य की

रचना में *प्रथम* अवस्था है। *द्वितीय* अवस्था थी जब बहुत सारे परिवार मिलकर या संगठित होते हैं और इस संस्था का उद्देश्य दैनिक आवश्यकताओं की आपूर्ति से अधिक कार्य करने का होता है। अतः फिर एक गाँव बनता है जोकि अपने प्राकृतिक स्वरूप में समान अवतरण वाले परिवारों का एक संघ है। उन्होंने *तृतीय* अवस्था को इस तरह से परिभाषित किया है कि जब अनेक गाँव मिलकर एक सम्पूर्ण समुदाय के रूप में संगठित हो जाते हैं; व्यापक रूप से लगभग आत्मनिर्भर होते हैं तब इसके परिणामस्वरूप राज्य की स्थापना हो जाती है या राज्य का उद्‌गम होता है। जीवन की सभी आवश्यकताओं का उत्पादन होने लगता है और अच्छे जीवन जीने के कारणों के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखता है। अरस्तू का मानना है कि राज्य एक प्राकृतिक समाज है, मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य है अच्छा जीवन जोकि केवल राज्य में ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए, राज्य एक प्राकृतिक समाज है। मनुष्य प्राकृतिक रूप से एक राजनीतिक प्राणी है और वह व्यक्ति जो संयोग से नहीं बल्कि अपने स्वभाव की वजह से राज्य के बिना जीवनयापन करता है, वह या तो बुरा आदमी है या फिर वह मानवता से ऊपर है। अरस्तू के अनुसार राज्य राजनीतिक संघ का उच्चतम स्वरूप है क्योंकि वह सामाजिक विकास के शिखर का प्रतिनिधित्व करता है। राज्य व्यक्ति से पहले भी मौजूद था क्योंकि व्यक्ति को सम्पूर्ण मानवता की प्राप्ति कराने के लिए वह उसे अवसरों की उपलब्धि कराता है। सामाजिक सम्बन्धन व्यक्ति को उनकी मानव जाति की पहचान कराते हैं।

अरस्तू और प्लेटो दोनों के लिए राज्य और इसके कानून किसी परंपरा के परिणाम से अधिक महत्व रखते थे। यह एक प्राकृतिक संस्थान या संस्था थी जो व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रयोजनों को दर्शाती थी क्योंकि मानव की प्रवृत्ति सुसामाजिक और सामाजिक है। उन दोनों के लिए राज्य वास्तविकता का सम्पूर्ण स्वरूप या प्रतिरूप था। वे दोनों ही राज्य और समाज के बीच कोई अन्तर नहीं करते थे, उनके लिए राज्य नैतिक सत्ता थी, जिसका उद्देश्य अच्छा तथा सुखी जीवन बनाए रखना था। *रिपब्लिक* (*Republic*) में सिसरो (*Cicero*) का उद्देश्य प्लेटो के समान ही आदर्श राज्य की संकल्पना का प्रदर्शन करना था। हालाँकि, सिसरो के आदर्श राज्य की संकल्पना राज्य (polis) के समान नहीं थी जैसे कि प्लेटो ने अपने *रिपब्लिक* में स्थापित किया। सिसरो के अनुसार यह एक राष्ट्रमण्डल (commonwealth) है। उसके लिए राष्ट्रमण्डल लोगों का एक संयोजन है जिसके असंख्य सदस्य एक साथ समझौता करते हुए, न्याय का सम्मान करते हुए तथा सामान्य अच्छे कार्यों के लिए परस्पर भागीदारी करते हैं। उन्होंने राष्ट्रमण्डल की रचना के लिए तीन कारणों की पहचान की है। ऐसी संस्था का प्रथम कारण सह है कि मनुष्य एकल, वैरागी या असामाजिक प्राणी नहीं है बल्कि वह ऐसी प्रकृति के साथ पैदा होता है कि यदि उसके पास हर प्रकार की समृद्धि भी है, तो भी वह अपने साथियों से अलग नहीं होना चाहेगा। दूसरा उसका राज्य इस अनुबंध पर आधारित है कि यह सामान्य हित को साझा करेगा। उनकी दृष्टि में यह मनुष्य का प्रासंगिक व्यवहार है जोकि राज्य की स्थापना का जिम्मेदार तत्व है तथा जो लोगों के सामान्य भले व हितों की प्राप्ति के लिए लाभदायक स्रोत था। सामान्य हित को साझा करने की चाह इतनी तीव्र है कि लोग आनंद और आराम के सभी प्रलोभनों का त्याग कर देते हैं। तृतीय समूह के सभी सदस्यों को इस बात पर एक दूसरे से सहमत होना चाहिए कि राष्ट्रमण्डल में कौन से कानून का शासन होगा। सिसरो सरकार के *तीन* प्रकारों का वर्णन करता है, सरकार – राजसी सत्ता, कुलीन तंत्र और लोकतंत्र। परन्तु सरकार के प्रत्येक स्वरूप में भ्रष्टाचार तथा अस्थिरता के कीटाणु है, जो सरकार को गिराने का काम करते हैं। केवल सरकार का मिलाजुला स्वरूप ही स्थायीतत्व और भ्रष्टाचार मुक्त समाज की समुचित गारन्टी देता है। सिसरो सरकार के गणतंत्रीय स्वरूप को प्राथमिकता देते हैं जोकि निगरानी और संतुलन द्वारा स्थायित्व तथा राजनीतिक व्यवस्था का भला करती है।

10.2.2 उदार वैयक्तिक

राज्य के सिद्धान्त पर मध्यकालीन समय में ही *रोमन चर्च* की उक्ति का प्रभाव रहा है। पाँचवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य का पतन हो गया और इसके बाद पश्चिम में एक भी शक्तिशाली धर्म निरपेक्ष सरकार नहीं थी। रोम में शासन कैथोलिक चर्च के पादरियों पर केन्द्रित हो गया था अर्थात् वहाँ पर चर्च का शासन ही प्रमुख था। शक्ति के इस शून्यकाल में, पश्चिम में चर्च का उदय एक प्रमुख शक्ति के तौर पर हुआ। धीरे-धीरे सामाजिक जीवन का रूप बदल कर चर्च के कानूनों के द्वारा शासित धार्मिक जीवन बन कर रह गया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में आधुनिक पश्चिम यूरोप की शुरुआत के साथ ही राज्य का विचार फिर से अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया। अनेक विद्वानों द्वारा बहुत सारी परिभाषाएँ दी गई। इनमें सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण सिद्धान्तवादी निक्कोलो मैकियावेल्ली थे। अभी तक सभी राजनीतिक चिन्तक, प्लेटो और अरस्तू से लेकर मध्यकालीन समय के सभी विद्वान, इस केन्द्रीय प्रश्न पर ध्यान लगाए हुए थे कि राज्य का लक्ष्य क्या है। उनका मानना था कि राज्य की शक्ति नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है। परन्तु मैकियावेल्ली ने अपनी एक अलग ही विचारधारा बनाई। उनका मानना था कि राज्य की शक्ति ही राज्य का साध्य है अर्थात् प्रत्येक राज्य को अपनी शक्ति को अधिकतम स्तर तक बढ़ाना चाहिए। इस उद्यम में यदि राज्य असफल हो जाता है तो राज्य में उथल-पुथल की परिस्थितियाँ होंगी। इसके परिणामस्वरूप, वह अपना सारा ध्यान उन साधनों पर लगाते हैं जिनसे शक्ति का अर्जन, धारण तथा विस्तार हो सके। उनके सिद्धान्त राज्य का तर्क (Raison D' Etat) के अनुसार, राज्य को अपने लोगों का भला करने से पहले खुद को संरक्षित कर लेना चाहिए।

मैकियावेल्ली का मानना है कि राज्य मानव संस्था का सबसे उत्तम स्वरूप है। राज्य की एक देवता की तरह से पूजा करनी चाहिए, चाहे व्यक्ति को अपना बलिदान ही क्यों न देना पड़े। राज्य के कुछ प्राथमिक उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ हैं, जैसे कि, जीवन की सुरक्षा व संरक्षण, कानून और व्यवस्था को बनाए रखना और अपने लोगों के हितों और उनके लिए कल्याणकारी कार्यों की देखभाल करना है। अतः इन सब कार्यों के निष्पादन के लिए राज्य के पास समुचित साधनों का होना अत्यंत आवश्यक है। मैकियावेल्ली के राज्य का स्वरूप धर्म निरपेक्ष है और उसका चर्च से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह नैतिक रूप से अलग-अलग था तथा स्वयं से बाहर की किसी चीज की तरफ इसका कोई कर्त्तव्य नहीं था। इनका मानना था कि अच्छे कानून, धर्म तथा नागरिकों की सेना एक शक्तिशाली व स्थाई राज्य की स्थापना में मदद करते हैं।

राज्य के विचार पर सिद्धान्तकारियों के बीच मतभेद हैं। हॉब्बस का मानना है कि प्राकृतिक स्थिति की विशेषता यह है कि "इसमें हर व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध लड़ाई करता है।" वह हमेशा ही प्रतिस्पर्धा की स्थिति में बना रहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को यह प्राकृतिक अधिकार है कि वह सब कुछ कर सकता है, इसमें अन्य व्यक्तियों का किसी प्रकार का लाभ या हित को ध्यान में नहीं रखा जाता है। हॉब्बस के अनुसार, प्राकृतिक स्थिति में अस्तित्व की विशेषताएँ हैं: "अकेला, गरीब, बुरा, पाशविक तथा अल्पकालीन"। प्राकृतिक स्थिति में सिर्फ प्राकृतिक कानून होते हैं, जिनका निर्माण लोग मिल-जुल कर नहीं करते बल्कि ये आत्मरक्षण पर आधारित सिद्धान्त हैं। प्रकृति के प्रथम कानून के बारे में हॉब्बस कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी आशानुरूप शान्ति बनाए रखने के लिए भरसक प्रयास करे, और जब वह इसे प्राप्त नहीं कर सकता है तो इस स्थिति में उसे युद्ध करने के लिए सभी तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। उनकी दृष्टि में अस्थिरता की यह स्थिति तब खत्म होगी जब व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का त्याग कर देगा और अपनी स्व-संप्रभुता को किसी उच्च नागरिक प्राधिकारिता या लेवियाथन (Levaithan) को हस्तांतरित

कर देगा। हॉब्बस के अनुसार, संप्रभु की सत्ता निरंकुश है और उसकी मर्ज़ी ही कानून है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि संप्रभुता के अधिकार में सब कुछ सम्मिलित है, जिन मामलों में संप्रभुता मौन रहती है, उन विषयों में प्रजा सब कुछ करने के लिए मुक्त होती है। सामाजिक संविदा व्यक्ति को प्रकृति की स्थिति को त्यागकर नागरिक समाज में प्रवेश करने की स्वीकृति प्रदान करती है। परन्तु प्राकृतिक स्थिति का खतरा तब वापस आ जाता है जब सरकार का पतन हो जाता है। लेबियथान की शक्ति निर्विरोध है और इसका पतन मुश्किल है परन्तु जब यह प्रजा की सुरक्षा में असमर्थ होता है, तब इसका पतन संभव है।

जान लॉक का कहना है कि प्राकृतिक स्थिति का मतलब सरकार विहीन स्थिति किन्तु आपसी कर्त्तव्य विहीनता नहीं। आत्मरक्षा के अलावा प्रकृति का कानून यह भी सिखाता है कि सभी मानव समान और आजाद हैं तथा एक व्यक्ति दूसरे के जीवन, स्वतंत्रता तथा संपत्ति को हानि नहीं पहुँचाएगा। हॉब्बस के विपरीत, लॉक विश्वास करते हैं कि व्यक्ति प्राकृतिक रूप से सम्पन्न है और ये अधिकार उसको जन्मजात मिले हुए हैं (जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार) और प्राकृतिक स्थिति शान्तिपूर्वक भी हो सकती है। व्यक्ति राष्ट्रमण्डल का निर्माण करने के लिए सहमति देते हैं क्योंकि वे एक ऐसी निष्पक्ष शक्ति की स्थापना करना चाहते हैं जो उनके झगड़े सुलझाए और उनकी क्षति का निवारण करें। लॉक विश्वास करते हैं कि जीवन जीने, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार सब प्राकृतिक अधिकार हैं जो हमें नागरिक समाज की रचना होने से पूर्व ही प्राप्त हैं। प्राकृतिक स्थिति का विचार रूसो के राजनीतिक दर्शन में भी केन्द्रित हैं। उन्होंने हॉब्बस की प्रकृति की स्थिति की संकल्पना की आलोचना की है, जो समाज के विरुद्ध है। प्राकृतिक स्थिति पर रूसो अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इसका मतलब समाजीकरण से पूर्व आदिम राज्य है, और इसलिए इसमें गर्व, जलन या दूसरों का डर जैसे सामाजिक भाव नहीं है। रूसो (Rousseau) के दृष्टिकोण में, प्राकृतिक स्थिति नैतिक रूप से तटस्थ और शान्तिपूर्ण स्थिति होती है जिसमें एकाकी व्यक्ति अपनी बुनियादी इच्छाओं के अनुसार कार्य करते हैं और साथ ही आत्मरक्षा की प्राकृतिक इच्छा के आधार पर भी। हालाँकि, आत्मरक्षा की प्रवृत्ति पर दया रूपी दूसरी प्राकृतिक इच्छा का असर पड़ता है। रूसो ने इसको अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, *डिस्कोर्स ऑफ दि ओरिजन ऑफ इनइक्वलिटी* (*Discourse on the Origin of Inequality*) (1775), में कहा है कि व्यक्ति प्राकृतिक स्थिति को सभ्य होने के बाद छोड़ देते हैं – इसका मतलब है कि वे एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं।

हेगेल के लिए "राज्य का अर्थ पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन है।" वे कहते हैं कि यह दिव्य शक्ति का पृथ्वी पर अवतरण है। राज्य *नैतिक जीवन* (*Ethical Life*) का *तीसरा* पल है, यह परिवार और नागरिक समाज को चलाने वाले सिद्धान्तों का संश्लेषण है। विशेषकर वह अपने समय के राष्ट्र राज्य में वह दो अवधारणाओं का मिलन देखते हैं – राज्य की नैतिक समुदाय रूपी संकल्पना जो पुराने समय में भी तथा राज्य की समकालीन संकल्पना जो स्वतंत्रता तथा व्यक्तिवाद का समर्थन करती है। उन्होंने राज्य के विचार को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया है – (क) राज्य की तत्काल वास्तविकता, एक स्वयं-निर्भर प्राणी के रूप में या संवैधानिक कानून, (ख) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत राज्यों का दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध; (ग) दिमाग या आत्मा का सार्वभौमिक विचार जो विश्व इतिहास की प्रक्रिया में अपने आपको अस्तित्व में लाता है। राज्य पूर्ण रूप से तर्कसंगत था तथा इतिहास के दौरान स्वयं को स्थापित करने के लिए इसके पास मौलिक इच्छाशक्ति थी तथा इस वजह से राज्य अविनाशी है। हेगेल का मानना है कि राज्य अपने आप में ही एक ध्येय है, यह एक दिमाग है जो इतिहास के द्वारा स्वयं को वास्तविकता में लाता है।

10.2.3 मॉर्क्सवादी

राज्य का मॉर्क्सवादी सिद्धान्त राजनीति विज्ञान के सबसे प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है। मॉर्क्सवादी विचार उदार राज्य की मूल संकल्पना को चुनौती देता है, वे कहते हैं कि जब तक उदार राज्य का उन्मूलन नहीं होगा तब तक आम आदमी का उद्धार होना कभी भी संभव नहीं होगा। कार्ल मार्क्स और फ्रेडेरिक एजेंलस अपनी पुस्तक *"कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो"* (*Communist Manifesto*) में राज्य की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि "राजनीतिक शक्ति, ठीक से कहा जाए तो यह एक संगठित वर्ग की सत्ता है जो दूसरे वर्ग, को दबाती व दमन करती है।" इसके साथ यह भी जोड़ते हैं कि "आधुनिक राज्य की जो कार्यकारी है, वह कुछ नहीं बल्कि एक प्रबंधन समिति है, जो सम्पूर्ण पूँजीपति वर्ग के सामान्य कार्यों का संचालन करती है।" उनके लिए राज्य अन्नत नहीं है, यह अंत में समाप्त हो जाएगा। मॉर्क्स राज्य के सम्बन्ध में बताते हैं कि सरकार किसी भी प्रकार की क्यों न हो यह तो एक बुराई ही है। यह अधिरचना का हिस्सा है, और इसकी मूल शर्त यह है कि यह आर्थिक आधारों पर निर्धारित होता है। यदि इतिहास को ध्यान से देखा जाए, तो उत्पादन की प्रत्येक विधि जब वह बढ़ेगी या उसका संवर्धन होगा इसके अपने ही राजनीतिक संगठन को ही लाभ मिलेगा। इसका विकल्प मॉर्क्स वर्गहीन और राज्यविहीन समाज को बताते हैं, जिसमें वास्तविक लोकतन्त्र और सम्पूर्ण साम्यवाद होगा तथा राजनीतिक राज्य नष्ट हो जाएगा।

तथापि, *नव मॉर्क्सवादी* (*Neo-Marxists*) इस विचार से पूरी तरह से सहमति नहीं हैं कि राज्य एक विशेष वर्ग का साधन है या औजार है। वे तर्क देते हैं कि यह विचार विशेषकर रूस के बोल्शिविक समाज में सच हो सकता है, परन्तु वर्तमान समय के लिए इसे सामान्य रूप से ठीक नहीं माना जा सकता है। वे यह भी तर्क देते हैं कि राज्य का धीरे-धीरे समाप्त होने की मॉर्क्स द्वारा की गई घोषणा अब धूमिल हो चुकी हैं। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के नाम पर अब राज्य और शक्तिशाली हो जाएगा। अपने शोध कार्य, *दि स्टेट इन कैपिटेलिस्ट सोसाइटी : दि अनालिसिस ऑफ दि वेस्टर्न सिस्टम ऑफ पावर* (*The State in Capitalist Society :The Analysis of the Western System of Power*) (1973), में रेल्फ मिलिबैंड (Ralph Miliband) ने कहा है कि राज्य के सम्बन्ध में एक प्रारंभिक समस्या है जिसके समाधान की नितान्त आवश्यकता है, यदि आप इसकी प्रकृति तथा भूमिका पर चर्चा करना चाहते हैं। यह वास्तविक तथ्य है कि "राज्य" नाम की कोई वस्तु नहीं है और इस वजह से इसका आस्तित्व नहीं है। राज्य अपनी अनेक विशिष्ट संस्थाओं के साथ उपस्थित रहता है, जोकि इसको वास्तविक रूप प्रदान करते हैं और आपसी सहयोग करने की वजह से इनको राज्य व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। मिलिबैंड कहते हैं कि राज्य की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए, इससे सम्बन्धित सभी संस्थाओं का अध्ययन करना अनिवार्य है जो कि पूँजीपति राज्य का हिस्सा हैं। वे यह भी कहते हैं कि ये संस्थाएँ राज्य के विभिन्न तत्व हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) राज्य का मॉर्क्सवादी सिद्धान्त क्या है?

.....

.....

.....

10.3 नागरिक समाज की संकल्पना

नागरिक समाज का विचार राजनीतिक सिद्धान्त में काफी महत्वपूर्ण है। नागरिक समाज का विचार बहुत ही पुराना है, किन्तु यह पिछले कुछ दशकों से बहुत ही महत्वपूर्ण बन कर उभरा है, क्योंकि संपूर्ण विश्व में राजनीतिक स्थितियों का भरपूर विकास हुआ है, विशेषकर पूर्वी यूरोप में भूतपूर्व कम्युनिस्ट देशों के पतन के बाद यह स्थिति सामने आई है। इसके अतिरिक्त, अनेक बार गैर-राज्य अभिकर्त्ताओं, खासतौर पर ग़ैर-सरकारी संगठनों और विभिन्न मुद्दों पर आधारित आन्दोलन सार्वजनिक नीति को आकार देने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। "नागरिक समाज" की शब्दावली को सिसरो (सोसाइटीस सिविलिस) के शोध कार्यों के माध्यम से खोज़ा जा सकता है और अन्य प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के द्वारा जाना जा सकता है। यद्यपि पुरातनकाल में नागरिक समाज की राज्य से तुलना की जाती थी। नागरिक समाज के आधुनिक विचार का जन्म अठारहवीं शताब्दी के स्कॉटिस और महाद्वीपीय पुनर्जागरण काल के दौरान हुआ है, जान लॉक, थॉमस पैने से लेकर हेगेल तक के राजनीतिक विद्वानों ने नागरिक समाज की अवधारणा का पोषण किया है। उनके अनुसार, नागरिक समाज वह क्षेत्र है, जो राज्य के समानान्तर है पर इससे अलग है। यह वह स्थान है, जहाँ पर नागरिक अपनी स्वेच्छा से अपने हित और इच्छाओं के अनुरूप मिलते हैं। यह नई सोच बदलती आर्थिक वास्तविकताओं को दर्शाती थी – जैसे कि निजी सम्पत्ति का उदय, बाजार आधारित प्रतिस्पर्धा और पूँजीपति वर्ग। अमेरिका और फ्रांस की क्रान्ति द्वारा दिए गए स्वतंत्रता के विचार ने भी इस पर असर डाला। नागरिक समाज के विचार को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आघात लगा और इसका स्तर दूसरे स्थान पर पहुँच गया था क्योंकि राजनीतिक सिद्धान्तकारों का विशेष ध्यान औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप जो राजनीतिक और सामाजिक बदलाव आए, उन पर केन्द्रित हो गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मॉर्क्सवादी लेखक व सिद्धान्तकार एनटोनियो ग्राम्सी ने अपने कार्यों में इसका इस्तेमाल किया। उनके अनुसार नागरिक समाज स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधि का विशेष केन्द्र हैं और अत्याचारी शासन के विरुद्ध महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

नागरिक समाज की संकल्पना का विस्तार व्यक्ति और उसके अधिकार, दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों तथा राज्य के साथ रिश्तों के साथ हुआ है। नागरिक समाज की गूँज थॉमस हॉब्बस और जान लॉक के सिद्धान्तों में दिखाई पड़ती है। हॉब्बस का मानना है कि राज्य की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि वह अपने नागरिकों को शांति और उनके स्वयं के संरक्षण की गारन्टी प्रदान करता है। नागरिक समाज तब ही अपनी उन्नति कर सकता है जब राज्य शक्तिशाली होगा। हॉब्बस के अनुसार, यह बहुत ही महत्वपूर्ण तर्क है कि व्यक्तियों के बीच अनुबंध के माध्यम से संस्थाओं का निर्माण हुआ और इन संस्थाओं के द्वारा सरकार की स्थापना की गई परन्तु संप्रभु मूल अनुबन्ध का हिस्सा नहीं है।

इनके विचार में, समाज और राज्य को न्यायोचित होना चाहिए क्योंकि ये प्राकृतिक नहीं हैं। प्राकृतिक स्थिति अपने आप में प्राकृतिक है क्योंकि व्यक्ति इसमें तर्क की बजाय अपनी भावनाओं का अनुकरण करते हैं। दूसरी ओर, लॉक का मानना है कि सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू व्यक्ति की स्वतंत्रता है। वे ही नागरिक पहले समाज का निर्माण करते हैं और इसके पश्चात् राज्य का, जो व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करता है। जान लॉक अपनी पुस्तक *"दि सेकेण्ड ट्रिटाईज़ ऑफ गवर्नमेंट"* में कहते हैं कि सम्पत्ति के संरक्षण की जरूरत के कारण ही नागरिक समाज के लोग संगठित होते हैं और सरकार बनाने का कार्य करते हैं। उनका मानना है कि विधिवत् सरकार वहीं होती है जो लोगों की सहमति से संचालित होती है। लॉक ने स्पष्ट किया है कि नागरिक समाज एवं राज्य दोनों अलग-अलग है। उनका तर्क था कि राज्य न्यासधारी शक्ति है जोकि नागरिक समाज के

विश्वास पर आधारित है। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि राज्य निरंकुशता या ग़ैर-जिम्मेदारियों के कार्यों को आरंभ कर देता है और व्यक्तिगत अधिकारों का हनन करता है, तो नागरिक समाज राज्य द्वारा किए जाने वाले अन्याय को रोकने का प्रयास करना चाहिए। लॉक के इन विचारों का एड्म स्मिथ और एड्म फर्ग्यूसन ने आगे विस्तार किया। फर्ग्यूसन के अनुसार, नागरिक समाज शिष्टाचार की स्थिति है जिसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राजनीतिक समाज में नागरिक भाव की गिरावट हुई है, जहाँ पर सफल व्यावसायिक वर्ग प्रशासनिक राज्य का गुलाम बन जाता है। यद्यपि, राज्य इन वर्गों को कानून का शासन मुहैया कराता है, परन्तु यह इनके मूल अधिकारों का हनन भी करता है। स्मिथ अपनी पुस्तक *"दि वेल्थ ऑफ नेशन्स"* में स्पष्ट करते हैं कि नागरिक समाज की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण तत्व "आर्थिक व्यक्ति" हैं, जो सक्रियता से मानव जीवन की मूल आवश्यकताओं, सुविधाओं तथा मनोरंजन का पीछा करता है। स्मिथ का मानना है कि नागरिक समाज की मध्यस्थता निजी सम्पत्ति, अनुबंध और श्रम के मुक्त विनियम पर आधारित सामाजिक क्रम द्वारा की जाती है तथा राज्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इस विशेष प्रकार की व्यवस्था को सुरक्षित करे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि फर्ग्यूसन और स्मिथ के अनुसार, नागरिक समाज एक विनियामक तथा समाजीकरण की शक्ति है, जो व्यक्ति की अस्थिर प्रकृति पर अपना नियंत्रण रखती है, ताकि वह बाजार व्यवस्था, सम्पत्ति के अधिकार और पूँजीवाद के विकास का बचाव कर सके।

हेगेल ने राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्धों को ओर आगे स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, नागरिक समाज की रचना करना आधुनिक विश्व की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हेगेल के दृष्टिकोण में, नागरिक समाज "आवश्यकताओं की व्यवस्था" है, जहाँ पर एक व्यक्ति अपने अभिरुचियों और क्षमताओं के अनुसार अपने हितों को साधने के लिए प्रयास करता है। इनके अनुसार, नागरिक समाज भिन्न तीन चीजों को प्रस्तुत करता है जो अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं: (क) आवश्यकताओं की व्यवस्था; (ख) न्याय का प्रशासन (व्यक्ति और सम्पत्ति की सुरक्षा) तथा (ग) पुलिस और सहयोग की आवश्यकता। व्यक्तिगत लक्ष्य आपसी निर्भरता से जुड़े हुए हैं जिसका शासन औपचारिक नियम द्वारा किया जाता है, जिसे हेगेल बाहरी राज्य या जरूरत और भावात्मक तर्क पर आधारित राज्य कहकर संबोधित करते हैं। हेगेल के अनुसार, राजनीतिक समाज की तुलना में नागरिक समाज को जो नागरिक बनाता है, वह विभिन्न वर्गों और सम्पदाओं में इसका विभाजन, जिनका अपना अलग दृष्टिकोण, रुचि तथा जीने का तरीका है। ये सम्पदाएँ – कृषक वर्ग, व्यापारी और राज्य के कार्यकर्त्ताओं का सार्वभौमिक वर्ग – ये परिवार तथा राज्य के बीच मध्यस्थता करते हैं। हेगेल का मानना है कि राज्य सामाजिक संस्था का सर्वोच्च और अंतिम रूप है। वह राज्य को संश्लेषण (synthesis) कहते हैं, जो कि परिवार का वाद (thesis) है तथा नागरिक समाज का प्रतिपक्ष (anti-thesis)। नागरिक समाज की व्याख्या हेगेल ऐसे करते हैं कि यह मध्यम वर्गीय व्यावसायिक समाज के व्यक्तिवादी तथा सूक्ष्मवादी वातावरण की अभिव्यक्ति है जिसमें रिश्तों को व्यक्तियों की अचेतन इच्छा नहीं बल्कि आर्थिक कानूनों का अनदेखा हाथ चलाता है। यद्यपि, नागरिक समाज राज्य से पहले अस्तित्व में आया था परन्तु अपने अस्तित्व और संरक्षण के लिए यह राज्य पर ही निर्भर है।

हेगेल के विपरीत, कार्ल मॉर्क्स ने नागरिक समाज की संकल्पना की कड़े शब्दों में आलोचना की है। उनके अनुसार राज्य पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक एकत्रीकरण का होना है, जैसा कि नागरिक समाज में भी था। मॉर्क्स के अनुसार नागरिक समाज की रचना पूँजीपति समाज ने की है, इसलिए यह पूँजीपति समाज के हितों का प्रतिनिधि करने के अलावा और कुछ नहीं है। इसके साथ उन्होंने यह भी कहा है कि नागरिक समाज एक "आधार" है जहाँ पर उत्पादक शक्तियाँ और सामाजिक सम्बन्ध होते हैं, जबकि राजनीतिक समाज एक

"अधिरचना" (ऊपरी ढाँचा) है। इस संदर्भ में, राज्य "अधिरचना" के तौर पर प्रभावी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर, एंटोनियो ग्राम्सी ने नागरिक समाज को स्वतंत्र राजनीतिक क्रियाकलापों का केन्द्र कहा, जो निरंकुशता के विरुद्ध संघर्ष करने का महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। ग्राम्सी के अनुसार, नागरिक समाज की संकल्पना इस विचार पर आधारित है कि राज्य की शक्तियों का विधिवत् प्रयोग करने के लिए एक संघर्ष करने का स्थान है। वे तर्क देते हैं कि नागरिक समाज न तो एक प्राकृतिक स्थिति है और न ही यह औद्योगिक समाज का एक परिणाम। परन्तु यह "नेतृत्व" करने का कार्य है, जोकि राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार का हो सकता है। वह समाज की अधिरचना को दो भागों में विभाजित करते हैं – नागरिक समाज और राजनीतिक समाज। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अधिरचना के इन दो तत्वों के माध्यम से प्रभावी समूह नेतृत्व करते हैं। ऐसा करने के लिए वे बल तथा वैचारिक माध्यमों का उपयोग करते हैं। ग्राम्सी स्पष्ट करते हैं कि नागरिक समाज अपने में भौतिक, वैचारिक तथा सांस्कृतिक रिश्तों को समाहित करता है। ग्राम्सी के अनुसार, कोई भी राज्य, चाहे उसमें किसी भी प्रकार की सरकार हो, यदि अपने नागरिकों को नागरिक और राजनीतिक अधिकार नहीं देता है तो उसे आशा करनी चाहिए कि नागरिक और प्रतिनिधित्व की संरचनाओं द्वारा बाहर छोड़े गए लोगों के असंतोष का विस्फोट होगा। उनके विचार में नागरिक समाज महत्वपूर्ण है और कहते है। कि जिन राज्यों में नागरिक समाज नहीं है, वे भेद्य (vulnerable) है उन राज्यों की तुलना में जहाँ नागरिक समाज है। ग्राम्सी मॉर्क्स के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि नागरिक समाज का संबंध राज्य के सामाजिक-आर्थिक आधार से है। ग्राम्सी इस बात पर बल देते हैं कि पूँजीवाद के नेतृत्व को जीवित रखने के लिए नागरिक समाज सांस्कृतिक तथा सैद्धान्तिक पूँजी द्वारा अपना योगदान देता है। इसके साथ ही, नागरिक समाज एक कार्यस्थल भी है जहाँ पर नेतृत्व के लिए संघर्ष किया जाता है और इस स्थान पर बाजार और राज्य का विरोध करके समाज अपनी रक्षा कर सकता है। सारांश में यह कह सकते हैं कि अनेक राजनीतिक सिद्धान्तकारों ने नागरिक समाज के सम्बन्ध में अपनी-अपनी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। हेगेल के लिए नागरिक समाज राज्य के निर्माण के लिए एक आवश्यक अवस्था है, मार्क्स के लिए नागरिक समाज राज्य की शक्ति का एक स्रोत व साधन है; तथा ग्राम्सी नागरिक समाज को वह स्थान बताते हैं जहाँ पर राज्य प्रभावी वर्गों के साथ मिलकर नेतृत्व का निर्माण करता है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) नागरिक समाज पर हेगेल के विचारों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध

नागरिक समाज और राज्य यद्यपि एक-दूसरे से अलग हैं, ये कभी भी एक-दूसरे के साथ सम्बन्धों में पूर्णतः स्वायत्त नहीं रहे हैं। परन्तु ये अपने-अपने उद्देश्यों में बिल्कुल अलग हैं जिनके लिए यह प्रयास करते हैं। एक सीमित राज्य को जरूरी शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता, जिससे वह सुव्यवस्थित समाज की परिस्थितियाँ बनाए रखें जैसे कि कानून व्यवस्था, सुरक्षा और न्याय। दूसरी ओर, एक शक्तिशाली नागरिक समाज शक्तिशाली राज्य के अंतर्गत ही पनप सकता है। एक कमजोर और संघर्षरत राज्य सक्रिय नागरिकों की प्रगति में बाधक होता है। राज्य और नागरिक समाज के लिए डेविड हेल्ड तर्क देते हैं कि यह एक–दूसरे के साथ कार्य करने की आवश्यक शर्त है। प्रायः एक राज्य को समाज के राजनीतिक रूप से संगठित होने के कारण वर्णित करते हैं। समाज मानव जाति की एक संस्था है जिसमें उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। राजनीतिक संस्था की विशेष जरूरत को राज्य पूरा करता है, उन पर अनिवार्य कानून लागू करता है तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है। जब एक समाज क सर्वोच्च निर्णय-निर्माण करने वाली प्राधिकरण संस्था के निर्देशों के अंतर्गत, इन कार्यों के निष्पादन की क्षमता रखती है, केवल तब ही यह राज्य बनने की योग्यता रखती है। जबकि यह सत्य है कि राज्य और समाज एक-दूसरे के आयाम हैं, परन्तु फिर भी कुछ फर्क करने की जरूरत है। राज्य की पहचान इसके संगठित, औपचारिक संरचना जिसमें शक्ति के विभिन्न संगठन सम्मिलित होते हैं, विशेषकर विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। दूसरी ओर, नागरिक समाज स्वैच्छिक नागरिकों के खुले संगठन होते हैं जो जनहित के कार्यों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। राज्य के पास सर्वोच्च कानूनी सत्ता संप्रभुत्ता है, जबकि नागरिक समाज के पास औपचारिक या कानूनी सत्ता नहीं है। राज्य के पास अपने नागरिकों और राज्य क्षेत्र पर अनिवार्य अधिकार क्षेत्र की शक्ति है, जबकि नागरिक समाज के पास इस तरह का कोई अधिकार नहीं होता है। यह व्यापक रूप से लोगों को उत्साहित या प्रोत्साहित करने की अपनी क्षमता पर निर्भर करता है। राज्य पर कानून व्यवस्था और आंतरिक और बाहरी शक्तियों से अपने नागरिकों की रक्षा करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। नागरिक समाज स्वैच्छिक रूप से नागरिकों के सामान्य हितों की रक्षा करने का कार्य करता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि राज्य का अस्तित्व अधिकतर सार्वभौमिक है, किसी प्रकार की राजनीतिक संस्था हर आधुनिक समाजों में पाई जाती है। हालाँकि, नागरिक समाज का उद्‌गम केवल उन्नत और विकसित समाजों में होता है जहाँ नागरिक अपने अधिकारों के प्रति समुचित रूप से सजग होते हैं और अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सामान्य जन हितों के प्रति अपनी चेतना को बनाए रखते हैं।

अनेक भिन्नताओं के बावजूद, इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता है कि एक सक्रिय, विविध नागरिक समाज प्रायः लोकतन्त्र को उन्नत बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह राज्य को अनुशासित कर सकता है, ताकि यह नागरिकों के हितों को गंभीरता से ले और अधिक नागरिक तथा राजनीतिक भागीदारी को पोषित करता है। नागरिक समाज के उद्‌गम ने कुछ लोगों को यह देखने को प्रेरित किया है कि निकट भविष्य में राज्य का अस्तित्व लगभग समाप्त हो जाएगा, राज्य न्यूनतम होगा जबकि शक्तिशाली ग़ैर-सरकारी समूह नए नागरिक व्यवस्था को स्थापित करेंगे। सम्बन्धों की धारणा एक का लाभ, दूसरे की हानि, सिद्धान्त (zero-sum-game) पर आधारित है यानि शक्तिशाली राज्य का मतलब कमजोर नागरिक समाज। नागरिक समाज समूह राज्य की नीतियों को आकार देने में अत्यंत प्रभावकारी हो सकते हैं यदि राज्य के पास नीति निर्माण और लागू करने के लिए सुसंगत शक्ति है। अच्छी ग़ैर-सरकारी सलाह वास्तव में राज्य की शक्ति प्रदान करेगी,

उसकी क्षमता को कम नहीं करेगी। राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध पारस्परिक हैं। यह समग्र प्रकृति का होना चाहिए, जिसमें एक-दूसरे के हित के लिए काम करें। यह राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह एक मंच और एक संरचना उपलब्ध कराए, जिसके अंतर्गत नागरिक समाज अपने कार्यों को कर सके। राज्य और नागरिक समाज को मिलकर साथ चलने की आवश्यकता है। नागरिक समाज की प्रगति राज्य की प्रगति पर निर्भर करती है, और राज्य की कार्यशैली पर सामाजिक रीति रिवाजों और परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। राज्य को नागरिक समाज की बढ़ती जरूरतों का उत्तर देना चाहिए। दूसरी ओर, नागरिक समाज को भी खुला और विविध होने की आवश्यकता है। राज्य और नागरिक समाज की संकल्पना का विकास समान रूप से एक साथ हुआ है। नागरिक समाज के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती और इसी तरह से, कोई भी नागरिक समाज राज्य के बिना वैधता हासिल नहीं कर सकता।

10.5 सारांश

राज्य के नागरिक समाज से सम्बन्ध राजनीतिक समाजशास्त्र में प्रमुख मुद्दा है। इस इकाई में राज्य की तीन सबसे महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है – पुरातन, उदार वैयक्तिक तथा मॉर्क्सवादी। इसी प्रकार से नागरिक समाज के इतिहास को रोमन और ग्रीक दार्शनिकों से लेकर आधुनिक विचारकों, जैसे कि हेगेल, मॉर्क्स इत्यादि तक चिन्हित किया गया है। इस इकाई में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य और नागरिक समाज के सम्बन्ध पूरी तरह स्वायत्त नहीं हो सकते हैं। इनके दोनों के अपने उद्देश्यों को निष्पादित करने के तरीके भी भिन्न हैं। नागरिक समाज की प्रगति राज्य की प्रगति पर निर्भर करती है। राज्य की कार्यशैली पर सामाजिक रीति रिवाजों और परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। राज्य को नागरिक समाज की बढ़ती माँगों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। वहीं दूसरी तरह, नागरिक समाज को खुला और विविध होने की आवश्यकता है।

10.6 संदर्भ

कोहेन, जीन एल. एवं अराटो, एंड्रू (1997), *सिविल सोसाइटी एंड पॉलिटिकल थ्योरी,* यूनाइटेड स्टेट्सः एम आई टी प्रेस

डोरोटा आई. पिट्रज़िक (2001), *सिविल सोसाइटी – कांसेप्चुयल हिस्ट्री फ्रॉम हॉब्बस टू मार्क्स,* मैरी क्यूरी वर्किंग पेपर्स सं. 1, यूनिवर्सिटी ऑफ वेल्स

मुखर्जी, सुब्रत एवं रामा स्वामी, सुशीला (2007) *ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल थॉटः प्लेटो टू मार्क्स,* नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डालिएः

- राज्य का मॉर्क्सवादी विचार राज्य की उदार संकल्पना के विरुद्ध है।
- राज्य आर्थिक रूप से प्रभावी वर्ग के हितों को दर्शाता है।
- वर्गहीन, राज्य विहीन समाज की प्राप्ति का उद्देश्य।

बोध प्रश्न 2

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए:

- नागरिक समाज की तीन भिन्न किन्तु अंतःसम्बन्धित विशेषताएँ
- नागरिक समाज को राजनीतिक समाज की बजाय "नागरिक" कहने की वजह
- राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 4
राजनीतिक सिद्धांत में बहस

खंड 4 राजनीतिक सिद्धांत में बहस

खंड 4, में चार इकाइयाँ है, जो राजनीतिक सिद्धांत के विषय के बारे में प्रमुख तर्क-वितर्को को प्रस्तुत करती है। **इकाई 11**, लोकतंत्र और आर्थिक विकास के बीच संबंधों पर चर्चा करती है। यह तर्क देता है कि लोकतंत्र और आर्थिक विकास के बीच के संबंध में कोई निश्चित साक्ष्य नही है। **इकाई 12**, स्वतंत्रता तथा नियंत्रण (सेंसरशिप) के बीच मूलभूत वाद-विवाद पर प्रकाश डालती है और तर्क देती है कि किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता, जो अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करती है, उसे प्रतिबंधित करना होगा। लेकिन साथ ही, व्यक्तियों के स्वतंत्र विचार-विमर्श को नियंत्रित करने के मकसद् से थोपे गए किसी भी प्रश्ननुचित प्रतिबंध को, नागरिकों द्वारा लोकतंत्र के सच्चे प्रश्नादर्शों को पुनःस्थापित करने हेतु चुनौती दी जानी चाहिए। **इकाई 13**, रक्षात्मक भेदभाव एवं निष्पक्षता के सिद्धांत के बीच के वाद-विवाद पर प्रकाश डालती है। इसमें कहा गया है कि लोकतंत्र की उन्नति के लिए, हमें वंचितों एवं हाशिए के लोगों की सुरक्षा हेतु ऐसी समुचित कार्यवाही करनी चाहिए जिससे उनकी परिस्थितियां पहले से समृद्धि व ताकतवर वर्ग के लोगों के समकक्ष हो जाएं। प्रश्नतिंम **इकाई 14**, परिवार, कानून और राज्य के बीच के रिश्तो से संबंधित है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 लोकतन्त्र बनाम आर्थिक विकास*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास का अर्थ

11.2.1 लोकतन्त्र की संकल्पना

11.2.2 आर्थिक विकास

11.3 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं

11.4 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास एक-दूसरे के अनुरूप हैं

11.5 सारांश

11.6 संदर्भ

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप लोकतन्त्र और आर्थिक विकास की संकल्पना के बारे में जानेंगे और यह भी कि ये किस प्रकार से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- लोकतन्त्र और आर्थिक विकास का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे; तथा
- किस प्रकार से लोकतन्त्र आर्थिक विकास को प्रभावित करता है और उसी तरह से, आर्थिक विकास कैसे लोकतंत्र को प्रभावित करता है इसको समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

लोकतन्त्र और आर्थिक विकास के बीच सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध में कुछ विशेषज्ञ यह तर्क देते हैं कि दोनों ही एक-दूसरे के अनुरूप हैं जबकि कुछ अन्य विशेषज्ञों का कहना है कि वे एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं। आगे आने वाले अनुच्छेदों में, लोकतन्त्र और आर्थिक विकास के बीच सम्बन्धों पर सूक्ष्म दृष्टि डालकर, दोनों प्रकार के पक्षों के तर्कों की इस इकाई में समीक्षा की जाएगी।

11.2 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास का अर्थ

11.2.1 लोकतन्त्र की संकल्पना

लोकतंत्र की संकल्पना आज से करीब 2500 वर्ष पहले अर्थात् 500 ई.पू. के आस-पास एथेंस में अस्तित्व में आई। इसी तरह 'डेमोक्रेसी' शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'डेमोक्राटिया' (Demokratia) से हुआ है। जो कि दो यूनानी शब्दों 'demos' अर्थात् 'लोग' और 'kratos' अर्थात् 'शक्ति' से मिलकर बना है। इस प्रकार लोकतंत्र का मतलब 'लोगों के द्वारा शासन' होता है जो कि सरकार को सच्चे अर्थों में वैद्यानिकता प्रदान करता है। 'लोकतंत्र' राजनीति

*डॉ. अनुराग त्रिपाठी, क्राइस्ट (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी), बैंगलुरू

विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक चर्चित मुद्दा है, इस कारण यह सर्वाधिक विवादास्पद संकल्पना भी है। यद्यपि लोकतंत्र को क्रियान्वित कैसे किया जाय इसे लेकर मत भिन्नता है, फिर भी लोकतंत्र के अर्थ को लेकर एक सामान्य सहमति बनी हुई है। इसी कारण लोकतंत्र के विभिन्न प्रकार हैं, यथा–प्रत्यक्ष, प्रतिनिधि, विमर्शी। इस विचार को लेकर संचेतना है कि लोकतंत्र का आशय लोकप्रिय शासन और संप्रभुता है, लेकिन इसे प्राप्त कैसे किया जाए इसे लेकर मत भिन्नता है। लोकतंत्र के अभ्यास में अनेक प्रकार के अंतर्विरोध अन्तर्निहित हैं। लोगों की सहभागिता को कैसे सुनिश्चित किया जाए, स्वतंत्रता और समानता के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए, अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा कैसे की जाए, बहुसंख्यक की तानाशाही को कैसे टाला जाए इत्यादि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनसे लोकतंत्र को जूझना है। अन्य प्रकार की शासन-प्रणालियों की अपेक्षा लोकतंत्र के बहुत से लाभ हैं। यह आतताइयों के शासन से रक्षा करता है, मानव-विकास की देख-रेख करता है, व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा हेतु सुविधाएँ प्रदान करता है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्ध से रक्षा करता है क्योंकि सामान्यतः लोकतान्त्रिक देश आपस में नहीं लड़ते। जे.एस. मिल ने अपनी पुस्तक '*कंसीडरेशन ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव गवर्नमेंट*' 1861 में लोकतान्त्रिक निर्णय-निर्माण के तीन लाभ बताये हैं। पहले, रणनीतिक तौर पर लोकतंत्र नीति-निर्माताओं को बाध्य करता है कि वे लोगों के अधिकारों, मतों और हितों के प्रति उत्तरदायी बने रहें, जैसा कि कुलीनतंत्र या अधिकनायतंत्र में नहीं होता है। दूसरा, ज्ञानमीमांसा के तौर पर लोकतंत्र में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों कि उपस्थिति होती है, जिससे नीति-निर्माताओं को उनमें से सर्वोत्तम को चुनने का मौका मिलता है। तीसरा, लोकतंत्र तार्किकता, स्वायतता और स्वतंत्रता जैसे विचारों को समाहित कर नागरिकों के चरित्र निर्माण में सहयोग प्रदान करता है। यह लोकमत का दबाव बनाता है और राजनेताओं द्वारा सत्ता में बने रहने के लिए इसे नजरअंदाज करना संभव नहीं हो पाता।

अपने प्रारंभिक स्वरूप में लोकतंत्र का विचार यूनान से आया, जो कि समावेशी स्वरूप में नहीं था। लोकतंत्र का यूनानी मॉडल महिलाओं, दासों और प्रवासियों को समाहित नहीं करता, इस अर्थ में यह खुद को अलोकतांत्रिक बना देता है। आधुनिक लोकतन्त्रों में भी इस तरह के तत्व विद्यमान रहे हैं, जैसे कि फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि में भी कुछ वर्ग को मतदान से वंचित रखा गया था, जबकि मताधिकार सम्पत्तिशाली लोगों को दिया गया था। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में लोकप्रिय संप्रभुता के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की बात की गयी। यद्यपि उस समय महिलाओं को मतदान का अधिकार नहीं मिला और फ्रांस में 1944 में जोकर सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू किया गया। ब्रिटेन में महिलाओं को मतदान का अधिकार 1928 में मिला, जबकि अमेरिका में 1920 में। इसके बावजूद अमेरिका में रंगों के आधार पर भेदभाव विद्यमान रहा और 1965 में जाकर अफ्रीकी-अमेरिकी पुरुषों और महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इस सन्दर्भ में पश्चिमी लोकतन्त्रों से तुलना किया जाए तो भारत अधिक प्रगतिशील रहा है क्योंकि भारत में सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार 1950 अर्थात् संविधान लागू होने की तिथि से ही प्रभाव में है। इस प्रकार भारत दुनिया में पहला ऐसा लोकतान्त्रिक देश है जहाँ संविधान लागू होने की प्रारंभिक तिथि से ही सार्वजनीन व्यस्क मताधिकार लागू है। सऊदी अरब महिलाओं को मताधिकार देने वाला नवीनतम देश है, जहाँ 2015 के नगर-पंचायत के चुनावों में प्रथम बार महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया।

लोकतंत्र को दो भिन्न आयामों के जरिए ठीक तरीके से समझा जा सकता है– प्रक्रियात्मक (न्यूनवादी) और मौलिक (अधिकतावादी)। प्रक्रियात्मक आयाम अपना ध्यान केवल लोकतंत्र प्राप्ति की प्रक्रिया अथवा साधनों पर केन्द्रित करता है। इसका तर्क है कि सार्वजनीन व्यस्क

मताधिकार पर आधारित नियमित प्रतिस्पर्धी चुनाव और बहुत राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से लोकतान्त्रिक रूप से चयनित सरकार बनती है।

वास्तविक लोकतंत्र प्रक्रियात्मक लोकतंत्र की कमी को दूर करने का प्रयास करता है, इसका मानना है कि सामाजिक ओर आर्थिक असमानता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में जनसहभागिता में बाधा हो सकती है। शासन करने के बजाय, वास्वतिवक अर्थों में यह अपना ध्यान सामाजिक समानता जैसे परिणामों पर केन्द्रित करता है। एक अर्थ में, यह सीमित लोगों के हित के बजाय सामान्य-हित की बात रकता है। पुनर्वितरणात्मक न्याय के माध्यम से वांछित वर्ग यथा–महिलाओं और गरीबों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है और ऐसी परिस्थिति का निर्माण राज्य द्वारा हस्तक्षेप के माध्यम से ऐसे वर्गों की राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करके की जा सकती है।

लोकतन्त्र शब्द प्रायः "उदारवादी लोकतन्त्र" (liberal democracy) के नाम से जाना जाता है, जिसमें प्रतिनिधियों की निर्णय लेने की क्षमता कानून के शासन का विषय है और जो सामान्यतः एक संविधान द्वारा संचालित की जाती है, जो व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं का संरक्षण करता है। इसका उदारवादी चरित्र सरकार के ऊपर आंतरिक और बाहरी नियंत्रण के संजाल में प्रदर्शित होता है जिसका निर्माण स्वतंत्रता की गारंटी तथा राज्य के विरूद्ध नागरिकों का संरक्षण करने के लिए होता है। इसकी लोकतान्त्रिक विशेषताएँ हैं कि नियमित और प्रतियोगी चुनावों की व्यवस्था होती है, जो सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और राजनीतिक समानता के आधार पर निश्चित होते है। उदारवादी लोकतन्त्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं:

- औपचारिक, प्रायः विधि नियमों पर आधारित संवैधानिक सरकार
- संविधान के द्वारा नागरिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों की गारन्टी
- संस्थागत विकेन्द्रीकरण और नियंत्रण तथा संतुलन की व्यवस्था
- एक व्यक्ति; एक मत और सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धान्तों पर आधारित नियमित चुनाव
- निर्वाचन के तरीके और पार्टी प्रतियोगिता के स्वरूप में राजनीतिक बहुलवाद।
- एक अच्छा नागरिक समाज, जिसमें विभिन्न संगठित समूह और हित सरकार से स्वतंत्र हो।
- बाजार व्यवस्था पर आधारित पूँजीवादी अथवा निजी उद्योग अर्थव्यवस्था।

उपर्युक्त बिन्दुओं में *अंतिम* बिन्दु आर्थिक विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, क्योंकि पूँजीवादी में आर्थिक व्यवस्था और सिद्धान्त उत्पादन के संसाधनों के निजी स्वामित्व और लाभ प्राप्त करने के लिए संचालित होते हैं। पूँजीवादी बाजार अर्थव्यवस्था में निर्णय लेना और निवेश करना, यह सब वित्तीय और पूँजी बाजार में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व वाले पूँजीपतियों के द्वारा निश्चित होता है, जबकि वस्तुओं और सेवाओं के वितरण का मुख्य रूप से निर्धारण वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य और बाजार की प्रतियोगिता के द्वारा निर्धारित होता है। उदारवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में आर्थिक स्वतंत्रता आर्थिक विकास अथवा प्रति व्यक्ति आय को उन्नत बनाती है।

11.2.2 आर्थिक विकास

आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है, जिसमें समय के साथ राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि होती है। आर्थिक शब्दों में, यह एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के बाजार मूल्यों में एक

समयावधि के दौरान वृद्धि होती है। दीर्घकालीन स्थिति में, राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास बढ़ाता है और देश में रोज़गार दर में वृद्धि होती है, जिसके माध्यम से जीवन स्तर में सुधार होता है। यहाँ पर आर्थिक विकास तथा आर्थिक उन्नति के बीच अन्तर करना चाहिए। उन्नति लोगों को निम्न जीवन स्तर से निकालती है, और उनको रोज़गार तथा आवास की व्यवस्था करने में सहायता करती है। यह स्थिरता के मुद्दे पर भी विचार करती है, जिसमें भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकता की पूर्ति करती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास प्रदूषण और भीड़-भाड़ के मुद्दे का कारण बनता है, जिसमें स्थिरता (sustainability) का मुद्दा सम्मिलित नहीं होता है। आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों को नीचे स्पष्ट किया गया है:

- **प्राकृतिक संसाधन:** एक देश के प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा कितनी है, यह आंकलन आर्थिक विकास को निर्धारित करता है। पश्चिम एशिया के देशों में व्यापक तेल के भण्डार मौजूद हैं, जिसे बेचने से उनके आर्थिक विकास को गति मिली है।

- **आधारिक संरचना (Infrastructure)**: आधारिक भौतिक और संगठनात्मक संरचनाएँ आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। जिन देशों में सड़क तथा रेल का संजाल उपलब्ध है, उसमें सामान एक जगह से दूसरी पर ले जाना सस्ता होगा, उन देशों की तुलना में जहाँ ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

- **श्रम :** श्रम की उपलब्धि एक चुनौती और अवसरों दोनों है। ज्यादा कार्य बल आर्थिक विकास में सहायता करता है, किन्तु इस श्रम को कौशलों की भी उतनी ही आवश्यकता होती है।

- **प्रौद्योगिकी :** यह उत्पादकता में वृद्धि करती है तथा लागत को भी कम करती है।

- **राजनीतिक स्थिरता**: जिस देश में राजनीतिक स्थिरता नहीं है वहाँ पूँजी नहीं टिकती तथा निवेशक एक ऐसी अर्थव्यवस्था में पैसा नहीं लगाएँगे, जिसके पास राजनीतिक दिशा की कमी होती है।

संपूर्ण इतिहास में, *लोकतन्त्र, आर्थिक विकास और उन्नति* एक-दूसरे से सम्बन्धित रहे हैं राजनीतिक लोकतन्त्र और आर्थिक विकास के बीच का सम्बन्ध, पिछले पचास वर्षों से वाद-विवाद का केन्द्र बना हुआ है। सबसे पहले सन् 1950 के दशक और सन् 1960 के दशक में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अविकसित देशों पर वादविवाद रहा। औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र होने के बाद, इन देशों ने अपना प्राथमिक उद्देश्य लोकतान्त्रिक व्यवस्था को स्थापित करने का रखा था। हालाँकि, बहुत जल्द, इन देशों में से अधिकतर देशों ने तानाशाही व्यवस्था को अपना लिया था चाहे वह पाकिस्तान, म्यामार, इंडोनेशिया, ताईवान, सिंगापुर, नाइज़ेरिया और क्यूबा इत्यादि हो। विकास और जीवित रहने की आवश्यकता ने इन देशों को राजनीतिक विपक्ष को कुचलने के लिए मजबूर किया। साथ ही, उन्होंने अपने नागरिकों की नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता को भी समाप्त कर दिया। यह एक मूल मुद्दे को उठाती है कि पहले लोकतन्त्र व्यवस्था हो या फिर आर्थिक विकास। दूसरे शब्दों में, हमको किस को प्राथमिकता देनी चाहिए – नागरिक, राजनीतिक स्वतंत्रता, अधिकार, लोकतान्त्रिक स्वतंत्रता एवं सरकार स्थापित करने के लिए, नागरिकों से सहमति लेना या गरीबी, निरक्षरता और लोगों की बदहाली को एक सत्ताधारी शासन के द्वारा समाप्त करने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस पर दो विभिन्न विचार हैं। एक मत कहता है कि लोकतन्त्र और आर्थिक विकास एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं जबकि दूसरे पक्ष का मानना है कि ये दोनों एक-दूसरे के अनुरूप हैं।

11.3 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं

कुछ ऐसे विशेषज्ञ हैं, जो यह विश्वास करते हैं कि आर्थिक विकास के लिए लोकतन्त्र एक अच्छी व्यवस्था नहीं हो सकती है। *राबर्ट बारो* ने इस क्षेत्र में एक लाभदायक अनुसंधान किया है, जिसमें उन्होंने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "अधिक राजनीतिक अधिकार आर्थिक विकास पर प्रभाव नहीं डालते हैं ... इसका प्रथम पाठ यह कि लोकतन्त्र आर्थिक विकास की चाबी नहीं है।" *जज पोसनर* के अनुसार, तानाशाही बहुत ही गरीब देशों के लिए प्रायः श्रेष्ठतम व्यवस्था होती है। इस तरह के देशों की साधारण अर्थव्यवस्था ही नहीं होती है, बल्कि लोकतन्त्र के लिए सांस्कृतिक और संस्थागत पूर्व शर्तों की भी कमी होती है। हालाँकि, आर्थिक विकास के *उच्च स्तर* पर, लोकतन्त्र की व्यवस्था आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहित करने में बेहतर काम करेगी, अलोकतांत्रिक व्यवस्था की तुलना में। बारो के अनुसार, "लोकतन्त्र का मध्यम स्तर विकास के सर्वाधिक पक्ष में है, निम्नतम स्तर दूसरे नंबर पर आता है और उच्चतम स्तर तीसरे स्थान पर रखा गया है।" एड्म प्रज़ेवर्स्की और लिमोंगी (*Adam Prezeworski* and *Limongi*) ने सन् 1950 से 1991 तक बहुत सारे देशों का विश्लेषण किया है और निष्कर्ष निकाला है कि एक लोकतान्त्रिक देश, जिसमें लोगों की प्रति व्यक्ति आय 1500 डॉलर से कम है, उस देश में लोकतन्त्र की सत्ता की अवधि आठ वर्ष की होगी। जिस देश की प्रति व्यक्ति आय 1500–3000 डॉलर के बीच होगी, उस देश में लोकतन्त्र 18 वर्ष तक चल सकता है तथा जिस देश में प्रति व्यक्ति आय 6000 डॉलर से अधिक होगी, उस देश में लोकतन्त्र की व्यवस्था स्थायी बनी रहेगी। लोकतान्त्रिक देशों का लगभग *दो-तिहाई* देश, जिनकी प्रति व्यक्ति आय 9000 डॉलर है, उन देशों का लोकतन्त्र सबसे अधिक स्थायी है। *एस.एम. लिपसेट* ने भी अपने विचार इन्हीं के समान प्रस्तुत किए हैं, उनका विश्वास है कि एक राष्ट्र जितना बेहतर होगा वहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अधिक अवसर उपलब्ध होंगे।

लोकतान्त्रिक और ग़ैर-लोकतान्त्रिक, *दोनों* तरह की व्यवस्थाएँ आर्थिक उन्नति पर लाभकारी अथवा हानिकारक प्रभाव डाल सकती हैं। आर्थिक उन्नति के लिए *तीन* प्रकार की स्थिरता जरूरी है – स्वामित्व स्थिरता (सम्पत्ति के अधिकार की स्थायी व्यवस्था), कानूनी स्थिरता (विधि का शासन) और सामाजिक स्थिरता (सामाजिक अशांति का न होना)। ये सब आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक शर्तें हैं, यद्यपि पर्याप्त शर्त कोई भी नहीं है। इस तरह की सभी शर्तें लोकतान्त्रिक अथवा ग़ैर-लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में मौजूद हो सकती हैं और आर्थिक उन्नति में सहायक हो सकती हैं। इसके साथ ही, आर्थिक उन्नति भी लोकतन्त्र और सत्ताधारी राज्यों पर अपना प्रभाव डाल सकती है। आर्थिक संकट किसी भी सरकार को गिरा सकता है। ए. प्रज़ेवर्स्की एवं अन्य के अनुसार, गरीबी की स्थिति लोकतान्त्रिक सरकार का कभी भी ध्वंस कर सकती हैं। यहाँ तक कि तानाशाही शासन भी संकट में होते हैं; यह सब हम अरब स्प्रिंग के सम्बन्ध में देख सकते हैं, जब 2011 में अनेक अरब देशों की शासन व्यवस्था चरमरा गई थी।

पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संदर्भ में मुख्य रूप से एक तर्क प्रस्तुत किया जाता है, कि उन्होंने लोकतन्त्र की बजाय आर्थिक विकास को तरजीह दी है। इस आंकलन का मुख्य कारण है कि विकास के लिए परिवर्तन की जरूरत होती है, और यह परिवर्तन कुछ मतदाताओं पर विपरीत प्रभाव डालता है। इसलिए, ऐसी सरकारें जो आगामी चुनावों में चुनावी सहायता पर निर्भर करती हैं, वे आमतौर पर ऐसे फैसले नहीं लेंगी जो मतदाताओं के एक बड़े वर्ग पर विपत्ति डालेंगी। उदाहरण के लिए सिंगापुर और सुधार के बाद के चीन और ताईवान ने उच्च विकास के स्तर को प्राप्त किया है। जबकि भारत जैसे लोकतान्त्रिक देशों में यह सब

संभव नहीं हुआ है। इसे "ली हाईपोथिसि" (Lee Hypothesis) कहते हैं कि, जिसे सिंगापुर के पूर्व प्रधानमंत्री, ली कुवान यू ने विकसित किया था। ली कुवान यू का मानना है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की अंतिम परीक्षा यह होती है कि क्या वह व्यवस्था बहुसंख्यक लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने में सक्षम हैं। इस सिद्धान्त का मानना है कि राजनीतिक और नागरिक अधिकारों की वरीयता बाद की है जबकि आर्थिक अधिकार सबसे पहले आते हैं। यदि लोगों से राजनीतिक स्वतंत्रता और उनकी आर्थिक आवश्यकताओं के बीच उनकी पसंद पूछी जाए, तो लोग अपने आर्थिक संकटों तथा वंचित स्थिति को दूर करने के लिए बिना किसी हिचक के वे विकास को सबसे पहले वरीयता या प्राथमिकता देंगे। वे लोग लोकतन्त्र की बिल्कुल चिन्ता नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त, ली थीसिस के समर्थकों के अनुसार, उदारवादी राजनीतिक स्वतंत्रता पश्चिमी संस्कृति की प्राथमिकता और जुनून है और सांस्कृतिक रूप से कुछ अन्य संस्कृतियों के ये अधिकार महत्वपूर्ण नहीं है, जैसे कि मध्य पूर्व और एशिया में। एशिया की संस्कृति में, *शासन* और *अनुशासन* को अधिक महत्व दिया जाता है, जिनसे वैभव प्राप्त होता है। जैसे कि ली कुवान अपने विचार व्यक्त करते हैं कि *"मैं यह विश्वास नहीं करता हूँ कि लोकतन्त्र की वजह से आवश्यक रूप से उन्नति होती है। मैं यह विश्वास करता हूँ कि एक देश को विकसित होने के लिए लोकतंत्र से ज्यादा अनुशासन की जरूरत है।* यह ध्यान रहे कि तथाकथित एशियाई टाइगर अर्थव्यवस्थाओं ने जिन व्यवस्थाओं का अनुपालन किया है, वे लोकतन्त्र से कोसों दूर रही हैं, यहाँ तक कि तानाशाही व्यवस्था भी रही है। ली थीसिस को मानने वाले लोग पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के स्थान पर *क्षमता* और *स्थिरता* को अधिक महत्व देते हैं। उन्नति के लिए आवश्यक है कि निर्णायक नीतियाँ हों और उन्नति उनको प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने की नितांत आवश्यकता होती है।

सत्ताधारी अथवा तानाशाही शासन नीति लागू करने में अत्यधिक निर्णायक और प्रभावी कदम उठाते हैं। इसके साथ ही, संजातीय और उप-राष्ट्रीय संघर्ष आर्थिक उन्नति को प्रभावित करते हैं और बाधा डालते हैं और एक शक्तिशाली तानाशाही सरकार के द्वारा अत्यधिक प्रभावी रूप से इनका दमन किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) जे.एस. मिल के अनुसार लोकतान्त्रिक रूप से निर्णय लेने के क्या लाभ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आर्थिक विकास और आर्थिक उन्नति के बीच क्या अन्तर है?

.....

.....

.....

.....

3) ली थीसिस क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 लोकतन्त्र और आर्थिक विकास एक-दूसरे के अनुरूप हैं

सामान्यतया, यह विश्वास किया जाता है कि सत्ताधारी शासन की तुलना में, लोकतन्त्र आर्थिक विकास और सांस्कृतिक प्रगति दोनों के लिए बेहतर अवसर पैदा करता है। प्रगतिशील उन्नति के लिए जरूरी है ऐसे नीति विकल्प, जिनसे विकास के लाभ का वितरण ज्यादा से ज्यादा लोगों तक हो। लोकतान्त्रिक शासन लाभों के व्यापक रूप से वितरण में अधिक प्रभावी हैं, (क्योंकि सत्ताधारी शासन की शक्तिशाली प्रवृत्तियाँ होती हैं – जैसे लोगों से वसूलना (rent secking), शासकीय मंडलों की समृद्धि तथा बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार)। लोकतान्त्रिक सरकारें भ्रष्टाचार और किराया वसूलने जैसी नीतियों की कम इच्छुक होती हैं और वे लूटमार भी कम नहीं करती हैं। फिर भी, लोकतन्त्र और आर्थिक विकास के बीच आपसी सम्बन्ध पर सहमति नहीं है। मिल्टन फ्राइडमैन जैसे विद्वान यह विश्वास करते हैं, कि अधिकारों का उच्च स्तर आर्थिक विकास में सहायक होता है। अन्य अध्ययन सुझाव प्रस्तुत करते हैं कि लोकतन्त्र आर्थिक उदारीकरण और दीर्घावधि में जाकर सतत् विकास को उन्नत करते हैं। विश्व आर्थिक मंच के आंकलन के अनुसार, एक देश जो अलोकतान्त्रिक व्यवस्था से लोकतन्त्र में बदलता है, वह दीर्घावधि में 20 प्रतिशत ज्यादा सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है (लगभग अगले 30 वर्षों में)। ये व्यापक परन्तु अकल्पनीय प्रभाव नहीं है और इंगित करते हैं कि पिछले 50 वर्षों में लोकतंत्र की वैश्विक वृद्धि हुई है, जिसकी वजह से, विश्व सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई हैं। इसके साथ ही आर्थिक सुधारों, निजी निवेश, सरकार का आकार और क्षमता तथा सामाजिक संघर्षों में कमी आना इत्यादि पर लोकतन्त्र का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ये सब प्रणालियाँ हैं, जिनसे लोकतन्त्र आर्थिक विकास में वृद्धि कर सकता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन का तर्क है कि आर्थिक विकास के लिए लोकतन्त्र एक *पूर्व शर्त* है। वे विश्वास करते हैं कि ली हाइपोथीसिस विकीर्ण अनुभववाद (sporadic empiricism) पर आधारित है, जो किसी भी सामान्य सांख्यिकी जाँच, व्यापक उपलब्ध आँकड़ों के स्थान पर न होकर बहुत ही चयनित और सीमित सूचनाओं पर आधारित है। इस प्रकार के सामान्य सम्बन्ध बहुत ही चयनित साक्ष्यों के आधार पर स्थापित नहीं किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम सिंगापुर या चीन के उच्च आर्थिक विकास को "निश्चित साक्ष्य" (definitive proof) के रूप में नहीं ले सकते हैं कि सत्ताधारी शासन आर्थिक विकास को अच्छी तरह से उन्नत कर सकते हैं। इसके विपरीत, उदाहरण के लिए बोट्सवाना को ले सकते हैं, जिसने अफ्रीका में आर्थिक विकास का रिकार्ड बनाया है, जो वास्तव में आर्थिक विकास में विश्व के बड़े उदाहरणों में से एक है और यह सब इस देश में लोकतन्त्र के कारण सम्पन्न हुआ है। हमें दावों और प्रतिदावों को हल करने के लिए अधिक प्रयोगसिद्ध व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है।" सेन आगे कहते हैं कि "जिन आर्थिक नीतियों और समुचित वातावरण की वजह से पूर्वी एशिया के देशों में आर्थिक सफलता आई इन मुख्य कारणों को अब सबने समझ लिया है। जबकि विभिन्न प्रयोगसिद्ध

अध्ययन इस विषय पर विभिन्न मत रखते हैं, किन्तु इस बात पर सहमति है कि महत्वपूर्ण "सहायक नीतियों" की एक सूची है, जिनके कारण इन देशों को आर्थिक सफलता प्राप्त हुई है, इसमें कुछ महत्वपूर्ण तत्व शामिल हैं जैसे कि प्रतिस्पर्धा का खुलापन, अंतर्राष्ट्रीय बाजार का प्रयोग, निवेश और निर्यात के लिए प्रोत्साहित करने के सार्वजनिक प्रावधान, साक्षरता और विद्यालयी व्यवस्था का उच्च स्तर, सफल भूमि सुधारों की व्यवस्था और अन्य सामाजिक अवसरों की प्रचुरता जो आर्थिक विस्तार की प्रक्रिया में व्यापक भागीदारी बढ़ाते हैं। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि इस प्रकार की नीतियाँ महान लोकतन्त्र में असंगत है और इन्हें बनाए रखने के लिए तानाशाही तत्वों की जरूरत पड़ेगी, जैसे दक्षिण कोरिया, सिंगापुर अथवा चीन में हुआ। वास्तव में, यह साबित करने के लिए साक्ष्य हैं कि तीव्र आर्थिक विकास उत्पन्न करने के लिए अनुकूल आर्थिक वातावरण चाहिए न कि कठोर राजनीतिक व्यवस्था। सेन आगे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि विश्व में अकाल का भयानक इतिहास रहा है, परन्तु प्रासंगिक स्वतंत्र प्रेस वाले किसी भी स्वतंत्र और लोकतान्त्रिक देश में अकाल कभी नहीं पड़ा है।" यद्यपि चीन भारत की तुलना में, आर्थिक रूप से बेहतर प्रदर्शन कर रहा है, फिर भी, चीन में अकाल पड़ा, जोकि विश्व इतिहास में का सबसे बड़ा अकाल है। 1958-61 के दौरान, लगभग 30 मिलियन लोगों की अकाल के कारण मृत्यु हुई। जबकि देखने में यह आया है कि दोषपूर्ण सरकारी नीतियाँ अगले तीन वर्ष तक वैसी ही बनी रही, उनको सुधारने का कार्य बिल्कुल नहीं हुआ। इन दोषपूर्ण नीतियों का किसी ने भी विरोध नहीं किया और न ही उनकी किसी प्रकार से आलोचना की गई क्योंकि संसद में प्रतिपक्ष नहीं था और स्वतंत्र प्रेस नहीं था और न ही बहुदलीय चुनाव व्यवस्था थी।

सेन अपनी पुस्तक, *डेवलेपमेंट एज़ फ्रीडम* में तर्क प्रस्तुत करते हैं कि वास्तविक विकास मूल आय में सामान्य वृद्धि या प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से नहीं किया जा सकता है। बल्कि, इसके लिए अतिव्यापी प्रावधानों की जरूरत है जो बढ़ती हुई स्वतंत्रताओं के उपयोग को सक्षम बनाएँ।

तानाशाही व्यवस्था अपने नागरिकों का स्वतंत्रता प्रदान नहीं करती है, इसलिए उन्नति और आर्थिक विकास जैसे व्यापक मुद्दों पर उनकी समझ सीमित होती है। आर्थिक विकास का वास्तविक अर्थों में प्राप्त करना, केवल लोकतान्त्रिक संरचना में ही संभव है, जहाँ पर राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रता को पर्याप्त स्थान उपलब्ध होता है। जोकि लोगों के मूल्यों और उनकी आवश्यकताओं का गठन करने में सहायक होते हैं। इसके द्वारा बहुविध संस्थानों को उद्‌गम और विस्तार का अवसर दिया जाता है जैसे कि विधि रचनातंत्र, बाजार की संरचना, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्तरदायित्व की भावना इत्यादि जो मानव स्वतंत्रता और उसकी क्षमताओं का संरक्षण करने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) अमर्त्य सेन की संकल्पना, "स्वतंत्रता के रूप में विकास" क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांश

विगत वर्षों में, काफी प्रयोगसिद्ध अध्ययन हुए हैं जिनमें लोकतन्त्र और आर्थिक उन्नति के बीच सम्बन्धों की छानबीन करने का व्यापक प्रयास किया गया है। हालाँकि, यह प्रयोगसिद्ध स्थिति सांकेतिक और अनिर्णायक है। कुछ आँकड़े अनुरूप सिद्धान्त के पक्ष में हैं कि लोकतन्त्र आर्थिक उन्नति पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। हालाँकि, यह प्रयोगसिद्ध मिलान बहुत कमजोर हैं तथा दोनों दिशाओं में प्रतिरोधी उदाहरणों की संख्या काफी है: तानाशाही या सत्ताधारी शासन जिनका विकास में अच्छा रिकार्ड मौजूद है और लोकतान्त्रिक शासन जिनका विकास में रिकार्ड बहुत कमजोर है। वास्तव में, आर्थिक विकास के लिए राजनीतिक स्थिरता जरूरी है न कि एक विशेष प्रकार की राजनीतिक संस्था। कोई भी राजनीतिक संस्थान जब तक वह स्थिर बना रहता है, विकास को उन्नत करता रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि विकास को राजनीतिक अस्थिरता से खतरा है। पिछले हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि लोकतन्त्र व्यवस्था में लगातार हड़तालों, प्रदर्शनों, दंगों की भरमार रही है जबकि तानाशाही व्यवस्था में इस तरह की कोई भी घटनाएँ कम होती हैं। तानाशाही व्यवस्था में, जन शासक के शासन को खतरा होता है, तो विकास की गति धीमी हो जाती है। विभिन्न प्रकार की राजनीतिक और सामाजिक अशांति के दौरान भी ऐसा ही होता है। जब कभी भी सरकार को खतरा होता है या कुछ बदलाव किए जाते हैं, लोग सरकार के खिलाफ प्रदर्शन शुरु कर देते हैं। इससे अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लोकतन्त्र के अंतर्गत इस प्रकार की घटनाएँ कम होती हैं, क्योंकि लोकतन्त्र संस्थाओं के माध्यम से संचालित होता है न कि किसी व्यक्ति द्वारा। यहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि समय आने पर सरकार बदल जाएगी और जब वे यह जानते हैं कि वे उसी तरीके से अपना विरोध कर पा रहे हैं, इसलिए ज्यादातर लोग प्रदर्शन नहीं करते हैं।

लोकतन्त्र आर्थिक विकास को लम्बे समय में स्थिरता और सतत्ता देता है, जबकि तानाशाही राज्यों के बारे में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। हम देख सकते हैं कि 1917 की रूसी क्रांति के बाद सोवियत संघ में क्या घटनाएँ घटी हैं। जबकि आरंभ में सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था अच्छी थी, धीरे-धीरे उसमें बाधाएँ आने लगीं, जिन्होंने 1991 में सोवियत विघटन में अपना योगदान दिया। तानाशाही शासनों में प्रकृति को हानि पहुँचाने की प्रवृत्तियाँ होती हैं और वे विकास के लिए वातावरण नष्ट करने लगती हैं। सोवियत संघ ने मध्य एशिया में बांधों जैसे व्यापक परियोजनाओं को संचालित किया था परन्तु आज मध्य एशिया की पारिस्थितिकी (ecology) नष्ट होने के करीब पहुँच गई है क्योंकि सोवियत संघ द्वारा आवश्यकता से अधिक उनका दोहन किया गया, जिससे वहाँ की स्थिति बद से बदतर हो गई। अरब सागर की खराब हालत इसका एक उदाहरण है। चीन भी इसी प्रकार से अपना कार्य कर रहा है, और उसने आज लगभग 90,000 बाँधों का निर्माण किया है। इतने बाँध बनाने के लिए मानव अधिकारों का हनन हुआ है। शशी थरूर ने चीन और भारत के विकास मॉडल की समीक्षा हमारे समक्ष रखी है। वे कहते हैं कि चीन का आर्थिक विकास खतरनाक गति से हुआ है परन्तु, इस विकास ने मानवीय मूल्यों की बलि दी है जैसे – जनसंख्या विस्थापन, किसानों से उनकी भूमि को छीन लिया गया, बाँधों के कारण गाँवों का बह जाना, बढ़ता प्रदूषण, मानव अधिकारों की अनदेखी और सरकार द्वारा शक्ति के दुरुपयोग पर मामूली नियंत्रण। दक्षिणी कोरियाई, ताईवानी, सिंगापुरी और अभी हाल के चीन के अनुभव ली थीसीस के लिए साक्ष्य हमको उपलब्ध कराते हैं। हालाँकि, राजनीतिक शासनों के प्रभाव का आंकलन करने के लिए उनके संपूर्ण रिकार्ड की जाँच करनी चाहिए न कि कुछेक देशों का, जो अच्छे परिणाम दे रहे हैं। सी. एच न्यूटसेन के विश्लेषण में ली थीसिस के लिए कुछ साक्ष्य नहीं मिले हैं यहाँ तक कि एशिया में भी नहीं।

उन्होंने एशिया के 21 देशों के प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग किया, परन्तु उन्हें आर्थिक विकास पर तानाशाही शासकों का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं मिला, चाहे किसी भी समयावधि की जाँच की गई हो।

11.6 संदर्भ

एकमोगलू, डी. (2013), "डज़ डेमोक्रेसी बूस्ट इकोनॉमिक ग्रोथ", डब्ल्यू.ई.एफ. रिपोर्ट, URL: https:/www.weForum.org/agenda/2014/05democracy_boost_economic_growth

गैंग, गुओ (1998), "डेमोक्रेसी ऑर नॉन-डेमोक्रेसी, फ्रॉम दि पर्सपेक्टिव ऑफ इकॉनामिक डेवलेपमेंट, URL: http://home.demiss.edu/_gg/paperhtm/dmcrecnm.htm

क्यूटसेन, सी. एच. (2010), "इन्वेस्टीगेटिंग दि ली थीसिसः हाऊ बैड इज़ डेमोक्रेसी फॉर एषियन इकॉनामिक्स?" *यूरोपियन पॉलिटीकल साइंस रिव्यू*, 2-3, 457-473।

लिपसेट, सीमौर मार्टिन (1959), "सम सोशल रिक्वुजिट्स ऑफ डेमोक्रेसीः इकानामिक डेवलेपमेंट एंड पॉलिटिकल लेजीटीमेसी", *अमेरिकन पॉलिटीकल साइंस रिव्यू*, खण्ड 53, अंक 69, पृ. 105।

प्रज़ेवर्सकी, एड्म, एवं फर्नांडो लोमोंगी. (1993) "पालिटिकल रीजिम्स एंड इकॉनॉमिक ग्रोथ", *जर्नल ऑफ इकॉनामिक पर्सपेक्टिव्ज,* खण्ड 7, अंक 3, पृ. 51-69।

प्रजेवर्सकी एड्म, माईकल अल्वारेज, जोस एंटोनियो चीबब एवं फर्नाड़ोलीमोंगी (1996), वाट मैक्स डेमोक्रेसी इंडूर?" *"जर्नल ऑफ डेमोक्रेसी,* खण्ड 7, अंक 1, पृ. 39-55।

सेन अमर्त्य (1999), *डेवलेपमेंट एज फ्रीडम*, ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तीन लाभों पर प्रकाश डालिएः
   - उत्तरदायित्व की अनुमति
   - विभिन्न प्रकार के विचारों में से सबसे श्रेष्ठ विचार सुनिश्चित किया जाता है।
   - नागरिकों का चरित्र निर्माण करता है।
2) आर्थिक उन्नति सतत् विकास करती है, पर आर्थिक विकास ऐसा नहीं करता।
3) ली थीसिस लोकतन्त्र की कीमत पर आर्थिक विकास को महत्व देता है, यह अनुशासन को भी महत्व देता है।

बोध प्रश्न 2

1) वास्तविक विकास मूल आय या प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं है, बल्कि इसके लिए अति व्यापी प्रावधानों की जरूरत है, जो बढ़ती हुई स्वतंत्रताओं के उपयोग को सक्षम बनाएँ।

इकाई 12 स्वतंत्रता बनाम नियंत्रण*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 परिचय

12.2 स्वतंत्रता का अर्थ

12.2.1 स्वतंत्रता पर जे. एस. मिल के विचार

12.3 नियंत्रण (सेन्सरशिप) की अवधारणा

12.4 स्वतंत्रता और नियंत्रण के बीच संबंध

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप स्वतंत्रता और नियंत्रण की संकल्पनाओं का पता लगाएंगे और साथ ही, यह भी जानेंगे वे कैसे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपको निम्नलिखित में सक्षम होना चाहिए:

- स्वतंत्रता और नियंत्रण के अर्थ की व्याख्या करें; तथा
- उनके संबंधों को समझें।

12.1 परिचय

स्वतंत्रता को एक प्रतिष्ठित राजनीतिक मूल्य के रूप में बहुत से लोग मानते हैं और शुरुआत से ही मनुष्य तथा राज्य दोनों अपने-अपने हिस्से की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए प्रयासरत रहे हैं। स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त हैं, इसके बिना न तो राज्य और न ही व्यक्ति कोई प्रगति कर सकता है। इतिहास उन अभिलेखों से भरा है, जहां स्वतंत्रता के अपने हिस्से को सुनिश्चित करने और विस्तार करने के लिए व्यक्तियों और राज्यों के बीच संघर्ष देखा जा सकता है। लगभग हर कोई इस बात से सहमत प्रतीत होता हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता महत्वपूर्ण है और राज्य द्वारा समग्र विकास के लिए अभूतपूर्व कानूनी सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। लेकिन साथ ही राजनीतिक वैज्ञानिकों वकीलों राजनीतिक नेताओं और नागरिकों के बीच इन बातों को लेकर व्यापक मतभेद हैं जैसे– स्वयं स्वतंत्रता की अवधारणा को लेकर तथा एक व्यवस्थित राज्य में कितनी स्वतंत्रता स्वीकार्य हैं। राज्य नागरिक हितों की रक्षा के लिए, एक उपकरण के रूप में 'नियंत्रण' (सेंसरशिप) का इस्तेमाल करता है। कुछ मामलों में भ्रामक, झूठी या घृणित बातों से भी व्यक्तियों की गरिमा की रक्षा राज्य करता है। यह माना जाता है कि लोकतंत्र में सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए 'तर्कसंगत प्रतिबंध' महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि ऐसे विद्ववान हैं जो तर्क देते हैं कि राज्य द्वारा 'नियंत्रण' का विकास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अवरोध उत्पन्न करने के लिए किया गया है तथा इसका उपयोग राज्य अपनी शक्ति को बनाए रखने के लिए करता है। सभी राजनीतिक संस्कृतियों में 'नियंत्रण' विभिन्न स्तर पर पाया जाता है और इसका स्रोत राजनीतिक, सामाजिक, कानूनी या सांस्कृतिक हो सकता है।

*डॉ. शालिनी गुप्ता, असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस इकाई में हम कुछ जटिल प्रश्नों को समझने की कोशिश करेगे, जैसे– क्या लोकतांत्रिक समाज में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सीमाएं बाधंना अनिवार्य हैं? भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को किस हद तक 'उचित' माना जाना चाहिए तथा कौन तय करेगा कि क्या उचित है? हम यह समझने का भी प्रयास करेंगे कि किस परिस्थिति में 'नियंत्रण' को उचित ठहराया जा सकता है और क्या इससे हितों के संघर्ष की स्थिति में बढोत्तरी होती है? 'सार्वजनिक अच्छाई' में कार्य करने हेतु, राज्य के पास वैध रूप से नियंत्रण का उपयोग करने के लिए कितनी शक्ति है? तथा उन प्रतिबन्धों के बीच अंतर कैसे करें। एक तरफ जो दमनकारी उद्देश्यों हेतु और दूसरे जो 'कानूनी रूप से स्वीकार्यता' हेतु उपयोग किए जाते हैं।

अंत में, हम उन परिस्थितियों पर भी विचार करेंगे जिसमें 'नियंत्रण' के दमनकारी उपयोग के परिणामस्वरूप अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो तथा तब व्यक्तियों के द्वारा राज्य के खिलाफ क्या कार्यवाही हो।

12.2 स्वतंत्रता का अर्थ

स्वतंत्रता की अवधारणा जटिल है और इसका प्रयोग अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ हैं। इसे अक्सर 'आजादी' शब्द के सन्दर्भ में एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है और दोनों को एक-दूसरे के समानार्थी माना जाता है। यद्यपि कुछ विद्वान हैं जो 'आजादी' और 'स्वतंत्रता' के बीच भेद करते हैं वे तर्क देते हैं कि 'स्वतंत्रता' राजनीतिक या कानूनी आजादी को प्रदर्शित करती हैं, जबकि 'आजादी' व्यक्ति की क्षमता के अन्तर्गत गतिविधियों की एक बड़ी श्रेणी शामिल करती है, जिसे वो अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी बाहरी दबाव के कर सकता है। इस इकाई में, दोनों के बीच के भेद पर चर्चा नहीं की गई हैं तथा दोनों को एक-दूसरे के लिए उपयोग किया गया हैं। 'लिबर्टी' (स्वतंत्रता) शब्द लैटिन शब्द 'लिबरल' से लिया गया हैं, जिसका अर्थ हैं कि सभी प्रकार के प्रतिबंधों (अंकुष) की अनुपस्थिति । इस अर्थ में, स्वतंत्रता का मतलब है कि किसी को भी बिना बाहरी अवरोध के अपनी पसंद के हिसाब से चयन करने का अधिकार है। जी.डी.एच कोल ने स्वंतत्रता की अवधारणा को स्पष्ट रूप से बताते हुए कहा कि 'व्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्तित्व को बाहरी बाधाओं के बिना व्यक्त करने की स्वतंत्रता हैं'। यद्यपि व्यवस्थित समाज में असीम स्वतंत्रता का अस्तित्व नहीं हो सकता है, जैसे कि मैककेनी ने तर्क दिया कि 'स्वतंत्रता सभी प्रकार के नियंत्रण की अनुपस्थिति नहीं हैं, यह तर्कहीन नियंत्रण की जगह तार्किक नियंत्रण को दर्शाती है। महात्मा गांधी ने भी स्वतंत्रता की ऐसी ही परिभाषा दी। उनके अनुसार "स्वतंत्रता का मतलब प्रतिबंध की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि यह व्यक्त्वि के विकास में निहित हैं"। जेराल्ड मैक्कलम का स्वतंत्रता के बारे में तर्क हैं कि "हमेशा कुछ का (कर्त्ता अथवा कर्त्ताओं), कुछ से, करना, नहीं करना, बनना अथवा कुछ नहीं बनना"। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाएं यह स्पष्ट करती है कि 'आजादी' कुछ सीमाओं के साथ स्वतंत्रता है, लेकिन सवाल उठता है कि इन प्रतिबंधों, हस्तक्षेपों या बाधाओं का स्रोत क्या हैं तथा क्या किसी भी क्षेत्र में व्यक्तियों के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की संभावना नहीं है ?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर सर आइज़िया बर्लिन ने अपने प्रसिद्ध निबंध "टू कानसेप्ट आफ लिबर्टी" (1941)(स्वतंत्रता की दो अवधारणाएं) में दिए, जिसमें उन्होंने राज्य की भूमिका के आधार पर सकारात्मक स्वतंत्रता और नकारात्मक स्वतंत्रता के बीच अंतर बताया है। नकारात्मक स्वतंत्रता से तात्पर्य है कि राज्य द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप से स्वतंत्रत होना। इसका अभिप्राय यह हैं कि वो क्षेत्र जिसमें व्यक्ति को यानि स्त्री/पुरुष को जो पंसद है वो करने के लिए स्वतंत्र हो बिना दूसरों के द्वारा बाधा डाले हुए। बर्लिन के शब्दों में नकारात्मक

स्वतंत्रता की अवधारणा, इस प्रश्न के उत्तर में निहित हैं, कि "वह कौन सा क्षेत्र है जिसमें कर्त्ता–व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह– स्वतंत्र हैं या उन्हें स्वतंत्र रूप से छोड़ा जाना चाहिए जिसमें वे जो करने में सक्षम हो या कर रहे हों, वो बिना दूसरे व्यक्तियों के हस्तक्षेप के कर सके ?" बर्लिन के अनुसार सकारात्मक स्वतंत्रता इस सवाल का जवाब देने का प्रयास करती है कि "क्या या कौन नियंत्रण अथवा हस्तक्षेप का स्रोत है, जो किसी के करने को निर्धारित कर सकता है या यह करने की बजाय वह करना है ?" इस प्रकार सकारात्मक स्वतंत्रता का तात्पर्य 'तर्कसंगत आत्म' की स्वतंत्रता से है। रूसो और अन्य आदर्शवादियों का मानना था कि मनुष्य तार्किक प्राणी होता है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता उस प्रक्रिया में भागीदारी के माध्यम से हासिल की जा सकती है, जिसमें किसी समुदाय के द्वारा अपने मामलों के ऊपर सामूहिक नियंत्रण का अभ्यास किया जाता है, जो कि "सामान्य इच्छा" के अनुरूप होता है, जो कि सभी लोगों की 'सद्इच्छा' का संश्लेषण था। इस प्रकार, सकारात्मक स्वतंत्रता किसी के जीवन के नियंत्रण से सम्बन्धित है। नकारात्मक स्वतंत्रता व्यक्ति को अकेले छोड़ देने के बारे में है, जबकि सकारात्मक स्वतंत्रता व्यक्ति (स्त्री/पुरुष) के व्यक्तित्व को विकसित करने की स्वतंत्रता से सम्बन्धित है। सकारात्मक स्वतंत्रता के लिए, राज्य को ऐसी स्थितियों का सृजन करना चाहिए जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमता में वृद्धि, नैतिक विकास और आत्मबोध की प्राप्ति कर सके। जबकि, नकारात्मक स्वतंत्रता के सन्दर्भ में राज्य की कोई भूमिका नहीं होती है, क्योंकि व्यक्ति को अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास अपनी राष्ट्रीयता के अनुरूप करने हेतु अकेले छोड़ दिया जाना चाहिए। नकारात्मक स्वतंत्रता के प्रमुख समर्थकों में एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो (अहस्तक्षेप–नीति के प्रस्तावक), जान लाक, जे. बेंथम, एफ ए हायेक, राबर्ट नाजिक और आइज़िया बर्लिन शामिल हैं। सकारात्मक स्वतंत्रता के मुख्य समर्थकों में टी एच ग्रीन, एल टी हाब्हाउस, हेराल्ड लास्की, अर्नेस्ट बार्कर और सी बी मैकफर्सन शामिल हैं। जे एस मिल ने 'आत्म-संबंधित' तथा 'अन्य संबंधित' आचरण के बीच अन्तर किया। उन्होंने तर्क दिया कि 'आत्म-संबंधित' आचरण में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने मानव क्षमता के विस्तार के रूप में स्वतंत्रता की व्यापक अवधारणा दी हैं। सेन अपनी पुस्तक, 'डेवल्पमेंट ऐज़ फ्रीडम्' (विकास स्वतंत्रता के रूप में) में कहते हैं कि "विकास को वास्तविक स्वतंत्रता के विस्तार की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है जिसका लोग आनंद करते हैं। मानव स्वतंत्रताओं पर ध्यान केन्द्रित करना विकास के संकुचित विचारों के साथ विरोधाभास पैदा करता है, जैसे कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद या व्यक्तिगत आय में वृद्धि या औद्योगीकरण या तकनीकी प्रगति या समाजिक आधुनिकीकरण"। उन्होंने आगे कहा कि विकास के द्वारा स्वतंत्रता विरोधी प्रमुख स्रोतों को हटाने की आवश्यकता हैः गरीबी के साथ-साथ अत्याचार, अपर्याप्त आर्थिक अवसरों के साथ-साथ व्यवस्थित सामाजिक वंचितता, सार्वजनिक सुविधाओं की उपेक्षा के साथ-साथ असहिष्णुता या दमनकारी राज्य की अधिकाधिक गतिविधियां।

प्रांरभिक उदारवाद, व्यक्तिवाद के दर्शन के साथ जुड़ा हुआ है। विश्वास यह था कि रूढ़िवाद, अज्ञानता और सांमतवाद के खिलाफ लड़ाई व्यक्तिगत पहल से शुरू होगी। यह एक स्वायत्त और तर्कसंगत व्यक्ति की धारणा पर आधारित था। इसने तर्क दिए कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। राजनीतिक स्तर पर, राज्य की स्वेच्छाचारी शक्ति पर प्रतिबंध के लिए तर्क दिए। आर्थिक पहलुओं में, नकारात्मक स्वतंत्रता ने 'अहस्तक्षेप की नीति' का अनुसरण किया। व्यक्तिगत स्तर पर, इसने राज्य और समाज से व्यक्तिगत मामलों में स्वतंत्रता मांगी। थामस हाब्स ने स्वतंत्रता को 'कानून की चुप्पी पर निर्भर' रहने वाला बताया। मिल्टन फ्राइडमैन ने अपनी पुस्तक 'कैप्टि्लीज्म एंड फ्रीडम' में तर्क दिया कि स्वतंत्रता 'एक आदमी पर उसके साथियों के द्वारा डाले जाने वाले दबाव की अनुपस्थिति है'। नकारात्मक स्वतंत्रता के विपरीत, सकारात्मक स्वतंत्रता समाज सामाजिक-

आर्थिक स्थितियों, अधिकारों, समानता और न्याय के साथ स्वतंत्रता को जोड़ती है। इस नई दृष्टि का मानना था कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बजाय सामान्य अच्छाई पर जोर दिया जाना चाहिए। इसने राज्य को दुश्मन के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्रता को बढावा देने वाले के रूप में देखा। यह ये भी मानता है कि समानता के साथ कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती है और समानता के आधार पर ही स्वतंत्रता का सकारात्मक अर्थ होता है। नकारात्मक स्वतंत्रता कुछ लोगों के हाथ में निजी सम्पत्ति पर ध्यान केन्द्रित करती हैं और उनकी रक्षा करती है, जबकि गरीब वर्ग को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है। अत: राज्य को हाशिए के वर्गो के विकास के लिए सक्षम स्थितियाँ प्रदान करनी चाहिए। टी एच ग्रीन ने विचार दिया कि स्वतंत्रता प्रतिबंध की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि ऐसा कुछ करने के लिए सकारात्मक शक्ति है जो महत्वपूर्ण व आनंददायक हो, जिसे हम सामान्यतः दूसरों के साथ मिलकर करते भी हैं या आनंद लेते हैं। हैराल्ड लास्की ने कहा कि ' स्वतंत्रता उस माहौल को बनाए रखने के लिए उत्सुक रहती है जिसमें सभी को अपने सर्वश्रेष्ठ आत्महित की प्राप्ति के अवसर मिलते हैं'।

12.2.1 स्वतंत्रता पर जे एस मिल के विचार

जे एस मिल के निबंध 'आन लिबर्टी' (1859) (स्वतंत्रता पर) को राजनीतिक स्वतंत्रता की चर्चाओं में एक ऐतिहासिक प्रकाशन के रूप में जाना जाता हैं। मिल के अनुसार, स्वतंत्रता के बिना व्यक्ति का विकास असंभव है और यह समाज की खुशी के लिए भी आवश्यक है। उनका मानना है कि प्रतिबंध एक बुराई है और व्यक्ति को 'स्वयं पर' छोड़ दिया जाना चाहिए। स्वतंत्रता पर मिल के तर्क को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है जो इस प्रकार है – विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कार्रवाही की स्वतंत्रता। मिल विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मामले में पूर्ण स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं और तर्क देते हैं कि 'यदि सिवाय एक व्यक्ति को छोड़कर सम्पूर्ण मानव जाति की एक राय थी, और केवल एक व्यक्ति का विचार विपरीत था, तो मानव जाति के द्वारा उस एक व्यक्ति को शांत कराना न्यायसंगत नहीं होगा, अगर उस व्यक्ति के पास शक्ति थी, तब मानव जाति को शांत करना न्यायसंगत होगा'। उन्होंने आगे बताया कि क्यों यहां तक कि एक व्यक्ति की आवाज को भी दबाना समाज के लिए खतरनाक हो सकता है और सवाल यह है कि तब क्या होगा यदि उस व्यक्ति की राय सच है? उस स्थिति में, मानवता सत्य से वंचित हो जाएगी और विकास का अवसर हाथ से चला जाएगा। दूसरा, उन्होंने स्वीकार किया कि एक संभावना है कि वह एक राय झूठी हो, लेकिन इस मामले में भी अभिव्यक्ति मूल्यवान है क्योंकि यह मौजूदा सत्य की पुष्टि करेगा। आखिर में, वो तीसरे विकल्प पर भी चर्चा करते हैं और इस विचार से सहमत होते हैं कि सच्चाई अक्सर 'उदार' होती है और आंशिक रूप से सत्य व आंशिक रूप से झूठी हो सकती है। उनका तर्क हैं कि व्यक्तियों द्वारा किए गए निर्णय अक्सर उन विश्वासों पर आधारित होते हैं, जिन्हें वे मानते हैं कि वे अचूक हैं तथा इसके आस-पास की चर्चा के सभी विकल्पों को त्याग देते हैं। लेकिन मिल के लिए, ज्ञान और समझ में प्रगति खुली चर्चा के माध्यम से आती है क्योंकि विवादित विचारों का परिणाम एक उन्नत सत्य होगा, तथा मानव जाति के लिए सत्य की खोज का अंत होगा। मिल का मानना था कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विचारों के संघर्ष को सुगम बनाती है, जिससे विचार, चर्चा और प्रगति को बौद्धिक प्रोत्साहन मिलता हैं। वो आश्वस्त थे कि इस तरह की स्वतंत्रता के अभाव में, समाज पर हठधर्मिता का प्रभुत्व होगा। ऐसे विश्वासों पर संघटित समाज पूर्वाग्रहों से विकृत हो जाएगा और विचारों के अभाव में एक तर्कसंगत नींव के आधार से वंचित होगा। यह व्यक्तित्व हैं जो मनुष्य को व्यवहार रीति-रिवाज और प्रथाओं के स्वीकृत तरीकों का अंधाधुंध पालन करने के बजाय चुनने में सक्षम बनाता है। जीवन पद्धति 'सही' अथवा 'गलत' इसके बारे में कोई पूर्व-निर्धारित अवधारणा नहीं है और 'सही' विकल्प

की विषय-वस्तु, उस व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करती है। मिल ने प्रस्तावित किया कि व्यक्तियों को स्वतंत्रता के सर्वोच्च संभावित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करना चाहिए, लेकिन यह भी स्वीकार किया कि अनियंत्रित स्वतंत्रता उत्पीड़न की सम्भावना पैदा कर सकती है और जिसके परिणामस्वरूप निरंकुश व्यवहार हो सकता है। अत; उन्होने सभी मानवीय कार्यों को दो श्रेणियों में विभाजित किया, जैसे– 'स्वयं से संबंधित क्रियाकलाप' और 'अन्य से संबंधित क्रियाकलाप'। स्व-संबंधित कार्य वे हैं जो केवल व्यक्ति से सरोकार रखते हैं और इस क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप, केवल उसे दूसरों को नुकसान पहुंचाने से रोकने के लिए उचित हैं अर्थात अन्य से संबंधित क्रियाकलापों के मामले में। वास्तव में, 'हानि सिद्धांत' समाज के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य को सुनिश्चित करता है। इस प्रकार, यह समझा जा सकता है कि यद्यपि मिल भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मामले में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करते हैं, साथ ही साथ उन्होंने व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्यों पर कुछ सीमाएं लगाने का समर्थन किया ताकि समाज में व्यवस्था बनी रहे। यहां 'नियंत्रण'(सेंसरशिप) की अवधारणा आती है क्योंकि ये सीमाएं समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार के 'नियंत्रण' का आकार लेती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता पर जे एस मिल के विचारों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सकारात्मक स्वतंत्रता से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 नियंत्रण (सेंसरशिप): अवधारणा

'सेंसरशिप' शब्द की उत्पत्ति, 443 बीसी में रोम में स्थापित सेंसर कार्यालय से हुई। इसके द्वारा नैतिकता को नियंत्रित करने और अनुष्ठानिक रूप से लोगों को शुद्ध करने का मकसद था। इस कार्यालय से 'नियंत्रण' शब्द आधुनिक रूप से परिभाषित हुआ, जिसने सार्वजनिक कृत्यों, विचारों की अभिव्यक्तियों और कलात्मक प्रदर्शनों को परखने, प्रतिबंधित और निषेध करने का कार्य किया। नियंत्रण को आज के समय में सामान्यतः एक अशिक्षित और

अधिकाधिक दमनकारी दौर के अवशेष के रूप में माना जाता है। समाज के अन्तर्गत प्रसारित विचारों, सार्वजनिक संचार व सूचनाओं के माध्यमों का दमन या अकंश, 'नियंत्रण' (सेंसरशिप) कहलाता है। रितु मेनन का तर्क हैं, कि 'नियंत्रण' तब होता जब एक ऐसा विचार व्यक्त करने वाली कला, जो वर्तमान मान्यताओं के तहत नहीं आती है, उसे जब्त कर लिया जाता है, उसमें कटौती या उसे वापस लिया जाता है या अनदेखा या बदनाम किया जाता हैं अथवा दर्शकों की पहुंच से दूर कर दिया जाता है। नियंत्रण एक ऐसा तरीका हैं जिसका उपयोग राज्य या समाज सांस्कृतिक क्षेत्र में छल-कपट के माध्यम से अपनी सत्ता शक्ति को बनाए रखने के लिए करता है। समाज में 'क्या स्वीकार्य है', इसका निर्णय लेने में सांस्कृतिक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। क्याोंकि सांस्कृतिक आधिपत्य कुछ शब्दों या कृत्यों को सभ्य और अन्य को असभ्य घोषित करता है और आगे चलकर इसके अर्थ व विचार को नियंत्रित करता है। सांस्कृतिक समझ के अतिरिक्त धर्म तानाशाही और बाजार जैसे कई अन्य स्रोत भी 'नियंत्रण' हेतु उपयोग हो सकते हैं। सर्वप्रथम, धार्मिक नेतृत्व के द्वारा नियंत्रण का इस्तेमाल किया गया। प्रारंभ में, सभी कला और साहित्यिक कार्यों को धार्मिक विचारों ने काफी प्रभावित किया गया था तथा 'अच्छा और स्वीकार्य' जैसे शब्द उन कार्यों के साथ जुड़े हुए थे, जो मौजूदा यथास्थिति की सराहना करते थे। जबकि जो लोग जिरह करते थे, उन्हें "ईशनिंदक, अश्लील और तर्कहीन" माना जाता था।

रोमन कैथोलिक चर्च ने सूची (इंडेक्स) 'लाइब्रोहम प्रोहिबिटम' विकसित किया, जो निषिद्ध किताबों की एक सूची थी, जिनकी उत्पत्ति 5वीं शताब्दी सीई पूर्व हुई और जो कि 20वीं शताब्दी में आधिकारिक मंजूरी से जारी रखी गई। विचारक की सोच को चुप कराने का सबसे असाधारण उदाहरण गैलीलियो गीलीलि (1564-1642) पर 1633 में प्रतिबंध का लगाया जाना था। यह इस प्रसिद्ध वैज्ञानिक के लिए इटली में एक कठिन समय था, क्योंकि उनके वैज्ञानिक निष्कर्ष चर्च द्वारा व्यापकता से फैलाई गई व्याख्याओं को चुनौती दे रहे थे। इस प्रकार का नियंत्रण न केवल कला, वास्तुकला या साहित्यिक कार्यों तक सीमित था, अपितु भाषा पर भी था तथा पवित्रता और शुद्धता बनाए रखने का जिम्मा महिलाओं पर डाला गया। इसने एक 'आदर्श और नैतिक' महिला के जीवन को परिभाषित किया, जो परिभाषित संरचना के अनुकूल नहीं रहा, उसे सामाजिक आलोचना का शिकार बना दिया।

शानदार क्रांति (Glorious Revolution) और फ्रांसीसी क्रांति ने इतिहास में एक नए युग को चिह्नित किया क्योंकि लोगों ने स्वतंत्रता, समानता और निर्णय लेने की प्रक्रिया में भूमिका जैसे आदर्शों की मांग शुरू की। धार्मिकता से लौकिक शक्ति की ओर का बदलाव विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग रूप में कार्य किया। दुनिया गवाह है कि जर्मनी में नाजीवाद और इटली में फासीवाद का उदय हुआ क्योंकि शक्ति का उच्चस्तर का संकेन्द्रण हुआ परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध हुआ। हिटलर और मुसोलिनी ने लोगों के दिमाग पर नियंत्रण रखने के लिए अभियांत्रिक भाषा का इस्तेमाल किया तथा अभिव्यक्ति के सभी रूपों को दबा दिया जो उनके अधिकार और वैधता पर सवाल उठा सकते थे। इसके अलावा स्टालिन की अवधि के सोवियत संघ की गंभीर आलोचना की गई क्योंकि उस दौरान कला, साहित्य, फिल्मों और संचार के अन्य माध्यमों पर नियंत्रण किया गया। तानाशाहों के तहत भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रही, बल्कि राज्य ने इसे समर्थन और अस्वीकृति के वाक्यांशों को परिभाषित करने के लिए इस्तेमाल किया, जिन वाक्यांशों को सभी के द्वारा स्वीकार किया जाना था। आधिकारिक कम्यूनिस्ट पार्टी सिद्धांतो के प्रकाश में ऐसे पर्यवेक्षण, राजनीतिक चर्चाओं या किताबों और समाचार पत्रों तक सीमित नहीं थे, बल्कि प्रसारण (ब्राड्कास्ट) समेत सभी प्रकार के विषयों और प्रकाशन के सभी रूपों को समेटे हुए थे। इसके परिणामस्वरूप, उन लेखकों को स्व-नियंत्रण करना पड़ा जो किसी तरह से अपना

काम प्रकाशित कराना चाहते थे। 1980 के दशक के उत्तरार्ध में सरकार की ग्लासनोस्ट (या 'खुलेपन') की नीतियों के आगमन से नियंत्रण में कुछ छूट दी गई। नव-उदारवादी नीतियों के आगमन ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों की संरचना को परिवर्तित कर दिया। निजीकरण और उदारीकरण जैसी शब्दावली प्रचलन में आई, जो देशों को मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के 'जादुई' विचार को स्वीकार करने के लिए दबाव डाल रही थी। 'अंधाधुंध विज्ञापनों' से भी हुई बाजार संचालित अर्थव्यवस्थाओं ने न केवल लोगों की क्रय शक्ति और आवश्यकता को प्रभावित किया, बल्कि नागरिकों की राजनीतिक राय को गढा और पुनःनिर्मित किया। चुनाव अभियान उन विज्ञापनों के अधीन हो गए, जिन्होंने शब्दों के अर्थों को विकृत करना शुरू कर दिया और वाक्याशों को उनके सन्दर्भ से हटाकर प्रस्तुत करने लगे। इस तरह के अप्रत्यक्ष सांस्कृतिक बाजार केन्द्रित नियंत्रण के साथ वास्तविक खतरा इस तथ्य में निहित हैं कि यह 'सोचने के अधिकार' और 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालता है। अपितु यह पूरी तरह से स्वंय के बारे में सोचने की 'क्षमता' को नष्ट करता है और व्यक्ति के तर्कसंगत होने के पूरे विचार पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। इस प्रकार, उपर्युक्त चर्चा से पता चलता है कि पूरे इतिहास में विभिन्न रूपों में नियंत्रण का इस्तेमाल लोगों के दिमाग को नियंत्रित करने और आधिपत्य की शक्ति को बनाए रखने और समाज में व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर अधिकारियों के द्वारा उनके कृत्यों और नीतियों के लिए वैधता हासिल करने हेतु किया जाता रहा है।

12.4 स्वतंत्रता और नियंत्रण (सेंसरशिप) के मध्य संबंध

एक मुक्त समाज का अस्तित्व विभिन्न समूहों के बीच संवाद, सूचनाओं का मुक्त प्रवाह और निरंतर वाद-विवाद और आलोचना के लिए स्थान पर निर्भर करता है। क्योंकि यह ज्ञान के क्षितिज का विस्तार करने और मौजूदा सत्य को पुनर्स्थापित करने की अनुमति देता है। लोकतंत्र में, नागरिकों की सहमति सरकार की कार्यवाही को वैधता प्रदान करने के लिए अनिवार्य है, जो केवल स्वतंत्र भाषण और अभिव्यक्ति पर संरचित सक्रिय स्वतंत्रता के अस्तित्व के साथ संभव है। यह तर्क राजनारायण बनाम उत्तर-प्रदेश राज्य (1976) के मामले में भारत के सुप्रीम कोर्ट के फैसले की नींव बन गया, कि सूचना का अधिकार, अनुच्छेद 19(1) के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों का एक हिस्सा है। यह स्वतंत्रता के महत्व को भी सुझाता है, जिसे राज्य द्वारा लोकतंत्र के 'चौथे स्तंभ' अर्थात प्रेस को दिया जाना चाहिए। प्रेस की आजादी के माध्यम से सूचना का अधिकार समृद्ध होता है, जो नागरिकों को तर्क के सभी पक्षों को सुनने में और फिर अपनी स्वतंत्र राय किसी विषय पर बनाने में सक्षम बनाता है और इस प्रकार वे निष्पक्ष तरीके से निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। राज्य एक समयावधि में 'नियंत्रण' के विभिन्न तंत्रों के माध्यम से संचार के मुक्त प्रवाह को रोकने की कोशिश करता हैं। स्वतंत्रता पर राज्य और नागरिकों के बीच निरंतर संघर्ष, हाब्स और लॉक के समय से ही देखा जा सकता है। हाब्स ने तर्क दिया कि राज्य से सुरक्षा पाने के बदले में, नागरिकों को अपने कुछ अधिकारों का समर्पण करना चाहिए। इस प्रकार, उन्होंने समाज में कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए नागरिकों पर राज्य के द्वारा लगाए जाने वाले कुछ प्रतिबंधों को सही ठहराते हुए, अधिकारों के एक वृहत समूह के साथ एक मजबूत राज्य के निर्माण का समर्थन किया। लॉक ने एक सच्चे उदारवादी होने के नाते तर्क दिया कि राज्य केवल एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करने और प्रत्येक नागरिक के सार्वजनिक और निजी लेनदेन की देखरेख करने के लिए था। उन्होंने व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने वाले राज्य में, नागरिकों की उदार स्थिति का बचाव किया। जे एस मिल ने 'नियंत्रण' के खिलाफ तर्क देते हुए सुझाव दिया कि मानव का ज्ञान (किसी विषय पर) भिन्न-भिन्न रायों को व्यक्त करने से आगे बढ़ता है, ताकि सच्चाई और त्रुटि के बीच के अतंर को

स्पष्टता से देखा जा सके। इस प्रक्रिया में 'नियंत्रण' हस्तक्षेप करती है और पहले से ही घोषणा कर देती है कि यह या वह राय गलत या निषिद्ध हैं। अतः 'नियंत्रण' में सच्चाई को और सच्चाई के अनुसरण को नजरअंदाज कर, इसकी जगह अनुरूपता स्थापित करने की, एक अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है। कार्ल पापर ने भी किसी भी तरह के नियंत्रण के विरूद्ध चेतावनी दी और अपनी कृति 'द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनीमीज' (खुला समाज और इसके दुश्मन) 1945 में तर्क दिया कि समाज की योजना बनाने या नियंत्रण करने के किसी भी प्रयास से मानव स्वतंत्रता में कमी आएगी। वो आगे इंगित करते हैं कि 'मानव ज्ञान' में सवृंद्धि होती है और समय के साथ बदलता है तथा सामाजिक घटनाओं को प्रभावित करता हैं। इस प्रकार, भविष्य आज़ाद व्यक्तियों के द्वारा निर्मित किया जाता है, जिनकी पहुंच "खुले समाज" तक होती हैं। इसी तरह के समान विचारों का प्रतिरूप आइजिया बर्लिन के शब्दों में पाया जाता है जो तर्क देते है कि "प्रबुद्ध तानाशाही" अनिवार्य रूप से राज्यवाद को जन्म देता है और इसलिए यह 'मानव विचार के पूरे इतिहास में सबसे शक्तिशाली और खतरनाक तर्कों में से एक है"। अधिनायकवाद को हन्ना अरेंडट द्वारा स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों के साथ जोड़ा गया, जिन्होंने "समाज के सूक्षमकरण" को अधिनायकवाद की एक अनिवार्य विशेषता के रूप में बताया, जहां परिवार, मैत्री, व्यापार संघ, धर्म इत्यादि जैसे प्रत्येक सन्निकट संघ को राज्य द्वारा नष्ट कर दिया गया या नियंत्रण में ले लिया गया। राज्य ने शासन के सभी रूपों में अपनी चिरस्थायी उपस्थित दर्ज करके और भय के व्यवस्थित इस्तेमाल से, एकाकी व्यक्तियों का तैयार किया जो राज्य के लिए पूर्णतः वफादार थे। 'नियंत्रण' की अवधारणा को हर्बर्ट मार्क्युज़ ने अपनी पुस्तक 'रिप्रेसिव टॉलरेंस'(निरोधक सहिष्णुता) में अलग तरह से माना। उन्होंने तर्क दिया कि किसी राज्य में 'नियंत्रण' के कानूनों का अभाव है तो जरूरी नही है कि व्यक्तियों की स्वतंत्र इच्छा की योग्यतम प्रयोग की गारंटी हो। वे आगे कहते हैं कि ऐसा समाज जहां सामान्य आबादी को समझाने और चालाकी से बात मनवाने का काम उन लोगों के द्वारा किया जाता है जिन्होंने मीडिया का नियंत्रित कर रखा हो, ऐसी स्थिति में भाषण की स्वतंत्रता केवल शक्तिशाली अभिजात वर्ग के हितों की सेवा कर सकती है। अतः वो शक्ति नियंत्रण के सांस्कृतिक दायरे और लोगों की स्वतंत्र इच्छा पर उसके प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। लुई अलथुज़ेर के 'राज्य दमन सिद्धांत' को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि वो राज्य के दमनकारी और वैचारिक तंत्र के बीच अंतर करते हैं। उन्होंने बताया कि वैचारिक तंत्र समाज के निजी क्षेत्र जैसे–परिवार, शिक्षा, धर्म, मीडिया आदि से संबंधित है, जो सूचनाओं पर नियंत्रण के माध्यम से समाज की प्रमुख विचारधारा का सृजन करता है। इस प्रकार, 'नियंत्रण' व्यक्तियों या वर्गों द्वारा नहीं किया जाता है, बल्कि यह निजी डोमेन (प्रक्षेत्र) द्वारा अनजाने में की गई एक प्रक्रिया है, जिसमें यह अंतर्निहित हैं। इस प्रकार, उपर्युक्त तर्कों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नियंत्रण का उपयोग हमेशा राज्य द्वारा सीधे अपनी शक्ति को बनाए रखने के लिए नहीं किया जाता है, लेकिन कई बार इसका उपयोग संस्कृति, समाज, मीडिया, धर्म, शिक्षा आदि के माध्यम से किया जा सकता है। लेकिन सवाल यह उठता है कि राज्य नियंत्रण के अस्तित्व को कैसे न्यायसंगत ठहराते हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19 स्वतंत्रताओं की गारंटी देता है, जैसे– भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सभा, संचलन, पेशे इत्यादि की स्वतंत्रता। हालांकि इन अधिकारों की विशेषता जबकि मौलिक है, पर ये प्रकृति में निरंकुश नहीं है और 'तर्कसंगत' प्रतिबंधों के अधीन है। इन प्रतिबंधों को देश की संप्रभुता, अखंडता और सुरक्षा की रक्षा, मानिहानि के विरूद्ध, शालीनता और नैतिकता के रक्षार्थ इत्यादि के आधार पर लगाया जा सकता है। इस प्रकार पूर्ण स्वतंत्रता की अवधारणा उस क्षण अशांत वातावरण में प्रवेश करती है, जिस समय यह नैतिकता, शालीनता या आसान भाषा में 'अभद्र भाषा' से संबंधित हो जाती है। अभद्र भाषा को उस भाषण के रूप में समझा जा सकता है, जो विशेष लोगों या समुदायों पर उनकी प्राकृतिक हीनता (जैसे

नस्लवादी भाषण) को इंगित करके नुकसान पहुचांने के इरादे से निर्देशित किया जाता है या वो भाषण जो स्वभाव से एक समूह के लागों का दूसरे पर प्रभुत्व का दावा करता हैं (जैसे नारी-द्वेशी भाषण)।

भाषा और भाषण हमेशा से एक बहुत शक्तिशाली माध्यम रहे हैं और कई बार उनका इस्तेमाल हिंसा भड़काने या लोगों की भावनाओं को आहत करने के लिए किया जा सकता हैं। रिचर्ड डेल्गाडो ने अपनी कृति 'वर्डस् दैट वुन्ड' (1993)(शब्द जो घायल करते हैं) में तर्क दिया कि नस्लवादी भाषण से पीड़ित लोगों पर इसका गहरा मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव पड़ता है जो आत्म-घृणा, अपमान और एकाकीपन (अलगाव) की ओर ले जाता है। इस प्रकार यह तर्क भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंधों की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसी तरह के विचार एंडिया ड्वर्टिन और कैथरीन मैकिनन ने देते हुए कहा कि लैंगिक उन्मुख भाषण को विनियमित किया जाना चाहिए क्योंकि यह महिलाओं के महत्व को कम करता है और न केवल हिंसा के लिए आधार प्रदान करता है, बल्कि यह महिलाओं के खिलाफ हिंसा भी है। उन्होंने अश्लील साहित्य (पोर्नोग्राफी) पर नियंत्रण की मांग की क्योंकि यह अपमान और हिंसा को बढ़ावा देता है जो कि समानता की अवधारणा के साथ मौलिक रूप से अंसगत हैं। इस प्रकार समाज, में विद्यमान विभिन्न प्रकार के 'नुकसान से नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'नियंत्रण' राज्य के संविधान में एक कानूनी श्रेणी प्राप्त कर सकता है। इसे समझने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 है, जो अस्पृष्यता को समाप्त करता है और किसी भी रूप में इसके चलन को वर्जित करता है। इस प्रकार, राज्य द्वारा नियंत्रण और प्रतिबंध का उपयोग, समाज में सामाजिक न्याय को बहाल करने के लिए किया गया था। इंटरनेट के आगमन के साथ, राज्य को नई चुनौती का सामना करना पड़ रहा हैं, जैसे– डिजिटल मीडिया के क्षेत्र को कैसे विनियमित किया जाए? इंटरनेट, 'शक्ति' को सरकार से नागरिक-समाज, व्यक्तिगत ब्लागर्स और नागरिक-पत्रकारों की ओर स्थानांतरित कर रहा हैं। चीन जैसे सत्तावादी राज्यों में, संचार के क्षेत्र में राज्य के मीडिया ब्रांड का वर्चस्व रहता है, क्योंकि राज्य विषय-वस्तु को कड़ाई से नियंत्रित करता है। अरब में जनआक्रोश की घटनाओं से पता चलता है कि इंटरनेट लोगों को एकत्र करके सरकार के पतन में प्रमुख भूमिका निभा सकता है इस प्रकरण ने राज्यों को डिजिटल मीडिया के प्रति अधिक सतर्क बना दिया है।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) स्वतंत्रता और नियंत्रण (सेंसरशिप) पर हर्बर्ट मार्क्युज के विचार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) दुनिया भर में सरकारों के लिए इंटरनेट एक चुनौती के रूप में कैसे उभर रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

स्वतंत्रता और नियंत्रण के बीच एक जटिल संबंध है जो सवालों से भरा भानुमती का पिटारा खोल देता है, ये सवाल हैं– क्या सभी तरह की स्वतंत्रताएं निरंकुश होती हैं? प्रतिबंधों को लगाने के लिए निर्णायक पैमाना क्या होना चाहिए? किसे इस बात की जांच करने की जिम्मेंदारी दी जानी चाहिए कि लगाए गए प्रतिबंध तर्कसंगत हैं या नहीं? इनमें से प्रत्येक प्रश्न के प्रत्युत्तर अन्तहीन हैं और समाज में मौजूद सभी समूहों को संतुष्टि प्रदान करने वाला प्रत्युत्तर देना, यदि असंभव नही है तो मुश्किल बहुत है। अरस्तु के शब्दों में, "मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है" और अकेले रहने के लिए या तो उसे जानवर होना चाहिए या भगवान। अतः यह सुझाव दिया जा सकता है कि किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता, जो अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता को नुकसान और बाधित करती है, उसे प्रतिबंधित करना होगा। लेकिन साथ ही, व्यक्तियों की स्वतंत्र तर्कशीलता को नियंत्रित करने के इरादे से, उन पर लगाए गए अतार्किक प्रतिबंधों का नागरिकों द्वारा सच्चे लोकतंत्र के आदर्शों की पुनर्स्थापना हेतु चुनौती दी जानी चाहिए।

12.6 संदर्भ

भार्गव, राजीव और आचार्या, अशोक(2008), *पोलटिकल थ्योरी* (राजनैतिक सिंद्धात), नोएडा: पीयरसन।

मिल, जे एस(1998), *लिबर्टी एंड अर्द ऐसेज़* (स्वतंत्रता और अन्य निंबध) न्यू यार्क : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

पॉपर, के और गोमब्रिच, ई एच(1994), द ओपन सोसाइटी एंड इट्स ऐनीमीज़(खुला समाज/मुक्त समाज और इसके दुश्मन), न्यू जर्सी प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

स्क्रूटन, रोजर(2007), पॉलग्रेव मैकमिलन डिक्शनरी आफ पॉलिटिकल थॉट, (राजनीतिक विचारों का संग्रह) हैम्पशायर : पॉलग्रेव मैकमिलन।

सेन, अमर्त्य (1999), *डेवलपमेंट एज़ फ्रीड्म*, (स्वतंत्रता के रूप में विकास) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको अपने उत्तर में दो बिन्दुओं को उजागर करना चाहिए–

- विचार व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कार्यवाई की स्वतंत्रता के बीच अंतर।
- स्व-संबंधित और अन्य-संबंधित कार्यों के बीच अन्तर।

2) आपके जवाब में निम्नलिखित दो बिंदुओ पर प्रकाश डाला जाना चाहिए।

- सकारात्मक स्वतंत्रता व्यक्ति की अच्छाई के बजाय 'सामान्य अच्छाई' पर केन्द्रित करती है।
- राज्य, स्वतंत्रता और समानता के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए, हाशिए पर पड़े वर्गो को सक्षम बनाने की स्थितियां प्रदान करता है।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में इस तथ्य पर प्रकाश डाला जाना चाहिए कि स्वामित्व की अनुपस्थिति आवश्यक नही है कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ाए।

2) आपके जवाब में इस तथ्य को उजागर किया जाना चाहिए कि इंटरनेट शक्ति को राज्य से नागरिक समाज की ओर स्थानांतरित कर रहा है और यह सरकार को बनाए रखने या गिराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 13 रक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धान्त*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 रक्षात्मक भेदभाव की संकल्पना

13.3 निष्पक्षता का सिद्धान्त

13.4 रक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धान्त

13.4.1 औपचारिक बनाम वास्तविक समानता

13.5 आलोचना

13.6 सारांश

13.7 संदर्भ

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य, राजनीतिक विज्ञान में दो प्रमुख संकल्पनाओं का अर्थ समझना है – रक्षात्मक भेदभाव और निष्पक्षता का सिद्धान्त। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- रक्षात्मक भेदभाव की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे;
- निष्पक्षता का सिद्धान्त क्या है, इसे जान सकेंगे; तथा
- दोनों संकल्पनाओं के बीच के वाद-विवाद का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

असमानता और अन्याय सभी समाजों का एक हिस्सा रहे हैं और भारत इस मामले में अलग नहीं है। ब्रिटिश सत्ता के भारत से बाहर जाने के बाद, भारतीय संविधान के रचनाकारों ने इस समस्या की गंभीरता को स्वीकारा और जाति प्रथा जैसी कुरीतियों से निबटने के लिए रक्षात्मक भेदभाव की शुरुआत की। भारत के संविधान के अनुसार, कमज़ोर वर्गों के सामाजिक कल्याण के लिए विभिन्न संस्थाओं को उपलब्ध कराया गया। रक्षात्मक भेदभाव द्वारा राज्य जानबूझकर कुछ विशेष समूहों को जैसे जाति, धर्म, लिंग और स्थानिक स्थिति के आधार पर विशेषाधिकार देता है। रक्षात्मक भेदभाव के सिद्धान्त को *आरक्षण, उलट भेदभाव, सकारात्मक कार्रवाई तथा विशिष्ट बरताव* इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। रक्षात्मक भेदभाव और निष्पक्षता के सिद्धान्त के बीच जो वाद-विवाद है, यह समानता और न्याय के सम्बन्धों के बीच का महत्वपूर्ण भाग है। इन सभी पक्षों के सम्बन्ध में आगे आने वाले भागों में व्यापकता से चर्चा की गई है।

13.2 रक्षात्मक भेदभाव की संकल्पना

रक्षात्मक भेदभाव का अर्थ उस नीति से है जिसके द्वारा राज्य जानबूझकर अपने नागरिकों में कुछ निश्चित मापदंडों के आधार पर भेदभाव करता है ताकि उनमें सबसे कमज़ोर लोगों

*सुश्री चिन्मयी दास, शोध विद्यार्थी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

के हित की रक्षा हो सके। इस नीति का निर्माण उन लोगों के बचाव के लिए है, जो समाज वंचित हैं और जिनको पहले या वर्तमान समय में भेदभाव का सामना करना पड़ा है। यह राज्य के द्वारा उठाए गए सकारात्मक कार्य के कार्यक्रम हैं, ताकि समाज के सभी वर्गों को समानता का अधिकार और सबको समान रूप से न्याय प्राप्त हो सके। इन प्रावधानों का स्वरूप और संरचना भारत के संदर्भ में *सामाजिक न्याय* की संकल्पना का विश्लेषण करते हुए किया है। इसका उद्देश्य समाज में व्याप्त भेदभाव और शोषण को कम करने के लिए तथा समानता को उपलब्ध कराने के लिए हाशिए पर पड़े लोगों को सामाजिक मूल्य, वस्तुएँ तथा अवसरों को प्राथमिकता के साथ वितरण करने, अवसरों को समान रूप से दिलाने तथा उनके साथ समानता के विशेष व्यवहार करने के लिए नीति का प्रयोग करना है। रक्षात्मक भेदभाव का मुख्य उद्देश्य समाज के कमज़ोर वर्गों की सुरक्षा करना है, जो सामाजिक तथा ऐतिहासिक रूप से उपेक्षित रहे हैं, जिनका शोषण किया गया है। इन लोगों को शक्तिशाली और साधन सम्पन्न लोगों के नेतृत्व से बचाने के लिए उन्हें व्यापक अवसरों द्वारा राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने का प्रयास है।

रक्षात्मक भेदभाव का उद्देश्य समझने के लिए, यह आवश्यक है कि न्याय के *सामान्य* सिद्धान्त से सामाजिक न्याय की संकल्पना को अलग किया जाए। न्याय का कोई भी सामान्य सिद्धान्त, समाज को संपूर्णता से देखता है, जोकि एक समाज में मौजूद सामाजिक और शक्ति सम्बन्धों को नजरअंदाज करता है। यही कारण है कि न्याय का सामान्य सिद्धान्त जोकि सार्वभौमिकता का दावा करता है, इसके बावजूद सामाजिक-सांस्कृतिक, विशिष्ट नीतियाँ, जैसे कि सकारात्मक भेदभाव का विश्लेषण करने में सहायक सिद्ध नहीं होता है। दूसरी ओर, सामाजिक न्याय का सिद्धान्त विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से लिया गया है। इनका आधार सामाजिक जीवन का मूल है जो प्रायः समाज के वास्तविक संदर्भों से अस्पष्ट अथवा स्पष्ट रूप से लिया जाता है, जहाँ पर सिद्धान्तों की रचना होती है। इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि सामाजिक न्याय एक संकल्पना के रूप में हमेशा सामान्य न्याय के सिद्धान्त का अनुसरण करे। इसके साथ ही, क्योंकि यह विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर जोर देता है, इसलिए न्याय के सामान्य सिद्धान्तों के साथ इसका टकराव होता है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य कि सामाजिक न्याय की संकल्पना किसी शून्य से नहीं आती है, यह हमेशा ही पहले से मौजूद शक्ति संरचनाओं के साथ टकराव की स्थिति में आती है।

आदर्श रूप से, राज्य अपने कानूनी दृष्टिकोण में सभी नागरिकों को समान रूप से देखता है और उनके साथ समान व्यवहार करता है। हालाँकि, आधुनिक उदार राज्य इस आवश्यकता को मान्यता प्रदान कर चुका है कि अपने विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के नागरिकों के साथ अलग व्यवहार करना चाहिए। यदि राष्ट्र की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भेदभावपूर्ण सामाजिक प्रथाओं से ग्रसित है और इस तरह के व्यवहार से पीड़ित लोगों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकारों का हनन हुआ है और राज्य से प्राप्त संसाधनों का उपभोग करने में बाधा आई है, तो जनसंख्या का वह हिस्सा विशेषाधिकारों देने के लिए उपयुक्त है। वंचित समूहों के विरुद्ध पूर्व में किए गए अन्याय की क्षतिपूर्ति राज्य अपने अभिकरणों द्वारा इन समूहों को विशेषाधिकार प्रदान करके करता है। भारत में संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृष्यता समाप्त कर दी गई है, किन्तु निम्न जातियों के विरुद्ध यह अभी भी सूक्ष्म या साफ रूप में व्यापक रूप से मौजूद है। इन सामाजिक बुराइयों को समाप्त करके नई सामाजिक व्यवस्था तैयार करने के लिए कुछ निश्चित और मजबूत उपायों को अपनाना जरूरी है। कुछ विद्वानों के अनुसार रक्षात्मक भेदभाव के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं:

- अवसरों की समानता बहुत ही क्षीण या न्यून है और यदि इसे अधिक प्रभावकारी नहीं बनाया गया तो यह मौजूदा नहीं होगी।
- असमानता और गरीब, अशिक्षा तथा सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ेपन के बीच करणीय रिश्ता है।
- वस्तुओं और सेवाओं के आबंटन की वह कोई भी व्यवस्था अवसरों की समानता नहीं होगी और अनुचित होगी, यदि आबंटन समाज के विभिन्न भागों के लिए असमानता से किया गया है।
- रक्षात्मक भेदभाव कई सारे माध्यमों में से एक है जो वस्तुओं और सेवाओं के आवंटन में जो असंतुलन है, उसे ठीक करता है। यह प्रक्रिया निष्पक्षता के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं करती है।

लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं, यदि लंबरूप (vertical) असमानता को समस्तरीय (horizontal) समानता में न बदला जाए। उच्च जातियों और निम्न जातियों के बीच, भारत की स्वतंत्रता के समय बहुत बड़ा आर्थिक और सामाजिक अन्तर था। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान, नेताओं ने इस राजनीतिक प्रासंगिकता को समझा कि मुख्यधारा से बहिष्कृत लोगों को मुख्यधारा में लाना होगा। यह समझ गए थे कि यदि इन लोगों को प्रेरित तथा गतिशील नहीं बनाया गया, तो जो राष्ट्रीय आन्दोलन व्यापक तथा समावेशी नहीं बन पाएगा। भारतीय संविधान के रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य था समतावादी समाज का निर्माण करना, न्याय (सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक) प्रबल हो और हैसियत व अवसर की समानता हो। इसलिए यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि भारत के संविधान के प्रावधानों में समानता का भाव प्रमुखता से झलकता है। संविधान में कानून के समक्ष सभी नागरिकों को समानता के मौलिक अधिकार की गारन्टी प्रदान की गई है। किन्तु संविधान में यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि "किसी भी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े नागरिक वर्गों तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति व प्रगति के लिए राज्य को काम करने से संविधान में कुछ भी नहीं रोकेगा। राज्य के पास यह शक्ति होगी कि वह समाज के वंचित लोगों की उन्नति और प्रगति के लिए विशेष उपायों के सम्बन्ध में प्रावधानों की रचना कर सकता है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि आरक्षण की नीति या सकारात्मक भेदभाव सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, एकीकरण और भारत के विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है। इनमें से कुछ प्रावधान भारत के संविधान में सम्मिलित हैं, जो इस प्रकार से हैं: अनुच्छेद 15 और 16 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 46 (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों के संवर्धन संबंधी प्रावधान) तथा अनुच्छेद 340 (अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए)। वे प्रमुख क्षेत्र जहाँ राज्य ने रक्षात्मक भेदभाव को आगे बढ़ाया है वे हैं – शिक्षा, कल्याणकारी कार्य और आर्थिक गतिविधियाँ (आवास, भूमि अनुदान आदि) लोक सेवाएँ तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व। *राजनीतिक प्रतिनिधित्व* के प्रावधान व नीतियों का पालन करना *अनिवार्य* है, इसके अतिरिक्त बाकि सब विषयों में संविधान ने रक्षात्मक भेदभाव का काम राज्य के विवेक पर छोड़ा हुआ है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) रक्षात्मक भेदभाव से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

13.3 निष्पक्षता का सिद्धान्त

निष्पक्षता के सिद्धान्त को समझने से पहले आइए हमें रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त को जान लें, जिस पर निष्पक्षता का सिद्धान्त आधारित है। निष्पक्ष न्याय की अवधारणा का उल्लेख जॉन रॉल्स ने अपनी पुस्तक *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस* में किया है। रॉल्स के अनुसार, कुछ नैतिक सिद्धान्त हम पर अनिवार्यतः लागू होते हैं, क्योंकि तर्कसंगत प्राणियों की मूल स्थिति" में वे स्वीकार्य होंगे। उनके लिए न्याय प्राकृतिक कानून नहीं है, न ही तर्क पर आधारित है परन्तु निष्पक्ष प्रक्रिया पर आधारित निष्पक्ष वितरण है। रॉल्स का मानना है कि समाज में सभी व्यक्तियों का ज्ञान समान नहीं होता है और न ही वे समान आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में रहते हैं। अनभिज्ञता का आवरण या पर्दा का विचार प्रस्तुत करते हुए रॉल्स कहते हैं कि यही वह पर्दा है जो लोगों को दूसरे लोगों से केवल अलग ही नहीं करता है अपितु अपने जैसे ही अन्य लोगों से भी अलग कर देता है जो कि समाज में सबसे कम सुविधा प्राप्त लोग हैं। अतः न्याय की एक महत्वपूर्ण माँग है कि समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त लोगों का भी ध्यान रखा जाए। उनके अनुसार न्याय समाज के सभी सदस्यों के बीच सभी लाभों का वितरण है, इस अनुपात में नहीं कि एक व्यक्ति क्या करता है, परन्तु इस आधार पर कि कमज़ोर वर्गों में सबसे कमजोर व्यक्ति को भी इसका लाभ प्राप्त हो। रॉल्स यह महसूस करते हैं कि लाभों का इस प्रकार का वितरण केवल निष्पक्ष ही नहीं है बल्कि यह न्याय के मानकों के अनुसार भी है। अतः, हम यह आंकलन कर सकते हैं कि रॉल्स के लिए न्याय निष्पक्षता है। निष्पक्ष न्याय वहाँ होता है, जहाँ पर स्वतंत्र और समान व्यक्तियों के बीच सहयोग की निष्पक्ष व्यवस्था मौजूद होनी चाहिए। निष्पक्ष न्याय का उद्देश्य उन उपयुक्त सिद्धान्तों की तलाश करते हैं, वे उस समझौते का नतीजा हैं जो लोग आपसी फायदे के लिए करते हैं। जब लोग स्वतंत्र और समान स्थिति प्राप्त कर लेते हैं, वे ऐसा महसूस करते हैं कि अच्छाई की अपनी धारणा को पाने के लिए उन्हें एक जैसे प्राथमिक पदार्थ चाहिए। यह जो प्राथमिक वस्तुएँ हैं, वे हैं – मूल अधिकार, स्वतंत्रता, अवसर, आय, सम्पत्ति और आत्म-प्रतिष्ठा। अतः न्याय का अर्थ होगा कि प्राथमिक वस्तुओं का वितरण समान रूप से किया जाएगा, जब तक कि इनके असमान वितरण का लाभ सबसे कम सुविधाप्राप्त लोगों तक पहुँचे। न्याय की यह संकल्पना समाज की मूल संरचना से संबंधित है – जोकि समाज की मुख्य राजनीतिक, सांविधानिक, सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाएँ हैं और कैसे वे एक साथ मिलकर सामाजिक सहयोग की एक संयुक्त योजना बनाती हैं। रॉल्स के अनुसार, न्याय की संकल्पना में मूल विचार निष्पक्षता का सिद्धान्त है, और वह न्याय को केवल सामाजिक संस्थाओं का गुण मानते हैं। न्याय का सिद्धान्त प्रतिबन्धों को सूत्रबद्ध करने का कार्य करता है कि किस प्रकार से प्रथाएँ स्थितियों तथा पदों को परिभाषित करती हैं और इसे शक्तियाँ, देनदारियाँ, अधिकार और कर्त्तव्य सौंपती हैं।

दूसरी और, निष्पक्षता का सिद्धान्त यह कहता है कि यदि बहुत सारे लोग सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिनसे हम लाभ प्राप्त करते हैं। यह नैतिक रूप से स्वीकार्य नहीं होगा कि हम उन वस्तुओं को निःशुल्क प्राप्त करें, सेवाएँ लें और बिना कुछ खर्च ही या उनकी लागत दिए बिना ही वस्तुओं का लाभ उठाएँ। हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि हम वस्तुओं के उत्पादन की उचित लागत देकर लाभ उठाएँ। प्रारंभ में, सबसे पहले

निष्पक्षता के सिद्धान्त को सूत्रबद्ध एच.एल. ए. हार्ट के द्वारा किया गया था और उनके बाद रॉल्स द्वारा। ये दोनों ही सहयोग की निष्पक्ष योजना में सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में भार और लाभ के वितरण के आधार पर सिद्धान्त आधारित समझ को प्रस्तुत करते हैं। निष्पक्षता के सिद्धान्त के अनुसार, यह हमारा कर्त्तव्य है कि सहयोग की निष्पक्ष योजना के तहत, हम मुफ्त की चीजों या सेवाओं की आशा न करें। यदि कुछ लोग मिलकर सार्वजनिक वस्तुओं का निर्माण करते हैं, तो एक व्यक्ति को उस वस्तु के उत्पादन में अपना योगदान दिए बिना किसी प्रकार के लाभ का आनंद नहीं लेना चाहिए। यह ग़ैर-परिणामवादी नैतिक दायित्व है, क्योंकि आधारभूत तर्क यहाँ पर कम आपूर्ति के बुरे परिणाम से बचने का नहीं है बल्कि न्याय का एक मानक स्थापित करने का है। इस अंतर्निहित समझ को रेखांकित किया गया है कि यह अन्याय होगा कि जो लोग सार्वजनिक वस्तुओं के निर्माण के लिए योगदान करते हैं, यदि जो लोग इन वस्तुओं का लाभ उठाते हैं, वे इनके उत्पादन के लिए कुछ भी न करें। कुछ सामाजिक तथा राजनीतिक उत्तरदायित्वों को न्यायोचित बनाने के लिए इस सिद्धान्त का इस्तेमाल किया जा सकता है। वास्तव में, इसका प्रयोग दर्शनशास्त्र और सामाजिक नीति में होता है, उन सेवाओं का समर्थन करने के लिए जो कि अच्छे शासन से संबंधित हैं या वैश्वीकरण की वजह से जन्मी कुछ असमानताओं के जवाब में। नोज़िक और फ्लू जैसे स्वातन्त्रयवादी रॉल्स से सहमत नहीं थे और उनके इस दावे को ठुकराते हैं कि जो प्राकृतिक रूप से नुकसान झेल रहे हैं, वे उन पर दावा करें जिनके पास सुविधा है। वे योग्यता, उत्कृष्ठता और इंसानों में प्राकृतिक असमानताओं में विश्वास रखते हैं।

13.4 रक्षात्मक भेदभाव बनाम निष्पक्षता का सिद्धान्त

समानता की चर्चा करते समय, हम केवल कानूनी समानता या अवसर की समानता की भावना से बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि स्थितियों तथा परिणामों की समानताओं के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं। एक डाक्टर के पुत्र और एक गरीब व्यक्ति के पुत्र को समान अवसर प्राप्त होते हैं, परन्तु निष्पक्ष न्याय की माँग है कि सामाजिक वातावरण को बदलना होगा यदि सभी को समान शुरुआत प्रदान करती है। हालाँकि, इसके लिए हमको सामूहिक सहमति लेनी होगी, उन लोगों के हक में पक्षपात करने कि जो समाज के हाशिए पर पड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त "कानून के समक्ष समानता" तथा "कानून का समान रूप से संरक्षण" यह कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए।

13.4.1 औपचारिक बनाम वास्तविक समानता

औपचारिक समानता का अर्थ है कानून के समक्ष समानता, जोकि एक उदारवादी धारणा है। इसमें सार्वभौमिकता का सिद्धान्त शामिल है, जहाँ दो व्यक्तियों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाएगा जब तक कोई भेद न सिद्धान्त न हो। लूकास के अनुसार, कानून की सार्वभौमिकता उद्‌गम इस तथ्य पर आधारित है कि राज्य सभी व्यक्तियों के लिए अलग-अलग विधि निर्माण करने में असमर्थ है क्योंकि सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न हैं। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से राज्य ऐसे कानूनों का निर्माण करता है, जोकि सार्वभौमिक रूप से लागू हो। इसका अर्थ यह हुआ है कि औपचारिक समानता केवल प्रक्रियात्मक न्याय उपलब्ध करा सकती है। दूसरी ओर, वास्तविक समानता की व्यापक अवधारणा है, जोकि अन्य मूल्यों से सम्बन्ध रखती है जैसे कि न्याय, अधिकार और समानता। फ्रैडमैन के अनुसार, वास्तविक समानता के चार दृष्टिकोण हैं जो निम्न प्रकार हैं:

- **परिणामों की समानता**: समतापूर्ण व्यवहार परिणामों की समानता की गारन्टी नहीं देता है।
- **आरंभिक बिन्दु की समानता**: वास्तविक समानता अर्जित नहीं हो पाएगी यदि लोग व्यक्तिगत रूप से अपनी दौड़ अलग-अलग बिन्दुओं से आरंभ करेंगे। समान अवसरों के दृष्टिकोण का उद्देश्य है कि सबका आरंभ बिन्दु समान हो।
- **अधिकार आधारित समानता**: यह समानता को वास्तविक अधिकारों की सहायक मानती है।
- **महत्व-आधारित दृष्टिकोण**: यह दृष्टिकोण समाज में उनकी निष्पक्ष भागीदारी के अतिरिक्त, सभी व्यक्तियों की गरिमा, स्वायत्तता तथा महत्व पर बल देता है।

यद्यपि कानूनी समानता के माध्यम से अवसर की समानता भारत में प्राप्त की जा चुकी है, परन्तु समाज में आर्थिक तथा सामाजिक असमानता का उन्मूलन या कम होना अभी शेष है। राज्य के संसाधनों पर सवर्णों के आधिपत्य ने एक असमान समाज की रचना की है जोकि समाज की समग्रता पर असर डालती है क्योंकि राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में विषमताएँ मौजूद हैं। इस स्थिति में, समाज का जो शक्तिशाली तथा सशक्त वर्ग है, वह ज्यादातर कोशिश करता है कि यथास्थिति बनी रहे और मौजूदा भेदभावपूर्ण वितरक ढाँचे में किसी भी प्रकार के बदलाव का विरोध करेगा। दूसरी ओर, वंचित और हाशिए पर पड़े लोग, शायद यह चाहेंगे कि सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन आए और अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए राज्य द्वारा कुछ कठोर उपायों की आशा करेंगे। अतः, दोनों समूह अपनी-अपनी माँगें सामने रखेंगे तथा राज्य के अभिकरणों पर दबाव बनाएँगे कि उनको माँगों को पूरा किया जाए। इस स्थिति में राज्य दुविधा में पड़ जाएगा। इस प्रकार की स्थिति में एक प्रासंगिक प्रश्न खड़ा हो जाता है कि किसको प्राथमिकता दी जाए, स्वतंत्रता को या फिर न्याय को। हालाँकि, अधिकतर मामलों में जब शक्तिशाली वर्ग स्वतंत्रता की बात करता है, तो ऐसी स्थिति में समाज के लोग जो लोग हाशिए पर पड़े हैं और वंचित हैं, न्याय उनके लिए अस्तित्व का मुद्दा बन जाता है।

अतः, रक्षात्मक भेदभाव की धारणा को लाया गया, जिसका उद्देश्य वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार करना, उनकी उन्नति के लिए अवसर देना और समाज की मुख्यधारा में लाना है। इसे उलट भेदभाव भी कहते हैं क्योंकि यह वंचित वर्गों के पक्ष में भेदभाव करती है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह से अतीत में उनके साथ भेदभाव हुआ है। हालाँकि, इस नीति की वजह से समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त में एक दार्शनिक वाद-विवाद उत्पन्न हुआ है। समतावादी और सकारात्मक उदारवादी इस तरह के भेदभाव का समर्थन करते हैं, क्योंकि यह न्यायपूर्ण और निष्पक्ष समाज के निर्माण में सहयोग देता है। स्वतंत्रतावादी तथा कानून के सकारात्मक पक्षकार इस प्रकार के भेद के प्रति अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार यह, श्रेष्ठता, योग्यता की कोटि को प्रभावित करते हैं तथा स्वतंत्रता के मूल अधिकारों और व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकारों को भी प्रभावित करते हैं।

भारत जैसे देश की आर्थिक और सामाजिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सकारात्मक कार्य का विचार आज भी सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के आधार को बनाए हुए हैं। याद रखना चाहिए कि न्याय और समानता की संकल्पना एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं है और न्याय तथा समानता के दावों में किसी प्रकार का विवाद नहीं है। जिन लोगों को विशेष सुविधाओं की वरीयता देने की बात है, जिनको पिछली अनेक शताब्दियों से वंचित और उनके साथ भेदभाव किया जा रहा था तथा उनको मूल सुविधाएँ देने से भी वंचित किया गया था, उनके पक्ष में सकारात्मक भेदभाव न्याय के सिद्धान्त के

विरुद्ध नहीं है। बल्कि इस प्रकार का व्यवहार, न्याय की सम्पत्ति तथा वातावरण निर्माण करने के सम्बन्ध में अनिवार्य है। न्याय का अर्थ है लाभ और हानि का सही आवंटन। समानता तब ही सार्थक होती है, जब उसमें न्याय की दृष्टि या विचार समाहित होता है। जरूरतमंदों को सामाजिक न्याय दिलाने की प्रथा समानता के दावे को और मजबूत करती है।

कोई भी समाज अमीर और गरीब के रूप में विशेष लक्षणों में बँटे होते हैं, उसमें अमीरों की सम्पन्नता समाज के गरीब और कमजोर वर्गों के साथ किसी भी प्रकार मेल नहीं होता है। अतः एक समान समाज में, कमज़ोर वर्ग ही हैं जिन्हें सुरक्षा की जरूरत है। इस तरह से हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि हमको एक भेड़िये और एक मेमने के बीच अन्तर करना होगा और जो सबसे कमजोर या संवेदनशील है, उसका पक्ष लेना होगा।

रक्षात्मक भेदभाव, भारत के संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जोकि समाज में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधानों की व्यवस्था करता है। हालाँकि, भारत ही एक देश नहीं है जिसमें रक्षात्मक भेदभाव के प्रावधानों की व्यवस्था है, बल्कि विश्व में इस प्रकार के अनेक देश मौजूद हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, सकारात्मक कार्यों का प्रावधान है, जोकि हमारे संविधान में दिए गए रक्षात्मक भेदभाव जैसा ही है। ये दोनों प्रावधान किसी भी समानता के दावे अथवा किसी भी निष्पक्षता के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं करते हैं।

लोगों को समान अवसरों की उपलब्ध कराने के प्रावधानों को हमेशा सराहा जाता है। इससे निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं होता है और न ही न्याय के सिद्धान्त का। रक्षात्मक भेदभाव के विचार का वर्णन समाज के हाशिए पर पड़े लोगों के विरुद्ध अतीत में किए गए भेदभाव को ठीक करने के रूप में किया गया है। इसका मूल विचार किसी व्यक्ति के पूर्वज़ों द्वारा जो अन्याय किया था, उसके लिए यह एक क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। हालाँकि, दशकों के लिए क्षतिपूर्ति बिना किसी इसकी समाप्ति अवधि की बात किए, यह बहुत से लोगों को निष्पक्ष नहीं लगता है। रक्षात्मक भेदभाव से जुड़ी अन्य बहस यह है कि यह राज्य के कार्यों और उसके अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करती है, जोकि सामान्य रूप से लोगों की स्वतंत्रता और अधिकारों को बाधित करती है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) "स्थिति की समानता" से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.5 आलोचना

रक्षात्मक भेदभाव का विचार विश्व के विद्वानों के बीच वाद-विवाद और चर्चा का विषय बन गया है। इसका जो लोग विरोध करते हैं वे कहते हैं कि एक भेदभाव की जगह दूसरे भेदभाव ने ले ली है। प्रक्रियात्मक समानता की वकालत करने वाले बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हैं जहाँ योग्यता के आधार पर संसाधनों का आवंटन होना चाहिए। हालाँकि, योग्यता सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में देखी जानी चाहिए और प्रमुख हितों का दबदबा रोकने के लिए योग्यता की परिभाषा सांस्कृतिक रूप से तटस्थ होनी चाहिए। आलोचना का दूसरा बिन्दु है कि सकारात्मक कार्य अस्थायी उपाय था परन्तु यह स्थायी रूप धारण कर चुका है, क्योंकि जो सत्ता में हैं उन्हें इससे राजनीतिक लाभ प्राप्त होते हैं। लक्षित समूहों में सामान्यतया फायदा उन्हें मिला है जिनकी स्थिति पहले से ही बेहतर है। लाभ उन लोगों तक नहीं पहुँच पाता है जो लोग वास्तव में हाशिए पर पड़े हैं और वास्तव में ही वंचित लोग होते हैं। रक्षात्मक भेदभाव के विरुद्ध बहुत सारे तर्क हो सकते हैं, किन्तु भारत जैसे देश जटिल समाज में वितरणात्मक न्याय को सहजता से अलग नहीं किया जा सकता। नैतिक जरूरतों की वजह से यह न्यायोचित है।

13.6 सारांश

सारांश में यह कह सकते हैं कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए हमको कमज़ोर वर्गों और संवेदनशील वर्ग तथा दूसरी ओर शक्तिशाली और समाज के सुविधाभोगी वर्गों के बीच अंतर करना होगा। लोकतंत्र की संवृद्धि के लिए, हमको वंचित और हाशिए पर पड़े लोगों की स्थिति को समृद्ध समाज के बराबर लाना होगा। वास्तविक न्याय तब ही माना जाएगा जब इसके लाभ उन तक पहुँचेंगे जो वास्तव में इसके अधिकारी हैं। सामाजिक न्याय की उपलब्धि जरूरतमदों को कराने से सिर्फ समानता का दावा ही नहीं मजबूत होता है परन्तु इससे लोकतंत्र भी सुदृढ़ होता है।

13.7 संदर्भ

आचार्य, अशोक (2008), "अफरमेटीव एक्शन" इन राजीव भार्गव एवं अशोक आचार्य (संपा) *पॉलिटिक्ल थ्योरी – एक प्रस्तावना,* नई दिल्लीः पीजन्स।

अब्बास, होइयेदा एवं कुमार, रंजन कुमार (2012), *पॉलिटिक्ल थ्योरी,* नई दिल्लीः पीयरसन।

अरोड़ा, एन.डी. एवं एस.एस. अवस्थी (2007), *पॉलिटिक्ल थ्योरी एंड पॉलिटिक्ल थॉट,* नई दिल्लीः, हर आनन्द पब्लिकेशन्स।

रॉल्स, जॉन (1971) *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस,* हार्वर्डः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

विनोद, एम. जे और मीना देशपाण्डे (2013), *कंटमपरेरी पॉलिटिक्ल थ्योरी,* नई दिल्लीः पी. एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डालिएः

- समाज के कमज़ोर वर्गों की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयास।

- सकारात्मक भेदभाव भी कहते हैं।
- इस प्रकार की नीतियों के समर्थन में दिए गए तर्क

बोध प्रश्न 2

1) इसका अर्थ है कि सामाजिक वातावरण को बदलना चाहिए ताकि सभी की शुरुआत बराबर हो।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 14 परिवार, कानून और राज्य*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 परिचय

14.2 राज्य की संकल्पना

14.3 परिवार की संकल्पना

- 14.3.1 परिवार : मूल सामाजिक इकाई
- 14.3.2 समाजीकरण का एक एजेंट (अभिकर्त्ता)
- 14.3.3 लोकतंत्र का आधार
- 14.3.4 अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण का अभिकरण

14.4 राजनीतिक सिद्धांत में परिवार और राज्य का संबंध

- 14.4.1 पारंपरिक या ग्रीक दृष्टिकोण
- 14.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
- 14.4.3 उदारवादी परिपेक्ष्य
- 14.4.4 नारीवादी दृष्टिकोण

14.5 सारांश

14.6 संदर्भ

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

यह इकाई परिवार की संकल्पना, उसके कार्य और राजनीतिक सिद्धांत में परिवार एवं राज्य के बीच संबंध की जांच करता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को जान जाएंगेः

- परिवार की संकल्पना और उसके कार्यों को समझने में सक्षम होंगे;
- परिवार और राज्य के बीच के संबंधों का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे; तथा
- राजनीतिक सिद्धांत में परिवार के बारे में सार्वजनिक-निजी बहस को समझ पाएंगे।

14.1 परिचय

परिवार और राज्य के बीच संबंध बहुत जटिल है क्योंकि इन दोनों के बीच की सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है, जिसके कारण भ्रम और प्रतिवाद उत्पन्न हो जाते है। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई अपने परिवार की ज़िम्मेदारी नहीं पूरी कर पाया तो सरकार इसमें हस्तक्षेप कर सकती है। वो व्यक्ति जो खुश और सुखी परिवारों से आते हैं, उनके एक अच्छे नागरिक होने की संभावना अधिक है; जबकि, नाखुश शिथिल परिवार कई सामाजिक समस्याओं और अस्थिरता के लिए प्रेरणा स्रोत हो सकते हैं। राज्य की कुशल नागरिकता को बढ़ावा देने, व्यक्तिगत खुशियों को बढ़ावा देने, सामाजिक स्थिरता को प्रोत्साहन देने और सामाजिक समस्याओं में भारी वृद्धि को रोकने में दिलचस्पी आदर्श

*डॉ. सुरभि गुप्ता, पुलिस, सुरक्षा एवं आपराधिक न्याय हेतु सरदार पटेल विश्वविद्यालय

परिवारों को बढ़ावा देना राज्य सरकार के लिए एक प्रेरक का काम करता है। किन्तु ये एक तरफा रिश्ता नहीं है, राज्य के व्यवहार को परिवार प्रभावित कर सकता है और साथ ही साथ वे उसकी क्रियाओं या कार्यों से प्राप्त होने वाले फल के भागीदार भी हो सकते हैं। जे जे रूसो ने अच्छे नागरिक बनाने में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका देखी और उनके मुताबिक अच्छे नागरिकों के स्व-सरकार में प्रभावी रूप से भाग लेने में सक्षम होने के लिए; परिवार को भावी नागरिकों को बचपन में ही कुछ साधन उपलब्ध कराने चाहिए। राज्य की राजनीतिक प्रवृत्ति भी राज्य और परिवार के रिश्तों को प्रभावित करती है। अधिनायकवादी राज्य की प्रवृत्ति होती है परिवारों का अलग करने की तथा उन प्राकृतिक समुदायों को नष्ट करने की जो नागरिकों की वफादारी राज्य से दूर ले जाएं। दूसरी तरफ, लोकतंत्र परिवार को अच्छे नागरिकों की तैयारी के लिए प्रशिक्षण मैदान के रूप में देखते हैं। अमरीकी भाषाविद् जॉर्ज लेकाफ के तर्क के मुताबिक, दक्षिणपंथी विचारधारा के लोगों के परिवारों के विचार पितृसत्ता एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित होते हैं। दूसरी तरफ, वामपंथ की ओर झुकाव वाले लोगों के लिए आदर्श परिवार का आधार शर्तरहित प्रेम होता है। आइए, परिवार और राज्य के बीच के संबंधों के अध्ययन से पहले राज्य और परिवार की संकल्पनाओं का अध्ययन करें।

14.2 राज्य की संकल्पना

राज्य को परिभाषित करना आसान नहीं है क्योंकि इसकी परिभाषा पर कोई सामान्य सहमति नहीं है। सबसे पहले ध्यान देने की बात है कि राज्य के विभिन्न रूप हैं, जो कि एक दूसरे से महत्वपूर्ण तरीके से अलग हैं। ग्रीक शहर-राज्य, आधुनिक राष्ट्र राज्य से बिलकुल अलग हैं, जो कि फ्रांसीसी क्रांति के बाद से विश्व की राजनीति पर हावी है। समकालीन उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य जो ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप में अस्तित्व में है, वो हिटलर या मुसोलिनी के तानाशाही राज्य से अलग हैं। ये पूर्व सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप में मौजूद राज्य से भी अलग हैं। राज्य विभिन्न प्रकार के हैं लेकिन और एक राज्य कोई एक अखण्ड इकाई नहीं है। शुरुआत करने के लिए, राज्य और सरकार एक समान नहीं है। यह कई तत्वों का एक जटिल मिश्रण है तथा सरकार उनमें से एक तत्व है। एक पश्चिमी प्रकार के उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य में, जो लोग सरकार बनाते हैं वे निस्संदेह राज्य शक्ति के साथ हैं। वे राज्य के नाम पर बोलते हैं और राज्य की शक्ति को नियंत्रण में रखने के लिए कार्यालय में पद लेते हैं। हमको यह समझने की ज़रूरत है कि राज्य, नागरिक-समाज (सिविल सोसाइटी) और राष्ट्र से अलग है। राज्य प्रतिरोधी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जबकि नागरिक समाज स्वैच्छिक भागीदारी पर आधारित है। राष्ट्र की भावना, ऐसे लोगों के बीच समुदाय की भावना है जो अपने आपको दूसरे समुदाय वालों से अलग समझते हैं और अपने मामलों को खुद ही नियंत्रित करना चाहते हैं। यह अंतर आम धर्म, भाषा आदि पर आधारित हो सकता है। जब पूरी आबादी इस प्रकार की भावना साझा करती है तो उसे राष्ट्र-राज्य कहते हैं। हालांकि, ऐसा सभी राज्यों के साथ नहीं है और इसलिए राज्य और राष्ट्र एक समान नहीं हैं। उदाहरण के लिए, कूर्द के लोग ईरान, सीरिया, ईराक और तुर्की में फैले हुए हैं और वो खुद को एक राष्ट्र मानते हैं। एक राज्य के चार तत्व हैं – आबादी, क्षेत्र, सरकार और संप्रभुता।

विभिन्न विचारकों द्वारा राज्य के विचार को अलग-अलग तरीकों से प्रस्तुत किया गया है। कुछ ने इसकी प्रशंसा की; कुछ ने इसे अस्वीकार किया जबकि कुछ इसकी भूमिका और कार्यों को सीमित करना चाहते हैं। हेगेल ने राज्य को "भगवान की पृथ्वी पर चहलकदमी" कहा। प्लेटो ने अपनी पुस्तक "द रिपब्लिक" में आदर्श राज्य की बात कही। अरस्तु ने तर्क दिया कि मनुष्य केवल एक मनुष्य इसलिए था क्योंकि वो 'पोलिस' का सदस्य था जिसकी

वजह से नेक और अच्छा जीवन संभव हुआ। यूनानी विचार राष्ट्र की आधुनिक संकल्पना से अधिक सटीक रूप से मेल खाता है, यानि कि, एक निश्चित क्षेत्र की आबादी जो भाषा, संस्कृति और इतिहास साझा करती है–जबकि रोमन 'रेस पब्लिका' या 'राष्ट्रमंडल' (कॉमनवेल्थ), राज्य की आधुनिक संकल्पना के समान है। राज्य की आधुनिक संकल्पना निकोलो माकियावेली (इटली) और जीन बोडिन (फ्रांस) के लेखन में 16वीं शताब्दी में देखने को मिलती है। माकियावेली के लिए, राज्य "पुरुषों पर शक्ति प्रभुत्व" है। इन्होंने सभी नैतिक विचारों को दरकिनार रखकर सरकार की ताकत और स्थायित्व को अधिक महत्व दिया है। हालांकि, उनके समकालीन, बोडिन के लिए एक संप्रभु बनाने के लिए शक्ति पर्याप्त नहीं थी; स्थाई होने के लिए नियम का नैतिकता के साथ पालन होना चाहिए, और ये निरंतर होना चाहिए–यानि कि, उत्तराधिकार स्थापित करने का साधन। थॉमस हॉब्स, जॉन लॉक तथा जे जे रूसो ने राज्य की, एक सामाजिक अनुबंध के नतीजे के रूप में व्याख्या की है जो कि शासक और उसके द्वारा शासित लोगों के बीच एक समझौता है, जिसमें दोनों के अधिकार और उनके कर्तव्यों को परिभाषित किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार, प्राचीन काल में, मनुष्य प्रकृति की एक अराजक स्थिति में पैदा हुए थे, जो विशेष संस्करण के अनुसार खुश या दुखी था। फिर उन्होंने, प्राकृतिक कारणों का प्रयोग करके, एक समाज (और एक सरकार) का गठन आपस में एक अनुबंध के माध्यम से किया। 20वीं शताब्दी में, राज्य की संकल्पनाओं का कार्यक्षेत्र अराजकता से लेकर, जिसमें राज्य अनावश्यक और यहां तक कि हानिकारक माना जाता था, जिसे किसी प्रकार के नियंत्रण से संचालित किया गया, कल्याणकारी राज्य तक था, जिसमें अपने सदस्यों के अस्तित्व के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराया गया और सरकार को वंचितों के लिए काम करने का जिम्मा सौंपा गया।

आधुनिक राज्य को राष्ट्र राज्य के रूप में पहचाना जाता है। राज्य अपने वर्तमान चरित्र को हज़ारों वर्षों की ऐतिहासिक प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त कर पाया है। यह धर्म, संबंध, युद्ध, संपत्ति, राजनीतिक चेतना और तकनीकी प्रगति जैसे विभिन्न कारकों की अंतःक्रिया है। राज्य के इतिहास के विकास की प्रक्रिया में, निम्नलिखित अभिरूप हैं– जनजातीय राज्य, पूर्वी साम्राज्य, यूनानी शहर राज्य, रोमन विश्व साम्राज्य, सामंती राज्य और आधुनिक राष्ट्र राज्य। 1648 में वेस्टफेलिया की संधि पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय हुआ। इसके कारण क्षेत्रीय राज्य का उत्थान हुआ जिसका राजनीतिक प्रभुत्व एक विशेष क्षेत्र में रहा, जिसने बाहरी क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र अलग किया। क्षेत्र का अलग-अलग राज्यों में अपनी राष्ट्रीय भावना के आधार पर विभाजन ने, आधुनिक राष्ट्र-राज्य की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया और उसके साथ ही अंतरराष्ट्रीय कानून, राज्यों की कानूनी समानता और संप्रभुता के आधुनिक सिद्धांत का उदय हुआ। अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांतियों ने राष्ट्र राज्यों के उत्थान में योगदान दिया। राज्य की आधुनिक संकल्पना पर उदारवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोणों का प्रभुत्व है। उदारवादी परिपेक्ष्य सक्रिय है क्योंकि यह समय के साथ व्यक्तियों और समाज की ज़रूरतों और हितों के आधार पर बदलता रहा है। राज्य का प्रारंभिक उदारवादी दृष्टिकोण नकारात्मक था क्योंकि इसने व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप न करने का समर्थन किया था। हालांकि, 20वीं शताब्दी का उदारवाद कल्याणकारी राज्य से संबंधित है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित को मिलाने की कोशिश करता है। राज्य पर समकालीन व्याख्यान नव-उदारवाद से प्रभावित है, जहां राज्य से न्यूनतम भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है और बाज़ार को प्रमुखता दी जाती है। मार्क्सवादी धारणा राज्य के उदारवादी होने के विचार को नकारती है, राज्य को वर्ग का उपकरण समझती है और सर्वहारा क्रांति द्वारा ऐसा समाज बनाने की कोशिश करती है जिसमें न तो कोई वर्ग हो, न ही कोई राज्य। हालांकि, रूस में रूसी क्रांति के बाद ऐसा नहीं हुआ और वर्ग रहित और राज्य रहित राज्य की स्थापना होने की बजाय, हमने सोवियत काल के दौरान शक्ति को कुछ लोगों के हाथों में जाते हुए देखा। राज्य के नारीवादी

दृष्टिकोण को मुख्य रूप से दो कोणों से देखा जा सकता है – उदार और कट्टरपंथी। उदार नारीवादी लोग कहते हैं कि पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने में राज्य एक भूमिका निभा सकता है; इसके लिए वो कुछ कदम उठा सकता है जैसे, महिलाओं के लिए संसद में सीटें बढ़ाकर, महिलाओं के लिए कल्याणकारी योजनाएं उन तक पहुंचा कर आदि। दूसरी तरफ, कट्टरपंथी राज्य को ताकत के एक साधन के रूप में देखते हैं और समाज में महिलाओं की असमान स्थिति के लिए वे एक परिवार में श्रम के असमान वितरण को दोष देते हैं। इसलिए, वे इस उदारवादी विचार से लड़ते हैं कि राज्य निष्पक्ष और तटस्थ हैं।

14.3 परिवार की संकल्पना

समाज में परिवार एक बुनियादी और बहुत महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है। परिवार को एक सार्वभौमिक, स्थायी और व्यापक संस्था के रूप में देखा जाता है। सभी समाजों में, दोनों छोटे और बडे, सभ्य और असभ्य, प्राचीन और आधुनिक, परिवार एक या दूसरे रूप में मौजूद हैं। परिवार एक सामाजिक समूह है जिसमें आमतौर पर पिता, माँ, एक या एक से अधिक बच्चे और कभी-कभी निकट और दूर के रिश्तेदार भी शामिल होते हैं। परिवार को निम्नलिखित परिभाषाओं के माध्यम से बेहतर समझाया जा सकता हैः

एलियट और मेरिल के मुताबिक, "परिवार एक जैविक सामाजिक इकाई है जो पति, पत्नी और बच्चों से बनी है"। बर्गेस और लॉक ने परिवार को इस प्रकार परिभाषित किया है– "परिवार , व्यक्तियों का एक समूह है जो शादी के संबंध से, खून के संबंध से या गोद लेने की प्रक्रिया से जुड़ा है। एक घर में अपनी अपनी सामाजिक भूमिकाओं में पति और पत्नी, माता और पिता, बेटा और बेटी, भाई और बहन, आपस में बातचीत करते हैं, ताल्लुक रखते हैं और आम संस्कृति बनाते हैं।" रॉस के मुताबिक, परिवार की चार उप-संरचनाओं में पहचान की जा सकती हैः

- पारिस्थितिक या पर्यावरणीय उप-संरचनाः यानि कि, परिवार के सदस्यों व उनके परिवारों की स्थान संबंधी व्यवस्था।
- अधिकारों व कर्तव्यों की उप-संरचनाः अर्थात, गृहस्थी में श्रम का या काम का विभाजन।
- शक्ति और प्रभुत्व की उप-संरचनाः यानि कि, दूसरों के कार्यों पर नियंत्रण रखना, और
- भावनाओं की उप-संरचनाः यानि कि, एक परिवार के सदस्यों के बीच संबंध।
- परिवार के कई कार्य होते हैं, जिनकी चर्चा आगे आने वाले अनुच्छेदों में की गई है।

14.3.1 परिवारः मूल सामाजिक इकाई

मनुष्यों के अस्तित्व के लिए प्रजनन आवश्यक है, और सभी समाजों में अपने सदस्यों को प्रतिस्थापित करने का एक तरीका होना चाहिए। परिवार अपने एजेंट, विवाह संस्था के द्वारा, पुरुष का यौन व्यवहार नियंत्रित करता है। परिवार में प्रजनन की प्रक्रिया संस्थागत होती है। इस प्रकार, परिवार प्रजनन के कार्य में वैद्यता का सूत्रपात करता है। अपने प्रजनन कार्य को संतोषप्रद पूरा करके, परिवार ने प्रजातियों के प्रचार तथा मानव जाति के स्थाईकरण को संभव बना दिया है। परिवार एक ऐसी संस्था है जो अपने सदस्यों को मानसिक और भावनात्मक संतुष्टि प्रदान करती है। व्यक्ति पहले अपने माता-पिता के परिवार में स्नेह का अनुभव करता है क्योंकि माता-पिता और भाई-बहन उन्हें प्यार, सहानुभूति और स्नेह देते हैं। परिवार दो काम और भी करता है – व्यक्ति के लिए प्रतिष्ठा निर्माण और सामाजिक पहचान। परिवार उत्तरदायित्व की भावना का निर्माण भी करता है। जातीयता, राष्ट्रीयता,

धार्मिक, आवासीय, वर्ग स्थिति एवं कभी-कभी राजनीतिक व शैक्षिक स्थिति सभी परिवारों द्वारा अपने सदस्यों को प्रदान की जाती है। एक परिवार के सदस्य होने का मतलब है कि कुछ कानूनी और सांस्कृतिक अधिकार और ज़िम्मेदारियां मिलना, जो कि औपचारिक कानूनों के साथ साथ अनौपचारिक परंपराओं में समाहित है। उदाहरण के तौर पर, अमरीका में, माता पिता के ऊपर अपने बच्चों को बुनियादी ज़रूरतें जैसे भोजन, आश्रय, कपड़े इत्यादी उपलब्ध कराना कानूनी दायित्व होता है। यदि वे ऐसा करने में विफल होते हैं तो उनको उपेक्षा या दुर्व्यवहार के कानूनी आरोपों का सामना करना पड़ सकता है।

14.3.2 समाजीकरण का एक एजेंट (अभिकर्त्ता)

परिवार एक व्यक्ति में संस्कृति हस्तांतरण के साधन के रूप में कार्य करता है। परिवार न केवल मानव जाति की जैविक निरंतरता की गारंटी देता है बल्कि समाज की सांस्कृतिक निरंतरता भी प्रदान करता है जिसका यह एक हिस्सा है। यह विचारों और विचारधाराओं को, लोक रीतियों और आचार-विचार, रीति रिवाज़ों, विश्वास और मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रसारित करता है। परिवार समाजीकरण का एक एजेंट (अभिकर्त्ता) भी है। समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति अपने समूह के आदर्शों को अच्छे से आत्मसात करे ताकि उसका एक विशिष्ट व्यक्तित्व उभर कर आए। परिवार बच्चों को समाज के मूल्यों, नैतिकताओं, मान्यताओं और समाज के आदर्शों के बारे में शिक्षा प्रदान करता है। यह अपने बच्चों को बड़ी दुनिया में भागीदारी के लिए तैयार करता है और एक बड़ी संस्कृति से परिचय कराता है। यह एक मुख्य एजेंसी है जो समुदाय की नई पीढ़ी को जीवन के लिए तैयार करती है। यह बच्चों को भावनात्मक रूप से प्रशिक्षित भी करते हैं। यह व्यक्तित्व की मूल योजना प्रस्तुत करते हैं। यथार्थ में, ये बच्चों के व्यक्तित्व को आकार देते हैं। सांस्कृतिक लक्ष्यों के संदर्भ में, परिवार बच्चों को अनुशासित करने हेतु एक तंत्र या प्रक्रिया है। ये असभ्य शिशु को सभ्य वयस्क में परिवर्तित करते हैं। एक परिवार अपने बच्चे को औपचारिक शिक्षा के लिए आधार प्रदान करता है। बड़े परिवर्तनों के बावजूद, परिवार अपने बच्चे को सामाजिक दृष्टिकोण और आदतों पर मूल प्रशिक्षण देता है जो कि सामाजिक जीवन में वयस्क भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण है। जैसा आचरण एक व्यक्ति अपने परिवार से सीखता है, वैसा ही व्यवहार सामाजिक नियंत्रण वाले घटकों जैसे स्कूल अधिकारी, मित्र, धार्मिक नेता तथा पुलिस के साथ भी करता है।

14.3.3 लोकतंत्र का आधार

परिवार, लोकतंत्र के विकास के लिए आधार का काम करता है। घर वह जगह है जहां एक व्यक्ति अपने बारे में शुरुआती विचार पाता है, अन्य लोगों के प्रति दृष्टिकोण, किसी के निकट पहुंचने की प्रवृत्ति, समस्याओं को हल करने की आदत आदि विकसित करता है। बच्चे घर पर ही सहयोग, प्रतिबद्धता, बलिदान तथा आज्ञाकारिता सीखते हैं, जोकि स्वशासन की नींव रखते हैं। बच्चे माता-पिता से काफ़ी कुछ सीखते है जैसे कि आभाव से सामंजस्य बिठाना, दूसरों की देखभाल करना, खुश रहना, अपने कर्तव्यों को पूरा करना, नागरिकता के महत्वपूर्ण कौशल तथा पारस्परिक सम्मान और सहयोग के कौशल। हमारे जीवन और सरकार के परस्पर संबंध खासकर स्व-सरकार के साथ, बच्चा सबसे पहले घर पर सीखता है। लोकतंत्र में घर परिवार सबसे महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थान होता है। राजनीतिक समाजीकरण का एक प्राथमिक एजेंट परिवार है, जहां बच्चे राजनीतिक दृष्टिकोण, विचारधाराओं और नीतियों को विरासत में पाते हैं, जिनका उनके ऊपर काफी लंबा प्रभाव पड़ता है। इसकी बहुत संभावना है कि उनका प्रारंभिक वर्षों का मतदान व्यवहार अपने परिवार के सदस्यों के मतदान के नमूने की छवि दर्शाता हो।

14.3.4 अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण का अभिकरण

परिवार ने हमेशा सामाजिक नियंत्रण का एक मज़बूत माध्यम प्रदान किया है। माता-पिता बच्चों को समाज में स्वीकार्य योग्य व्यवहार के संबंध में प्रत्यक्ष दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। परिवार के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरीकों से हासिल किया जा सकता है। बच्चे जहां अपने माता-पिता से प्रशंसा प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं, तो वहीं किसी भी प्रकार की अवज्ञा के लिए मिलने वाली सज़ा से भी बचना चाहते हैं। सामाजिक नियंत्रण सिद्धांत के अनुसार, जो लोग सामाजिक तौर पर एकीकृत होते हैं, उनका व्यवहार सामाजिक रूप से स्वीकार्य होने की अधिक संभावना होती है और उनसे आपत्तिपूर्ण व्यवहार की संभावना कम होती है। इस प्रकार, परिवार द्वारा प्रस्तुत सामाजिक एकीकरण, सामाजिक रूप से स्वीकार्य व्यवहार को प्रोत्साहित करने में मदद करता है। असफलता के कारण आने वाली पारिवारिक गिरावट और किशोरावस्था के आपराधिक व्यवहार के बीच के रिश्ते को लंबे समय से जाना जाता है। इस कारण, समाज की पारिवारिक संरचना को मज़बूत करने और स्थिरता बनाए रखने में गहरी रुचि होती है, ताकि इन समस्याओं का प्रभाव हमारी युवा पीढ़ी पर ना पड़े और साथ ही बाकी समाज पर बोझ न बढ़े। ये सामाजिक हित सरकार को शादी और परिवार जैसी रीतियों एवं संरचनाओं को दुरूस्त रखने के लिए प्रेरणा देते हैं। आधुनिकीकरण के आगमन के साथ, परिवार जैसी संस्था कई परिवर्तनों से गुज़र रही है, जैसा कि हम देख सकते हैं, एकल माता या पिता, तलाक दरों में बढ़ोत्तरी, सरोगेसी (किराए की कोख) तथा छोटे या मूल परिवारों की संख्या में वृद्धि। इन परिवर्तनों को अनुकूलता से अपना लेना ताकि राज्य व परिवार का रिश्ता सम्मानुकुल रहे, यह किसी भी राज्य या सरकार के लिए एक चुनौती है।

बोध प्रश्न 1

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) आप परिवार की संस्था से क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 राजनीतिक सिद्धांत में परिवार और राज्य का संबंध

राजनीतिक विज्ञान में परिवार और राज्य के संबंध जैसे विषय का अध्ययन एक सामान्य धारणा के कारण कम हुआ है कि परिवार किसी व्यक्ति का निजी मामला है और राज्य या सरकार को इससे दूर रहना चाहिए। पारिवारिक मामलों में राज्य के हस्तक्षेप पर बहस चलती रही है। जो लोग राज्य का समर्थन करते हैं उनका मानना है कि परिवार एक सार्वजनिक और राजनीतिक इकाई है और राज्य का उसके प्रबंधन में हाथ होना चाहिए। इसके विपरीत, अन्य लोगों का मानना है कि परिवार एक निजी और गैर-राजनीतिक संस्था है जो कि परिवार के सदस्यों द्वारा ही संचालित किया जाना चाहिए, न कि राज्य द्वारा । इस संदर्भ में, आइए राजनीतिक सिद्धांत से संबंधित बहस के मुख्य दृष्टिकाणों का अध्ययन करें।

14.4.1 पारंपरिक दृष्टिकोण

प्राचीन ग्रीक काल में, यह व्यापक धारणा थी कि परिवार एक निजी संस्थान है और उसमें राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हालांकि, ग्रीक दार्शनिक प्लेटो का इसके विपरीत विचार था और उनके हिसाब से परिवार संस्था को राज्य की दया पर निर्भर होना चाहिए। प्लेटो ने अपनी पुस्तक, "दी रिपब्लिक" में बच्चों के सामूहिक पालन पोषण, शिक्षा और स्वामित्व की वकालत की है। उनका मानना था कि निजी संपत्ति और परिवार, राज्य में सभी बुराइयों और भ्रष्टाचार के स्रोत हैं। परिवार की ओर संवेदना और स्वामित्व की भावनाएं एक आदमी को स्वार्थी बना देती है और यही भावनाएं उस व्यक्ति की राज्य के प्रति प्रतिबद्धता को भी कम कर देती है। प्लेटो ने अपने स्वयं और किसी अन्य के बीच कोई भेद न रखते हुए, व्यक्ति, परिवार और राज्य के बीच एकता देखी। इसलिए, उन्होंने पत्नियों और संपत्तियों के साम्यवाद का तर्क दिया, जहां विवाह और निजी संपत्ति को खत्म कर दिया जाएगा और आदर्श राज्य द्वारा इन्हें मान्यता नहीं दी जाएगी। हालांकि, प्लेटो ने राज्य पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया है, यह पारिवारिक मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकता हैं। प्लेटो के विचारों में महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता की कमी भी है क्योंकि इनमें महिलाओं को राज्य के तहत केवल एक ग्रहणकर्ता और निष्क्रिय प्रजा की तरह देखा जाता है। प्लेटो के शिष्य, अरस्तु उनसे सहमत नहीं थे, उन्होंने अपनी पुस्तक "पॉलिटिक्स" में तर्क दिया कि राज्य को परिवार संस्था का सम्मान करना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि व्यक्ति का परिवार से राज्य की ओर जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। उनके अनुसार, एक गृहस्थी में परिवार, संपत्ति और दास शामिल होते हैं। उन्होंने कहा कि परिवार नैतिकता का पालना है और संपत्ति गृहस्थी की एक आवश्यक विशेषता है। संपत्ति का स्वामित्व उस व्यक्ति को सुरक्षा की भावना प्रदान करता है जो अपनी सम्पन्नता बढ़ाना चाहता है। अरस्तु ने परिवार संस्था और निजी संपत्ति का समर्थन इस आधार पर किया कि ये एक व्यक्ति के नैतिक गुणों के विकास की ज़रूरत है जो कि एक राज्य के कल्याण के लिए आवश्यक है। उसने परिवार को एक पवित्र निजी संबंध के रूप में देखा और इसे व्यक्तिगत क्षेत्र में रखा। हालांकि, उनका मानना था कि परिवार में मर्द औरत से श्रेष्ठ है तथा उन्होंने दासों को भी उचित आदर नहीं दिया क्योंकि वे मालिक के आदेश के अधीन थे।

14.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवाद ने परिवार और राज्य के संबंधों को समझाते हुए एक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य को सामने रखा, जिसमें सामाजिक संघर्ष और असमानता महत्वपूर्ण है। परिवार के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांत का ध्यान इस बात पर केन्द्रित था कि कैसे पूंजीवादी व्यवस्था, जो कि पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच शोषण के संबंध को बनाए रखती है, अन्य सामाजिक संस्थानों जैसे परिवार को रूप प्रदान करती है, जो कि अंत में पूंजीवादी व्यवस्था को ही मज़बूत करने में मदद करता है। परिवार, पूंजीवाद की खपत इकाई के रूप में सेवा करके उसकी सहायता करता है। मार्क्सवादियों का यह भी मानना है कि छोटा परिवार शासक वर्ग के लिए एक साधन, एक संस्थान है, जो कि अपने सदस्यों को शासक वर्ग के आगे समर्पण करना सीखाता है। फ्रेडरिक एंजल्स ने तर्क दिया कि तीनों व्यवस्थाएं निजी संपत्ति, परिवार और राज्य आपस में जुड़े हुए हैं और पारिवारिक संबंध संपत्ति के संबंधों के जवाब में विकसित होते हैं। उनकी पुस्तक 1884 में प्रकाशित "दी ओरिजिन आफ दी फैमिली, प्राइवेट प्रापरटी एंड दी स्टेट", परिवार की उत्पत्ति और उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन को उसके विकास से जोड़ने के लिए और निजी संपत्ति एवं पूंजीवाद के उत्थान का अनुगमन करती है। एंजल्स का मानना था कि मानव विकास के शुरूआती चरणों में, संपत्ति सामूहिक स्वामित्व में थी और परिवार का कोई अस्तित्व नहीं था। समुदाय स्वयं ही एक परिवार था और यौन संबंध के लिए कोई सीमा नहीं थी। लेकिन, संपत्ति के निजी स्वामित्व का प्रश्न उभरकर

आने पर और वारिस और उत्तराधिकार के विचार आने पर पितृत्व का महत्व बढ़ गया। इस कारण एक स्त्री से विवाह करने का नियम बनाया गया, जिससे वारिस की वैधता और महिलाओं की कामुकता को नियंत्रित करने की बात कही गई। मार्क्स और एंजल्स उदारवादियों द्वारा बनाए गए सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच सतही विभेदन की भी आलोचना करते हैं। मार्क्स ने कहा कि राज्य निजी क्षेत्र (परिवार) से दूर नहीं रह सकता और यह परिवार में विरोधाभासों को पुनः उत्पन्न करता रहता है।

14.4.3 उदारवादी परिप्रेक्ष्य

सार्वजनिक और निजी भेद का विचार उदार परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। आइजिया बर्लिन ने अपने लेख "टू कॉनसेप्टस ऑफ लिबर्टी" में कहा है कि निजी जीवन और सार्वजनिक प्राधिकरण के क्षेत्रों के बीच सीमा रेखा खींची जानी चाहिए। निजी व सार्वजनिक भेद की संकल्पना का यूरोपीय मूल है, जो स्वतंत्रता को अधिकारों के माध्यम से प्रकट करता है। सार्वजनिक क्षेत्र का स्वामित्व राज्य के पास होता है और निजी क्षेत्र का व्यक्ति के पास। पारंपरिक उदारवादी विचारक परिवार को एक प्राकृतिक, जैविक और व्यक्तिगत इकाई मानते आए हैं। वे दृढ़ता से कहते हैं कि परिवार व्यक्तियों से बना है जो इस संस्थान में अपनी इच्छा से आते हैं और राज्य को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। जॉन लॉक ने तर्क दिया कि परिवार की उत्पत्ति एक पुरुष और महिला की स्वैच्छिक सहमति से होती है और राज्य को उसमें हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए। जॉन रॉल्स का कहना है कि परिवार सामाजिक संस्थानों में से एक है जिसका मूल्यांकन न्याय के सिद्धांत द्वारा किया जाना चाहिए। उनके लिए पारंपरिक परिवार ही न्याय का नमूना थे परंतु परिवार की संकल्पना उनके न्याय के सिद्धांत का महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं थी। जे एस मिल ने नैतिकता और अच्छी राजनीति के बीच की कड़ी को पहचाना है। "यदि हम अपने आप से उन कारणों और स्थितियों को पूछें जिन पर अच्छी सरकार पूरी तरह से निर्भर करती है, तो हम पाएंगे कि, उनमें से मुख्य है मनुष्य के वो गुण जो समाज बनाते हैं तथा जिस समाज पर सरकार शासन करती है।" उनका मानना था कि अच्छे नागरिक मशरूम की तरह से अपने आप नहीं उग जाते हैं, बच्चे को अच्छाई और ज्ञान के साथ बड़ा करना प्रोत्साहित करना एक सामाजिक ज़िम्मेदारी है। मिल ने कहा कि लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए परिवार एक प्रशिक्षण का मैदान है और परिवार को समानता और न्याय के उन मूल्यों को प्रतिबिंबित करना चाहिए जिस पर लोकतंत्र आधारित है। इसलिए वे महिलाओं के साथ वर्तमान पारिवारिक संरचना में होने वाली असमानताओं की निंदा करते हैं, क्योंकि इससे बच्चों में लोकतांत्रिक चरित्र को बढ़ावा नहीं मिलता। किन्तु वे परिवार के अंदर श्रम में लैंगिक विभाजन को न्यायसंगत बताते हैं क्योंकि वो सामान्य रीति-रिवाज़ों और सहमति पर आधारित हैं।

14.4.4 नारीवादी दृष्टिकोण

नारीवादी लोगों ने महिलाओं के जीवन पर पारिवारिक जीवन के प्रभाव का विश्लेषण करने की मांग की है। विभिन्न नारीवादी विचारकों के बीच उनके दृष्टिकोणों और मुख्य प्रयोजनों में कई मतभेद होने के बावजूद, वे एक बात पर सहमत थे कि परिवार में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के मुकाबले कमज़ोर होती है और उनका विभिन्न तरीकों से शोषण किया जाता है। मार्क्सवादी नारीवादियों का मानना है कि पूंजीवाद ही मुख्य शोषक है। महिलाओं द्वारा बिना वेतन घरेलू कार्य करना शोषण के रूप में देखा जाता है। मार्क्सवादियों की तरह, उनका मानना है कि परिवार भी पूंजीवाद की चाकरी भविष्य की श्रमिक शक्ति उत्पन्न करके करता है, किन्तु उन्होंने दृढ़तापूर्वक एक बात कही कि वो परिवार नहीं महिलाएं ही हैं जो

अधिक पीड़ित हैं। ये महिलाएं ही होती हैं जो बच्चों को धारण करती हैं जन्म देती हैं और उनकी देखभाल अपनी मुख्य ज़िम्मेदारी मानती हैं। उसमें भी महिलाओं का शोषण किया जाता है और उनसे उम्मीद की जाती है कि वे वो निर्गम द्वार बने जहां उनके पति अपनी पूरी कुंठा और गुस्सा निकाल सकें जो कि वे अपने दफ्तर में अनुभव करके आए हैं। इस प्रकार वे अपने मालिकों के खिलाफ विद्रोह करने से बचे रहते हैं। उग्र नारीवादी अन्य नारीवादियों से सहमत हैं कि परिवारों में महिलाएं ही कष्ट भोगती हैं। फिर भी वे पूंजीवाद को शोषण का मुख्य स्रोत नहीं मानते। उनका ध्यान मुख्यतः पुरुषों और पुरुष प्रधान समाज की प्रकृति पर है। उनका तर्क है कि घर पर सहभागियों के बीच असमानताएं इस तथ्य का परिणाम है कि अधिकांश घरों के मुखिया पुरुष होते हैं। इसका तात्पर्य है कि पुरुषों के पास निर्णय लेने की शक्ति अधिक होती है, परिवार के पास जो भी है उसका सबसे अधिक उपभोग पुरुष करते हैं और उनका नियंत्रण परिवार के वित्त पर भी होता है। जे एस मिल की प्रसिद्ध कहावत है "एक भेदभाव रहित परिवार नागरिकों को बराबरी सिखाने लिए उपजाऊ ज़मीन साबित होता है।" पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लाने के लिए उदारवादी मानते हैं कि संवैधानिक सुधार होना चाहिए जिससे पुरुष भी घरेलू कामकाज में अपना योगदान दें। इसे नागरिक नारीवाद कहते हैं। समाजवादी नारीवादी चाहते हैं कि मुक्त जन्म नियंत्रण, गर्भपात, महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रचार हो और राज्य द्वारा घरेलू श्रम को मान्यता प्राप्त हो। उग्र नारीवादी चाहते हैं कि महिलाओं को सक्रिय नागरिक बनाने के लिए उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश मिलना चाहिए और राज्य को पारिवारिक मामलों में हस्तक्षेप की अनुमति मिले, ताकि लिंग आधारित भेदभाव समाप्त हों। थॉर्न और यालोम का तर्क है कि नारीवाद ने परिवार को समझने के लिए कई व्यापक विषयों पर योगदान दिया है। वे हैं:

- पहला, नारीवादियों ने "अखंड परिवार" की विचारधारा को चुनौती दी, जिसने छोटे परिवार को बढ़ाया जिसमें एक पति है रोटी कमानेवाला और एक पूर्णकालिक पत्नी और माँ, यही एकमात्र वैध रूप है।
- नारीवादियों ने इस बात को पहचाना कि, लिंग, पीढ़ी, जाति और वर्ग जैसी संरचनाओं के परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन में अलग-अलग अनुभव होते हैं, जोकि छोटे परिवार, मातृत्व एवं एक प्रेमपूर्ण आश्रय देने वाले परिवार की महिमा के आगे धुंधले पड़ जाते हैं।
- नारीवाद ने निजी और सार्वजनिक के बीच पारंपरिक विभाजन को चुनौती दी है और परिवार की सीमाओं पर सवाल खड़े किए हैं। उनके अनुसार, परिवार व राज्य की सीमाओं का विभाजन मुश्किल है क्योंकि परिवार व राज्य में करीब का रिश्ता है – जैसे कि राज्य की कानूनी व कल्याण प्रणाली, स्कूल, शिशुपालन आदि गतिविधियाँ परिवार पर असर डालती हैं। इस कारण, 1970 में नारी आंदोलन का मुख्य नारा था "दी पर्सनल इज़ पॉलिटिकल"।

बोध प्रश्न 2

नोटः अ) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें।

ब) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलायें।

1) परिवार और राज्य पर प्लेटो के क्या विचार हैं?

.....

.....

.....

2) एक परिवार में महिलाओं की स्थिति पर जे एस मिल के विचारों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.5 सारांश

राजनीति विज्ञान में परिवार व राज्य का संबंध, एक कम अध्ययन किया जाने वाला विषय रहा है क्योंकि यह सामान्य विश्वास है कि परिवार किसी व्यक्ति का एक निजी मामला है और राज्य को इससे दूर रहना चाहिए। पारिवारिक मामलों में राज्य के हस्तक्षेप पर बहस चलती रही है। जो राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करते हैं उनका मानना है कि परिवार एक सार्वजनिक और राजनीतिक इकाई है और इसके प्रबंधन में राज्य का मत ज़रूर होना चाहिए। इसके विरुद्ध, अन्य लोगों का मानना हैं कि परिवार एक निजी और गैर राजनीतिक संस्था है जिसे परिवार के सदस्यों द्वारा ही चलाया जाना चाहिए न कि राज्य द्वारा। प्लेटो ने परिवार में राज्य के हस्तक्षेप के पक्ष में तर्क दिया जबकि उनके शिष्य अरस्तु ने विपक्ष में। "परिवार" पर मार्क्सवादी सिद्धांतों का ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि कैसे पूंजीवादी व्यवस्था किसी अन्य सामाजिक संस्था जैसे परिवार को आकार देती है जो कि उसे मज़बूत करने में मदद कर सके, जबकि उस व्यवस्था में पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच शोषणकारी संबंध होते हैं। उदारवादियों ने सार्वजनिक-निजी के भेद को ध्यान में रखते हुए परिवार को निजी क्षेत्र में रखने का समर्थन किया है। हालांकि, नारीवादी परिप्रेक्ष्य ने इस भेद को चुनौती दी है और महिलाओं व पुरुषों की बीच समानता के पक्ष में तर्क दिया है। उग्र नारीवादी परिवार में राज्य का हस्तक्षेप इसलिए चाहते हैं ताकि पितृसत्ता से महिलाओं पर होनेवाले उत्पीड़न को रोका जा सके। यदि कोई परिवार और राज्य के संबंध को ध्यानपूर्वक देखे तो, राज्य पहले से ही परिवार के मामले में हस्तक्षेप कर रहा है क्योंकि विवाह और तलाक के कानून राज्य द्वारा ही बनाए गए हैं। राज्य ने कानूनी रूप से, विवाह की संस्था और इसे कैसे भंग किया जा सकता है को परिभाषित किया है। यहां तक कि किसी शादी को समाप्त करने (तलाक) के लिए राज्य की मंजूरी आवश्यक होती है। इसलिए वर्तमान के विवाह और परिवार प्रणाली में जो ख़ामियाँ हैं उनकी ज़िम्मेदारी काफी हद तक राज्य की ही है।

14.6 संदर्भ

अरिस्टोटल. (1981). "दी पालिटिक्स"(राजनीति) न्यूयार्क : पेंगुएन

एंजेल्स, फ्रेडरिक. (2010). "दी ओरिजिन ऑफ दी फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एंड दी स्टेट"(परिवार, निजी संपत्ती एवं राज्य का प्रारंभ), न्यूयार्क : पेंगुएन

मिल, जे एस, (1869), "दी सबजैक्शन ऑफ वूमेन"(महिलाओं की पराधीनता)

स्क्रूटेन, रोजर, (2007), "दी पॉलग्रेव मैकमिलन डिक्शनरी ऑफ पालीटिकल थौट"(पॉलग्रेव मैकमिलन के राजनीतिक विचारों का शब्दकोष), हैम्पशियरः पॉलग्रेव मैकमिलन

थोर्न, बी एंड एम यालोम (1992), "रीथिंकिंग दी फैमिली : सम फैमिनिस्ट क्वाश्चनस"(परिवार पर पुनर्विचारः कुछ महिलावादियों द्वारा उठाए गए प्रश्न), न्यूयार्क : लॉंगमैन

दी एडिटर्स ऑफ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, स्टेट, यू आर एल : https://www.britannica.com/topic/state-sovereign-political-entity

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में एलियट और मेरिल तथा बर्गेस और लाक की परिभाषाओं को दर्शाना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में पत्नियों और संपत्ति का साम्यवाद उजागर होना चाहिए।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित दो बिंदुओं पर प्रकाश डालें

- पुरुषों व महिलाओं के बीच समानता
- नागरिक नारीवाद

अध्ययन सामग्री

बैरी, नॉर्मन, *ऐन इण्ट्रोडक्शन टु मॉडर्न पॉलिटिकॅलथिअरी,* मैकमिलन, लंदन, 2000 (अध्याय 8 : लिबर्टी)

हेवुड, एण्ड्रयू, पॅलिटिकॅलथिअरी, मैकमिलन, लंदन, 1999 (अध्याय 9 : फ्रीडम, टॉलेरेशन एण्ड लिबरेशन)

विनोद, एम जे और एम देशपान्डे, 2013 कन्टेम्परेरी पालिटिक्सथिअरी, नई दिल्ली, पी एच आईलर्निंग प्राइवेट लिमिटेड

नोर्मेज, पी. बेरी, ऐनइण्ट्रोक्शन टु माडर्न पॉलिटिकलथिअरी, मैकमिलन, लंदन, 2000

हैल्ड, डैविड, पॉलिटिकलथिअरी टु डे, स्टिबार्ट, रॉबर्ट एम., रीडिंग्स इन सोशल एण्ड पॉलिटिकॅल फिलॉसफी

ऐलन, सी.के., ऐस्पैक्ट्स ऑफ जस्टिस, स्टीवन एण्ड सन्ज़, लंदन, 1955

बेकर, अर्नेस्ट, प्रिंसिपल्स ऑफ़ सोशल एण्ड पॉलिटिकलथिअरी, लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन, 1967

बैरी, नॉर्मनपी., एन इण्ट्रोडक्शन टु माडर्न पॉलिटिकॅलथिअरी, मैकमिलन, लंदन, 1981

राफ़ैल, डी.डी., प्रॉब्लम्स ऑफ़ पॉलिटिकलफ़िलोसफ़ी, मैकमिलन, लंदन, 1976 (द्वितीय संस्करण)

बेलामी, रिचर्ड और मेसन, एंड्रू (2003). *पॉलिटिकल कॉन्सेप्ट्स,* मेनचेस्टरः मेनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस.

भार्गव, राजीव और अशोक आचार्य. (2008). *राजनीतिक सिद्धांत : एक परिचय.* नोएडा, पिअरसन.

लास्की, एच. (1925). *ए ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स.* ओक्सोन, रूटलेज.

स्क्रूटन, रॉजर. (2007). *द पल्ग्रेव मैकमिलन डिक्सनरी ऑफ पॉलिटिकलथॉट.* हैम्पशायरः पल्ग्रेव मैकमिलन.

विनोद, एम जे और एम देशपांडे. (2013). *कन्टेमपररी पॉलिटिकलथ्योरी.* नई दिल्लीः पीएचआईलर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.

कोहेन, जीन एल. एवं अराटो, एंड्रू (1997), *सिविल सोसाइटी एंड पॉलिटिकलथ्योरी,* यूनाइटेडस्टेट्सः एम आईटी प्रेस

डोरोटाआई. पिट्रज़िक (2001), *सिविल सोसाइटी–कांसेप्चुयल हिस्ट्री फ्रॉम हॉब्बस टू मार्क्स,* मैरीक्यूरी वर्किंग पेपर्स सं. 1, यूनिवर्सिटी ऑफ वेल्स

मुखर्जी, सुब्रत एवं रामास्वामी, सुशीला (2007) *ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकलथॉटः प्लेटो टू मार्क्स,* नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया

क्यूटसेन, सी. एच. (2010), "इन्वेस्टीगेटिंग दिलीथीसिसः हाऊबैड इज़ डेमोक्रेसी फॉर एशियन इकॉनामिक्स?" *यूरोपियन पॉलिटीकल साइंस रिव्यू,* 2–3, 457–473।

लिपसेट, सीमौरमार्टिन (1959), "सम सोशल रिक्वुजिट्स ऑफ डेमोक्रेसीः इकानामिक डेवलेपमेंट एंड पॉलिटिकल लेजीटीमेसी", *अमेरिकन पॉलिटीकल साइंस रिव्यू,* खण्ड 53, अंक 69, पृ. 105।

प्रज़ेवर्सकी, एड्म, एवं फर्नांडोलोमोंगी. (1993) "पालिटिकलरीजिम्स एंड इकॉनॉमिकग्रोथ", *जर्नल ऑफ इकॉनामिक पर्सपेक्टिव्ज,* खण्ड 7, अंक 3, पृ. 51–69।

प्रजेवर्सकी एड्म, माईकल अल्वारेज, जोस एंटोनियोचीबब एवं फर्नाड़ोलीमोंगी (1996), वाट मैक्स डेमोक्रेसीइंडूर?" *"जर्नल ऑफ डेमोक्रेसी,* खण्ड 7, अंक 1, पष्. 39–55।

सेन अमर्त्य (1999), *डेवलेपमेंट एज फ्रीडम,* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

भार्गव, राजीव और आचार्या, अशोक (2008), पोलटिकलथ्योरी (राजनैतिक सिंद्धात), नोएडा: पीयरसन।

मिल, जे एस (1998), लिबर्टी एंड अर्द ऐसेज (स्वतंत्रता और अन्य निंबध) न्यू यार्क: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

पॉपर, के और गोमब्रिच, ई एच (1994), द ओपन सोसाइटी एंडइट्स ऐनीमीज़ (खुला समाज/ मुक्त समाज और इसके दुश्मन), न्यूजर्सीप्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

स्क्रूटन, रोजर (2007), पॉलग्रेव मैकमिलन डिक्शनरी आफ पॉलिटिकल थॉट, (राजनीतिक विचारों का संग्रह) हैम्पशायर : पॉलग्रेव मैकमिलन।

सेन, अमर्त्य (1999), डेवलपमेंट एज़ फ्रीड्म, (स्वतंत्रता के रूपमें विकास) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

आचार्य, अशोक (2008), "अफरमेटीव एक्शन" इन राजीवभार्गव एवं अशोक आचार्य (संपा.) *पॉलिटिक्लथ्योरी– एक प्रस्तावना,* नई दिल्लीः पीजन्स।

अब्बास, होइयेदा एवं कुमार, रंजनकुमार (2012), *पॉलिटिक्लथ्योरी,* नई दिल्लीः पीयरसन।

अरोड़ा, एन.डी. एवं एस.एस. अवस्थी (2007), *पॉलिटिक्लथ्योरी एंड पॉलिटिक्लथॉट,* नई दिल्लीः, हर आनन्द पब्लिकेशन्स।

रॉल्स, जॉन (1971) *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस,* हार्वर्डः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

विनोद, एम. जे और मीना देशपाण्डे (2013), *कंटमपरेरी पॉलिटिक्लथ्योरी,* नई दिल्लीः पी. एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।

आचार्य, अशोक (2008), "अफरमेटीव एक्शन "इनराजीव भार्गव एवं अशोक आचार्य (संपा.) *पॉलिटिक्लथ्योरी– एक प्रस्तावना,* नई दिल्लीः पीजन्स।

अब्बास, होइयेदा एवं कुमार, रंजनकुमार (2012), *पॉलिटिक्लथ्योरी,* नई दिल्लीः पीयरसन।

अरोड़ा, एन.डी. एवं एस.एस. अवस्थी (2007), *पॉलिटिक्लथ्योरी एंड पॉलिटिक्लथॉट,* नइ दिल्लीः, हर आनन्द पब्लिकेशन्स।

रॉल्स, जॉन (1971) *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस,* हार्वर्डः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

विनोद, एम. जे और मीना देशपाण्डे (2013), *कंटमपरेरी पॉलिटिक्लथ्योरी,* नई दिल्लीः पी. एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।

अरिस्टोटल. (1981). "दी पालिटिक्स" (राजनीति) न्यूयार्क : पेंगुएन

एंजेल्स, फ्रेडरिक. (2010). "दी ओरिजिन ऑफ दी फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एंड दी स्टेट" (परिवार, निजीसंपत्ती एवं राज्य का प्रारंभ), न्यूयार्क : पेंगुएन

मिल, जे एस, (1869), "दी सबजैक्शन ऑफ वूमेन" (महिलाओं की पराधीनता)

स्क्रूटेन, रोजर, (2007), "दी पॉलग्रेव मैकमिलन डिक्शनरी ऑफ पॉलीटिकल थौट" (पॉलग्रेव मैकमिलन के राजनीतिक विचारों का शब्दकोष), हैम्पशियरः पॉलग्रेव मैकमिलन

थोर्न, बी एंड एम यालोम (1992), "रीथिंकिंग दी फैमिली : सम फैमिनिस्ट क्वाश्चनस" (परिवार पर पुनर्विचारः कुछ महिलावादियों द्वारा उठाए गए प्रश्न), न्यूयार्क : लॉंगमैन